❀ श्रीरामाय नमः ❀

श्रीमानस–

हृदयमर्म प्रकाशिका

(सटीक)

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशकः—

महान्त श्री गंगादासजी महाराज

छोटाछत्ता, मठ पुरी (उड़ीसा)

प्राप्ति स्थान

बाबा श्री मणिराम दास जी महाराज की छावनी

श्री अयोध्या जी

द्वितीय संस्करण	सं० २०२७ वि०	मूल्य
१००० प्रति	सन् १९७० ई०	सप्रेम पाठ

समर्पण

पूज्यपाद श्री... ... ...

भैय्या बालक वृन्द... ... ...

प्रिय सज्जनो ! प्रिय मित्रो ! प्रिय पाठक गणो ! भैय्या आप सब तो बड़े ही उदार हैं, बड़े ही दयालु हैं और श्रीराम जी के परम प्रिय भक्त हैं, श्रीरामजी आपके हृदय कमल में सदा निवास करते हैं आप हमारे परम प्रिय एवं हितैषी हैं। भैय्या ! यह हमारी "श्री मानस हृदय मर्म प्रकाशिका" को कृपा करके एक वार अक्षरशः पढ़कर अपने भाविक जीवन के लिए सहायक रूप में ग्रहण करेंगे तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

चौ०-सुजन समाज सकल गुणखानी। करौं प्रणाम सप्रेम सुबानी
सीताराम चरण रति मोरे। अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे

प्रार्थी-महन्त गंगादास

छोटा छत्ता, पुरी।

भैय्या—प्यारे रामभद्र ?

मेरी इच्छा तो थी कि यह मर्म भेदी वेदना आप ही तक रहती तो अच्छा था, परन्तु आपने तो सारे संसार में बाँट कर मेरे को निर्लज्ज बना देना चाहा। अब तो मैं तो निर्लज्ज बेशरम होकर पहले ही कह चुका हूँ कि "*शिष्य नेह तव पद रत होई*' तो आपकी इच्छा पूर्ण होने में भी क्या हानि है. यह बात तो मैं पूर्व ही स्वीकार कर चुका हूँ कि "*मोहि बरु मूढ़ कहै किन कोई*' फिर सबसे निर्लज्ज होकर अपने मर्म को प्रकाश कराके कहाना आपकी प्रसन्नता है तो ठीक है। यदि प्यारे तुम्हें सुनने में आनन्द हुआ तो लीजिए मैं बिलकुल निर्लज्ज बेशरम होकर हजारों मुखों से खूब रो-रो कर और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है।

※ पद ॥ १ ॥

रामजी तुम्हरे लिए हम कीन्ह साधु का वेश ॥टेक॥
सुख ऐश्वर्य सबहि कुछ त्यागा फिरत विराने देश।
शान शौक भूषण सब त्यागे जटा बनाये केश ॥
वन वन में तुम्हें खोजत डोलूँ सबसे पूछूँ सन्देश।
दिननहिं भूख रातिनहिं निंदिया सहत हौं कठिन कलेश॥
"गंगादास" ढूँढ़ सब हारे पावत नाहिं सरेश।
रामजी तुम्हरे लिए हम कीन्ह साधु का वेश ॥

महन्त श्री स्वामी गंगादास जी महाराज

छोटाछत्ता मठ पुरी (श्री जगन्नाथ धाम)

* पद २ *

मेरे राम हृदय से लगालो मुझे।
अपने बिरह से जलते बचा लो मुझे॥

हम तुम्हें देख श्रीराम जिया करते हैं।
धन प्राण दान चरणों पै किया करते हैं॥
जिस तरह मत्त गजराज चुआ करते हैं।
उसी तरह हमारे नयन बहा करते हैं॥

जरा नाम की लाज बचालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे॥

नित प्रेम बेलि पै पानी दिया करते हैं।
कब फूलैगी यह बाग तका करते हैं॥
चरण कमल मुख कमल दलनि दरशे हैं।
कर कमलन ऋतुराज सदा परशे हैं॥

श्री राम चरणियाँ धरा लो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगालो मुझे॥

कोई पूछै क्या गुरुदेव किया करते हैं।
आपके रहने की जगह सफा किया करते हैं॥

कर कमल बरद की छाँह यही चहते हैं।
पद कमल स्वाद मकरन्द तृषित रहते हैं॥

अपने चरणों की शरण लगालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगालो मुझे॥

नयन कमल रतनार चहनि चहते हैं।
मुख कमल भरे मकरन्द मधुप रहते हैं॥
"गंगादास" की प्यास तपन सहते हैं।
शोभा अमित अपार मदन शतकोटि जहाँ रहते हैं॥

गुरु के प्यारे कपोल चुमालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगालो मुझे॥

गुरुर्गुरुणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामह।

भैय्या श्रीरामभद्र जू! आप तो गुरुओं के भी गुरु और पिताओं के भी पिता हैं परन्तु मैं अबोध आपका ही गुरु बन बैठा हूँ इससे और अधिक निर्लज्जता ही क्या होगी परन्तु "*उपल किए जलजान जेहि सुमति सचिव कपि भालु*" तैसे ही, "*मूरख गुरु की प्रीति रुचि रखिहहिं राम कृपालु*"॥

अस्तु

❀ ॐ नमो भगवते रामानन्दाय ❀

भूमिका

भाष्यं येन सुभाषितं मतिमतां वेदान्त विद्या विदा,
ब्रह्माम्भोधिरवाततार त्रिभुवनाचार्य्येण येनात्र सः
मिथ्या ब्रह्मवदप्रहार विकलः श्रुत्यङ्गरक्षापटू,
रामानन्द यतिः सदा विजयते योगीन्द्र चूड़ामणिः॥

प्रिय सज्जनो !

सांसारिक त्रिविध तापों से सन्तप्त प्राणियों को अनन्त सुख शान्ति प्राप्ति हेतु श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीमन्मानस महौषधि प्रकट की, जिसके प्रयोग मात्र (नित्य पठन पाठन) से प्राणियों के वाह्य तथा आभ्यन्तरिक आधिदैहिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक प्रबलतम त्रिताप स्वयं ही शान्त हो जाते हैं एवं प्राणी शुद्ध बुद्ध, परमानन्द स्वरूप होकर भक्त वत्सल भगवान् आनन्दकन्द श्रीराघवेन्द्र के पाद पद्मों का चञ्चरीक बन जाता है।

यह मानस जितना ही सरल एवं सुपाठ्य है उतना ही भाव-गाम्भीर्य तथा काव्य गुरुता से पूर्ण है। यद्यपि सम्वत् १६३१ सोलह सौ इकतीस से आज तक अनेक व्याख्याताओं ने अपनी जिह्वा तथा लेखनी पवित्र करने के लिए अनेक टीका टिप्पणियाँ की हैं पर इसके यथार्थ आशय को व्यक्त करने में कोई भी पूर्ण सफलता प्राप्त न कर

सके। यह तो महार्णव की भाँति अनेकानेक उत्तम रत्नोंसे परिपूर्णहै। जो जितनी गहराई तक जायगा वह उतने ही रत्न प्राप्त कर सकेगा।

यह मानस अत्यन्त अगाध एवं पाण्डित्य पूर्ण होने के कारण परम पूज्य सन्तशिरोमणि महान्त श्री गंगादास जी महाराज ने अपने तपः पूत अमूल्य समय को लगाकर *"स्वान्तः सुखाय"* एवं मुमुक्षुजनों के हित के लिये मधुकरी वृत्ति द्वारा अनेक धार्मिक ग्रन्थों से सार भूत संग्रहीतकर मानस के अनेक मार्मिक स्थलों की ग्रन्थियों का अनेक मतमतान्तरों तथा अनेक विशिष्ट पुरुषों द्वारा उद्घोषित सिद्धान्तों के आधार पर सुलझाने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

"श्री मानस हृदय मर्म प्रकाशिका" के सम्बोधन भैय्या बालकवृन्द ! कितने हृदय ग्राही एवं सरस तथा वात्सल्य रस से ओत प्रोत हैं। भैय्या शब्द अत्यन्त स्नेह सूचक है जैसे–*"भैय्या कहहु कुशल दोउ बारे"*। सम्बोधन से ही ज्ञात होता है कि इस पुस्तक का संकलन मुक्ति मार्ग के बालक (अबोध) जनों के लिये हुआ है। जब तक प्राणियों की सांसारिक पदार्थों में आसक्ति रहेगी तब तक वे प्रभु के भक्त नहीं बन सकते हैं इसीलिये प्रभु श्रीराम जी स्वयं कह रहे हैं कि–

"जननी जनक बन्धु सुत दारा। तन धन भवन सुहृद परिवारा॥
सबकर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहिं बाँध बट डोरी॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे"॥

जो प्राणी मेरा प्रिय बनना चाहे वह माता, पिता, बन्धु, पुत्र, स्त्री, शरीर, धन, गृह, मित्र आदिकों में फैले हुए ममता रूपी तागों

को बटकर एक मोटी रस्सी बनावे उससे अपने मन को मेरे चरणों में बाँध दे। ऐसा सज्जन मुझे प्रिय है और मेरे हृदय में वास करता है। उपरोक्त ममत्व मूलक पदार्थों में जीवों के अधःपतन करने में मुख्य स्त्री ही है। "*द्वारं किमेकं नरकस्य नारी*' यह ऐसी दुरत्यय माया स्वरूपिणी है कि-"*शिव विरञ्चि कहँ मोहई को है बपुरा आन*"। रावण स्त्री लम्पट होते हुए भी स्त्रियों में आठ अवगुण देखता है। सती के रामजी के विषय में सन्देह करने पर भोले बाबा सती जैसी देवी के विषय में कहते हैं-"*सुनहि सती तव नारि स्वभाऊ*' श्रीराम जी की परीक्षा के पश्चात् शिवजी के पूछने पर झूठ बोलीं तुलसीदासजी लिखते हैं कि-"*सती कीन्ह चह तहँउ दुराऊ। देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ*'। जब देवियों के विषय में यह हाल तब साधारण स्त्रियों की क्या बात है। अतः मुमुक्षजनों को इनसे बचना परमावश्यक है। जब तक जिसमें घृणा नहीं होती तब तक किसी मनोरम वस्तु से वैराग्य होना उतना ही असम्भव है जितना कि बरषते हुए जल की बूँद को पकड़कर आकाश पर चढ़ना।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि सभी स्त्रियाँ निन्दनीया एवं हेय हैं। हमारी इसी पवित्र भरतभूमि को श्री महारानी जगज्जननी जानकी, अनसुइया, सावित्री आदि देवियों ने अपने जन्म द्वारा पवित्र किया था तथा जिनका महान आदर्श आज भी हमारी माताओं एवं बहिनों के कर्त्तव्य का पथ पदर्शन कराता है।

ज्ञान निरूपण प्रसंग में "*शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, तत्त्वोत्पत्ति, असंशक्ति, पदार्थाविभावनी, तुर्यगा*" इन सप्त सोपानों का विवेचन

शास्त्र सिद्धान्तों एवं लौकिक दृष्टान्तों द्वारा बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है जो अत्यन्त शिक्षाप्रद तथा अपने जीवन में ढालने योग्य है। इसी प्रसंग में "अष्टाङ्गयोग" को पढ़ने से लेखक की महानता का अनुमान लगाता है कि आपकी पहुँच कहाँ तक है।

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

इस नवधा भक्ति को मानस के विविध दृष्टान्तों द्वारा अत्यन्त सुन्दर ढंग से समझाया गया है जिससे जीव अपने परमप्रभु के साथ किसी भक्ति अथवा किसी सम्बन्ध को स्थापित कर अपने को आवागमन रूपी सांसारिक क्लेशों से छुड़ाकर प्रभु का परमप्रिय बन सकता है जैसा कि प्रभु ने स्वयं परम भक्ता शबरी के प्रति कहा है—

नव महँ जिनके एकौ होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥

परन्तु यह स्मरण रहे कि सब में हार्दिक स्नेह की प्रधानता है "*मम गुन गावत पुलक शरीरा। गद्‌गद् गिरा नयन बह नीरा*" न हुआ तो सर्व व्यर्थ है दोहावली में तुलसी दास जी कहते हैं—

हिय फाटहु फूटहु नयन, जरहु सो तनु केहि काम ।
द्रवहि स्रवहिं पुलकहि नहीं, तुलसी सुमिरत राम ॥

"जीव गति वर्णन" में "क्षीणे पुण्ये मर्त्तलोके विशन्ति" के अनुसार जीव का जब बैकुण्ठादि लोकों से अधः पतन होता है तब

जीव क्रमशः चन्द्रलोक में आकर चन्द्ररश्मियों द्वारा पृथिवी पर अन्न में आता है पुनः उसी अन्न को जीव भक्षण करते हैं जिससे वीर्य बनता है पुनः वीर्य रूप से गर्भ में पहुँचकर वहाँ यह क्रमिकोन्नति करता हुआ पूर्ण होने पर गर्भ के कष्ट असह्य होने पर अपने सहस्रों पूर्व जन्मों के कर्मों का स्मरण कर दुःखित होता है तब वहीं उसे अकारण करुणाकरण भक्तवत्सल भगवान के दर्शन होते हैं। जीव प्रार्थना करता है कि अब मैं बाहर जाकर निरन्तर आपका भजन करूँगा। पुनः दशमास के पश्चात् प्रसव वायु द्वारा बाहर आने पर अनेक बाल यातनायें सहनी पड़ती हैं और मायावद्ध होकर भगवान का भजन भूल जाता है जिससे जीवन में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है मरने पर कूकर शूकर की योनियों को प्राप्त होता है। इसी विषय को भागवत् में श्री कपिलदेव जी ने देवहूति से तथा अध्यात्म रामायण में चन्द्रमा मुनि द्वारा प्राप्त उपदेश को सम्पाती ने वानरों से बताया एवं श्री माता कौशल्या के प्रश्न करने पर श्रीराम जी के द्वारा दिये गये आध्यात्मिक उपदेश. यह सब अपने पूर्व कर्मों तथा आगामी क्लेशों का स्मरण दिलाकर जीवों की वृत्तियों को पलट कर प्रभु का परम भक्त बना देते हैं।

स्त्री, पुत्र. धन. गृह. आदि त्याग कर आये हुए भक्तों के हाथों प्रभु स्वयं बिक जाते हैं यह प्रभु की उदारता है अतः यह सब प्रभु की उदारता प्रसङ्ग में प्रभु स्वयं दुर्वासा से कह रहे हैं कि—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

हमारे प्रभु कितने उदार हैं यदि उनका भजन न करके जो प्राणी सांसारिक विषयों में लिप्त हैं उनसे अभागा और कौन है। इसी

प्रकार श्रीलक्ष्मणजी के प्रश्न करने पर "श्रीराम गीता" में प्रभु ने बताया है कि-जो मेरी सेवा, मेरे भक्तों का संग तथा उनकी सेवा, एकादशी आदि उपवास, मेरी कथा सुनने में अनुराग रखता है मैं उसके सदा के लिये आधीन हो जाता हूँ।

श्रीमानस-मर्म प्रसंग में मनोकामना सिद्ध ५१ चौपाइयों का संग्रह अत्यन्त उपादेय है। इनके द्वारा मानव अलभ्य वस्तु को भी सुगमता पूर्वक शीघ्र प्राप्त कर सकता है। श्री मानस के सातों काण्डों में किये गये प्रभु के चरित्रों का सुन्दर शैली द्वारा सप्त सोपानों के रूप में वर्णन किया गया है जो अत्यन्त अनुकरणीय है।

समाप्ति में कई सुन्दर स्तोत्रों तथा स्वरचित हिन्दी पदों का एवं संकलित पद्यों का संग्रह तथा संक्षिप्त रामायण, भावुक भक्तों की अमूल्य निधि हैं।

इस पुस्तक के सभी विषय ग्रन्थों से प्रतिलिपि मात्र ही नहीं किये गये किन्तु लेखक ने अपनी अनुभव रूपी कसौटी में कसकर खरे उतरने पर ही लिखे हैं अतएव विशेष महत्व की वस्तु हैं। इसको पढ़ें, गुनें और इसके अनुसार अपने चरित्र को ढालें तभी पूर्ण आनन्द प्राप्तकर सकेंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्व सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

इत्यलम्

सन्तजन सेवक-

बाबा श्रीमणिरामदासजी महाराज की छावनी
श्रीअयोध्याजी जि. फैजाबाद (उ.प्र.)

अवधेशकुमार दास "शास्त्री"
श्रीसीतारामजी का मंदिर
मु. पो. अछल्दा जि. इटावा (उ.प्र.)

श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमः
श्री सीतारामचन्द्राभ्याँ नमः

चौ०-मंगल भवन अमंगलहारी । द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी॥
दो०-वन्दौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय ।
अंजलि गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोय ॥

लेखक का नम्र निवेदन

माननीय परम भागवतो, विद्वज्जनो तथा सज्जन वृन्द एवं हमारे प्रिय मित्रगण बालक वृन्दो ! इस असार संसार सागर की दुःखद तरंगों में अनादिकाल से भटकते हुए दीन प्राणियों के कल्याण के लिए जहाँ शास्त्रों में अनेक उपाय बताए हैं, वहाँ श्रुतियाँ स्मृतियाँ तथा स्मृतिकार महानपुरुषों ने इस कठिन कलिकाल में केवल श्रीराम भक्ति एवं श्रीराम नाम को ही एकमात्र जीवों के उद्धार का अन्यतम साधन कहा है । *सो०-कठिन काल मल कोष योग न यज्ञ न ज्ञान तप ॥ परिहरि सकल भरोस रामहिं भजहिं ते चतुर नर* ॥ अतः जितने भी मनुष्य तथा जितने भी प्राणी हैं वे सभी श्रीराम नाम जप एवं श्रीराम भक्ति के समान रूप से अधिकारी हैं । कहा भी गया है ।

"बैठत सभा सबहिं हरि जू की कौन बड़ो को छोट । सूरदास पारस के परे मिटत लोह की खोट" ॥

"जाति पाँति पूछैना कोई । हरि को भजै सो हरि का होई" ॥ अतः श्रीराम जी कृपाकर यह देवदुर्लभ नरतन संसार समुद्र से तरने के

लिए नौकारूप प्रदान किए हैं। इसे पाकर भी सामान्य पशुओं की तरह इस शरीर के भरण पोषण ही में उसे व्यर्थ बिताकर इसी संसृति चक्र में "*पुनरपि जननं पुनरपि मरणं। पुनरपि जननी जठरे शयनम्*" की दशा को प्राप्त हो, इससे अधिक खेद का विषय मनुष्य के लिए और क्या हो सकता है। "*साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा*"।

भैय्या बालक वृन्द! तथा सज्जन वृन्द! आप सबों के समक्ष मैं अबोध बालक क्या लिखूँ और क्या बताऊँ। जितना कुछ लिखना और बताना चाहिए, वह तो श्री श्री अनन्त श्रीविभूषित, भक्त शिरोमणि अनन्य श्रीरामनामोपासक एवं अखंड श्रीरामनाम के विश्वासी कवि सम्राट, श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने, श्रीमन्मानस रामायण में कहा है।

प्रिय सज्जनो! उसी के मर्म को मैं मानस में से जहाँ तहाँ से खोजकर आपके सामने रक्खूँगा और बारम्बार यह कहूँगा कि भैया बालक वृन्द! आप बारम्बार मानस पढ़ें और मनन करें तो जितना आपके लिए आवश्यक है वह सभी मानस में मिलेगा उसको पढ़कर समझें और करें।

भैय्या सज्जनवृन्द! "*भलो भली भाँति है जो मोरे कहे लागिहौ*" यदि यह मेरी बालक की तोतरी बात पर आप ध्यान देंगे तो भैय्या! "*राम भजे हित होइ तुम्हारा*" परन्तु भैय्या मित्रवर? यह कहीं ख्याल न कर लेना कि "*आपु सरिस सबहिं चहैं कीन्हा*" किन्तु ऐसा होना भी अहोभाग्य की बात है। देखिए सप्त ऋषियों के उपदेश से ही

तो बाल्मीक आदि कवि बने और *"बाल्मीक भे ब्रह्म समाना"* उनका पूर्व चरित तो आपको ज्ञात ही है परन्तु यह सतयुग का इतिहास है। बिल्वमंगल जिनकी सूरदास करके ख्याति है, राम बोला जो तुलसी दास करके जगत पूज्य हो रहे हैं, इन सबों का भी चरित्र आप सबों को मालुम ही है ये राम भजन से ही सुखी और जगत मान्य हुए हैं, किन्तु यह भी प्रायः चार सौ वर्ष का इतिहास हो चुका है।

भैय्या मित्रवर ! मैं तो आपके सामने वर्तमान हूँ। मैं यह धर्मतः कहता हूँ कि *"सुखी न भयों अबहि की नाईं"* इसके पूर्व में मैं सर्व प्रकार नाना दु खों से संतप्त था परन्तु जबसे *'रघुनायक अपनाया'* तब से मैं भी सुखी हूँ *"जिमि हरि शरण न एकौ बाधा'* यह मेरे लिए सम्पूर्ण चरितार्थ होगा मैं सब प्रकार से सुखी हूँ। तभी तो आपको कह रहा हूँ कि भैय्या, *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"* राम भजन से ही आपका कल्याण है इसलिये आप भी राम नाम भजन करैं। *"तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिश्राम। जब लगि भजत न राम कहँ शोक धाम तजि काम"* ॥

मित्रवर ! यह बिलकुल अकाट्य सिद्धान्त है मानस पढ़ने से आपको मालुम पड़ेगा। इसलिए मानस नियम करके पढ़ैं। *"राम भजे हित होइ तुम्हारा, रामहि भजहिं तातशिवधाता। नर पामर कर केतिक बाता"* ॥

प्रिय सज्जनो ! पाठक महानुभावों से मैं बारम्बार विशेष रूप से प्रार्थना पूर्वक नम्र निवेदन करता हूँ कि न तो मैं कोई विद्वान् हूँ, न लेखक हूँ न ग्रन्थकार बनने का दावा ही करता हूँ। मुझ पर

यह चौपाई "*कवि न होउँ नहिं चतुर प्रवीनू । सकल कला सब विद्या हीनू*" पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। यह संग्रह त्रुटियों का कोष कहा जाय तो मेरी समझ से अत्युक्ति न होगी क्योंकि मुझे व्याकरण के कर्ता क्रिया उपमा उपमेय आदि का बिल्कुल ज्ञान नहीं है, सिद्धान्त सम्बन्धी बातें भी जैसी जहाँ पर समझ में और अनुभव में आईं वैसी की वैसी ही लिखी गई हैं इसलिये इनके सम्बन्ध में केवल इतना ही निवेदन है कि आप लोग अर्थ-अनर्थ की त्रुटियों पर बिल्कुल ख्याल न करेंगे, जहाँ भी कहीं बुद्धि के भ्रम से कर्ता क्रिया, उपमा उपमेय में अर्थ का अनर्थ प्रतीत हो, अनर्गल अथवा द्वैताद्वैत का उचित सिद्धान्त एवं अर्थ हो वैसा सुधार कर लेंगे।

मैं तो केवल "*करन पुनीत हेतु निज वाणी*" के न्याय से ही लिखा हूँ, मैं संप्रदाय के आचार्यों के सिद्धान्त से कभी भी प्रतिकूल नहीं हूँ जहाँ मत विरोध होता हो मतान्तरों से वहाँ मेरी भूल समझ कर क्षमा करें और मुझे सूचित करने की कृपा भी करें।

भैय्या बालक वृन्द ! इस ग्रन्थ का नाम "मानस हृदय मर्म प्रकाशिक" इसलिए कहा गया है कि मानस, मनसि अर्थात् मन में रहने वाली वस्तु है। अर्थात् मानस भक्ति है तो मन में भक्ति रहती है- यह है मानस का हृदय,-"*जिन हरि भक्ति हृदय नहिं आनी। जीवत शव समान ते प्रानी*" ॥ और भक्ति का मर्म है रामनाम। अतएव "*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*" परन्तु "*नाम निरूपण नाम यतन तें। सो प्रगटत जिमि मोल रतन ते*" अतः वही रामनाम का परत्व इसमें वर्णन करके प्रकाशित किया गया है। इसलिए इसका नाम है "मानस

हृदय मर्म प्रकाशिका" । "*जो नहिं करइ राम गुण गाना। जीह सो दादुर जीह समाना*' अथवा "*तुलसी जीह्वा वह भली, जो सुमिरै हरि नाम। नाहित काटि वहाइये मुख में भलो न चाम*"॥ अतएव मन में भक्ति रखते हुए भक्ति के सहकार से "सा" अर्थात् वही रामनाम जिह्वा द्वारा रामनाम रटु (संरठ) अर्थात उस रामनाम को रटो, जिस राम नाम को कहा जाता है "*रामराम रामराम रामराम जपत, मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छरत*"। उपसंहार में यह कहा जाता है-"*रामनाम सों प्रतीत हृदय सुथिर थपत-पावन किए रावण रिपु तुलसिहूँ सो अपत* ॥ अर्थात् रामनाम कहने से अशान्त हृदय संतोष एवं शान्ति पाता है-"*संतोषोनन्दन वनं शान्ति एव हि कामधुक्*"। संतोष ही आनन्द बन, शान्ति ही कामधेनु है सो रामनाम जपते ही हृदय संतोष और शान्ति पाता है। देखिये तुलसीदास जी कहते हैं कि रामनाम के बल से ही तुलसी से भी पापी एवं रावण भी पावन हो गया है। "*तासु तेज समान प्रभु आनन*" अर्थात् श्रीराम जी के मुखारविन्द में सायुज्य मुक्ति पाया। कारण क्या था कि-"*रामाकार भए तिनके मन मुक्त भए छूटे भवबंधन*" अर्थात् रामनाम से ही मुक्ति पाए, रावण अन्त में कहता है-कहाँ राम, अर्थात् हा राम! तूँ कहाँ है-बस राम तो सामने थे हो-"*आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करैंगे तोहि*"-सो ठीक वैसा ही हुआ। हा राम! तूँ कहाँ है-आरत वाणी सुनते ही प्रभु ने बुला लिया, आओ "*तासु तेज समान प्रभु आनन*" राम अवतार रावण के लिये ही हुआ था और रामनाम परत्व रावण से ही पूर्णरूप से प्रकाशित हुआ है-"*वारेक नाम कहत जग जेऊ। होत तरण तारण नर तेऊ*"। अर्थात् एक ही बार जो राम कहता है

वह स्वयं तो तर ही जाता है परन्तु औरों को भी तारता है। रावण एक ही बार राम कहा था, फिर भी अपने तो तर ही गया परन्तु अपने चरित्र द्वारा सारे जगत के प्राणियों को तार रहा है-"यह *रावणारि चरित्र पावन राम पद रति प्रद सदा। कामादि हर विज्ञान कर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा"* अर्थात् *"सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं"*। अतः हे भैय्या बालक गण! आप सब भी मन में भक्ति के सहकार से रामनाम भजन करें *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*

भैय्या बालक वृन्द! आप यह शंका कर सकते हैं कि बाबा, मानस में तो कहा जाता है कि--*'जाना मर्म न मातु पिताहू'* अथवा *'लक्ष्मणहूँ यह मर्म न जाना'* पुनः *'पालन सुर धरणी अद्भुत करणी मर्म न जानै कोई'* इत्यादि कहा गया है तो आप कैसे मर्म कह रहे हैं। भैय्या! तहाँ मानस ही यह भी कह रहा है कि *'सोइ जानै जेहि देहु जनाई'* अथवा *'जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ, नाम जीह जपि जानैं तेऊ'* अर्थात् *'तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी, जानौं महिमा कछुक तुम्हारी'* इत्यादि भी कहा गया है। तो भैय्या, मैं यह धर्मतः कह रहा हूँ कि मैं ११ वर्ष की अवस्था से रामनाम ही पढ़ा हूँ अतएव रामनाम भजन कर रहा हूँ-*'प्रौढ़ भये मोहिं पिता पढ़ावा, समुझौं सुनौं गुनौं नहि भावा'*॥ *'मन ते सकल वासना भागी, केवल राम चरण लव लागी'* दूसरा उपाय *'श्री गुरुपद नख मणि गण ज्योती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती'* ॥ तो मैं ३० वर्ष अखण्ड सेवा श्री गुरु चरणों की किया हूँ और तीसरा उपाय यह है कि-*'मति कीरति गति भूति भलाई, जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई'* ॥ *'सो जानब सतसंग प्रभाऊ'* इत्यादि तीनों उपाय मुझे सुगम

थे इसलिए इस मर्म को प्रकाशित करने को मैं इच्छुक हो रहा हूँ मङ्गलाचरण में कहा गया है कि–'*निज बुद्धी का बल नहीं ज्ञान दीन्ह जगदीश, तेहि बल मैं वर्णन करूँ चरित कोशलाधीश*'।

भैय्या बालक वृन्द ! यह हमारे प्रभु हमारे सरकार श्रीराघवेन्द्र भगवान् श्रीरामभद्र जू की देन है उन्हीं की कृपा से प्रकाशित कर सकत। हूँ–'*जनि आश्चर्य करहु मन माहीं*' प्रभु की कृपा से सब कुछ हो सकता है '*श्री रघुनाथ प्रताप ते सिन्धु तरे पाषाण*' *तुलसी कृपा रघुवंश मणि की लोह लै नौका तिरा*। तो यह मर्म प्रकाश करना क्या बड़ी बात है।

प्रिय सज्जनो ! मुझे तो कोई कुछ भी कहे परन्तु मैं आप लोगों के अनुग्रह से श्रीरामजी के चरण कमलों का प्रति दिन वर्धनशील प्रेम ही चाहता हूँ। और श्रीरामनाम जपना ही मेरा जीवन है।

सन्त सरल चित जगत हित, जानि स्वभाव सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, राम चरन रति देहु॥

सज्जनो ! वर्त्तमान महाकराल कलिकाल जिसमें ''*कलिमल ग्रसेउ धर्म सब, लोभ ग्रसेउ शुभ कर्म*' होते हुए भी सन्तसेवी का कलियुग कुछ भी नहीं कर सकता अपितु कलियुग के समान दूसरा युग ही नहीं है। यथा *कलियुग सम युग आन नहिं, जौ नर कर विश्वास*' तथा–'*तुलसी रघुवर सेवकहिं, सकहि कि कलियुग धूत*' ऐसे कठिन समय में भी सन्त सेवा करते हैं।

प्रिय सज्जनो ! यह–'*मानस-हृदय-मर्म प्रकाशिका*' नामक ग्रन्थ

की छपाई का समस्त अर्थ व्यय सन्तसेवी गुरु भक्ति परायण कलकत्ता निवासी बाबू श्री लक्ष्मीनारायण साहु ने वहन किया है। मैं उनके पुत्र पौत्रों के कल्याणार्थ एवं श्री भगवान् तथा श्रीगुरुचरण कमलों में भक्ति प्राप्ति हेतु आशीर्वाद देता हूँ और आप सब पाठक गणो से भी प्रार्थना करता हूँ कि आप सब भी उनको आशीर्वाद दें और भक्ति प्रदान करें अर्थात् उनके पुत्र पौत्रों की मङ्गल कामना करें।

भैय्या बालक वृन्द! यह जो बड़भागी गुरु भक्त गुरु के समक्ष फोटो रूप में बैठे धर्म उपदेश सुन रहे हैं इनका शुभ नाम बाबू लक्ष्मीनारायण साहु है इन्हीं ने अर्थ व्यय करके छपवाया है संत सेवा में उपस्थित को जा रही है।

सर्वं तीर्थाश्रयश्चैव सर्वं देवाश्रयो गुरुः।
सर्ववेद स्वरूपश्च गुरुरूपी हरिस्वम्॥

श्रीगुरुजीसे उपदेश सुन रहे हैं इन्हीं बड़भागीके अर्थ व्यय द्वारा यह पुस्तिका छपकर सन्तोंको समर्पित है।
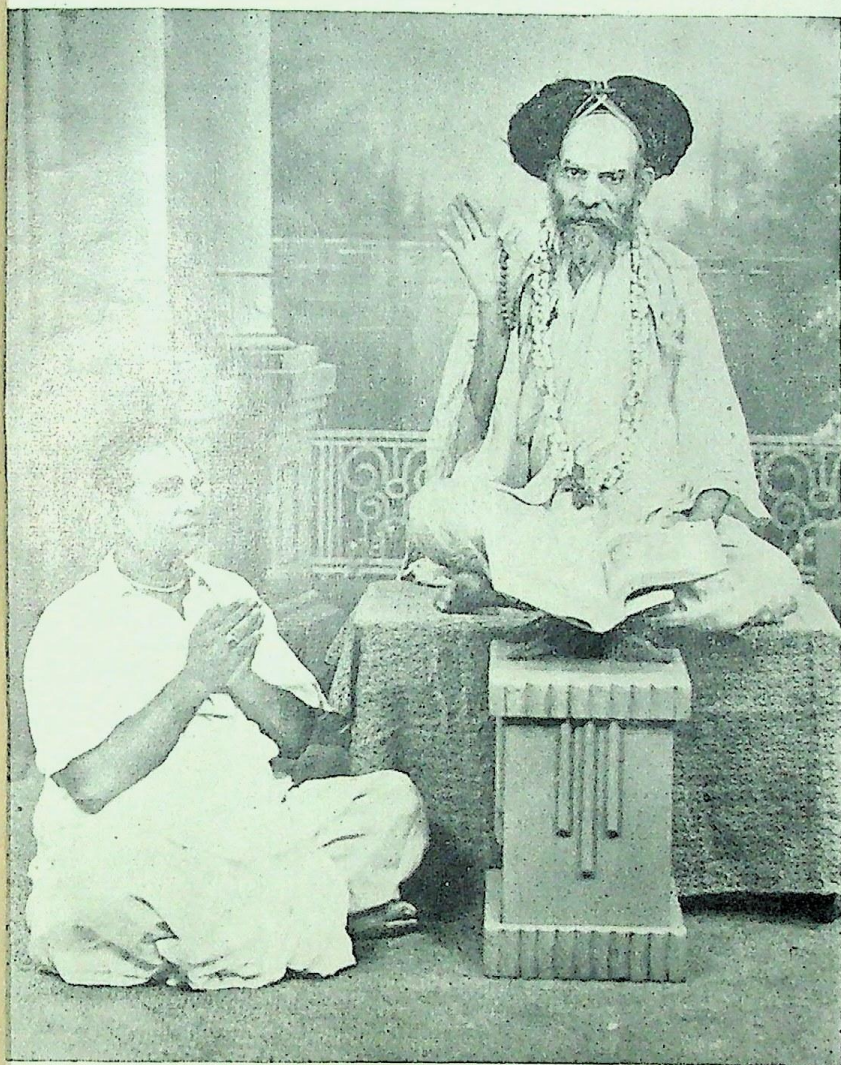
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

विद्वज्जनों का विवेचन तथा अनुमोदनः—

"पण्डित श्री शिवरामदास जी शास्त्री' व्याकरण, आयुर्वेद, साहित्याचार्य्य, साहित्यरत्न, न्याय, वेदान्त, शास्त्री" राजादरवाजा, वाराणसी।

श्री सीतापतिपादपद्मयुगलं यस्यास्तिचिन्तास्पदम्,
यद्भक्त्या जनकात्मजा स्वयमदात्पुण्ड्रं तु बिन्दुश्रियम्।
यत्कीर्तिर्विमलाभवच्च भुवने गंगेव सम्पावनी,
तं शान्त्यादि गुणाकरं गुरुवरं रामप्रसादं भजे॥ १॥

"श्री मानस-हृदय-मर्मप्रकाशिका" की अनुपम देन जगत के लिए है। श्री कवि सम्राट् गोस्वामीजी के छिपे हुए मार्मिक स्थलों के भावों को आपने स्पष्ट किया है और लघु शिशुओं के चरित्र निर्माण में सहायक बनाया है। काव्यों की गुण गरिमा को इस पुस्तक में स्थान दिया है। श्री सीताराम जी के सम्बन्ध में सांसारिक जीवों की तरह एवं नारद मोह, नारद के प्रति भक्ति भावना का उपदेश आपने करवाया जिससे जगत पर अच्छा प्रभाव पड़ा है। यह सत् शिक्षा का प्रचार स्कूल, कालेज विश्वविद्यालयों में समावेश करना चाहिए जिससे देश गौरवान्वित हो उठे। सात सोपानों का वर्णन इस पुस्तक में हुआ है। छोटे बालकों को सुरम्य शैली से समझाया गया है। योगियों को अष्टाङ्ग योग का अच्छा सुमार्मिक ढंग से *'योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः'* इस योग सूत्र पर यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार धारणा-ध्यान-समाधि को समझाया गया है। "जीव गति वर्णन'

का संमिश्रण बहुत ही अच्छा हुआ है। यथा-"भव कूप अगाध परे नर ते"। श्री मद्भागवत तृतीय स्कन्ध अ० ३१ में श्री कपिलदेव जी ने अपनी माता देवहूति को संसार से ममत्व को हटाने के लिए उपदेश दिया है इससे पुस्तक में और भी चमत्कार आ गया है। नवधा भक्ति वर्णन के प्रसङ्ग में-

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्री तुलसीकृत रामायण के उदाहरणों द्वारा नवधा भक्ति का संश्लेषण इस पुस्तक में अधिक उचित ढंग से हुआ है।

इस पुस्तक को लिखकर श्री महान्त जी महाराज ने अज्ञानी सब बाल जगत का बड़ा ही उपकार किया है। मानस के विषय में जो भ्रम पैदा हो गया है, आशा है कि उसकी निवृति इसके अध्ययन से हो जावेगी। मेरा ऐसा विश्वास है कि नव जगत एवं व्यास समाज के लिए यह एक अच्छा एवं भाव पूर्ण संग्रह होगा। जिस प्रकार से श्री तुलसी दल के बिना श्री राघवेन्द्र प्रसन्न नहीं होते उसी प्रकार से जनता तुलसी कृत मानस रामायण के उदाहरणों के बिना प्रसन्न नहीं होती है अतएव जनता जनार्दन के प्रसन्नार्थ एक एक प्रति सब सज्जनों को अपने पास रखना चाहिए।

इति शम्

पं० शिवरामदास "शास्त्री"

❋ लेखक की दूसरी प्रार्थना ❋

भैय्या बालक वृन्द, तथा सज्जन पाठक महानुभाव! एवं माताएँ, मैं स्त्री पुत्रादि त्यागकर विरक्ताश्रम में हूँ। यथा-'*विविक्त वासिनःसदा, भजन्ति मुक्तये मुदा ॥ निरस्य इन्द्रियादिकं, प्रयान्ति ते गति स्वकं*' ॥ और स्त्री का त्याग ही इन्द्रिय निग्रह का प्रथम सोपान है और जो वस्तु में घृणा नहीं होगी उसका त्याग नहीं होता है। इसी-लिए वैराग्यवानों ने स्त्री का त्याग और घृणा किया है और भूरि भूरि निन्दा किया है। विना स्त्री त्याग से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं हो सकता है। यथा- '*घृत कुम्भसमानारी तप्तंगार समः पुमान। तस्मात्घृतं च वह्निच नैकस्थाने धारयेत्* ॥' अर्थात् भरा हुआ घृत के घड़ा समान स्त्री है और जलता हुआ अग्नि के अंगार समान पुरुष है। एकत्र होते ही कामाग्नि जल उठैगा और ब्रह्मचय नष्ट हो जायगा। तब साधक अपने पथ से गिर जायगा।

इसीलिए घृत अग्नि न्याय से साधक को स्त्री से पृथक् रहना चाहिए। अत्री मुनि और अनसूया एकही पति पत्नी थे परन्तु दो कोस पृथक् रहकर साधक बने और सिद्ध हुए। अतः विरक्त साधक के लिए स्त्री पूर्ण कन्टक है अतएव वैराग्यवान् साधक मुमुक्षु प्राणी के लिए एक मात्र स्त्री ही अधोपतन का कारण है। यथा-'*रंभादिक सुर नारि नवीना। सकल असम शरकला प्रवीना ॥ करहिं गान बहु तान तरंगा। बहु विधि कीड़हि पानि पतंगा*' ॥ साधक को नीचे गिरा देती है

और साधक पथभ्रष्ट हो जाता है। यथा पाद्मे स्वर्ग खण्डे, अध्याय ६१ श्लो० १३ स्त्री दुर्गुण।

श्लो०-हरिभक्तिः कुतः पुंसां नारीभक्ति जुषांद्विजा।
राक्षस्य कामिनी वेषाश्चरन्ति जगति द्विजाः ॥१४॥
नराणां बुद्धि कवलं कुर्वन्ति सततं हिता।
तावद्विद्या प्रभवति तावज्ज्ञानं प्रवर्तते ॥१५॥
तावत्सुनिर्मला मेधा सर्व शास्त्र विधारिणी।
तावज्जयस्तपस्तावत् तावत्तीर्था निषेवणम् ॥१६॥
तावच्चगुरु शुश्रूषा तावद्विचारणे मति।
तावत्प्रबोधो भवति विवेकस्तावदेवहि ॥१७॥
तावत्सतां संग रुचिरस्ताव त्पौराणलालसा।
यावत्सीमन्तिनी नारी नील नयनान्दोलने नहि ॥१८॥

अर्थात् ऊपर कहे हुए सब धर्म कर्म तभी तक होते रहते हैं जब तक नौयुवती सुन्दरी स्त्री के कजरारे नेत्रों का इसारा पुरुष पर नहीं पड़ा होगा यथा-'जप तप नियम जलाशय भारी। होइ ग्रीषम शोषै सब नारी' ॥ तथा-मृग नयनी के नयन सर को अस लाग न जाहि' अतः 'बुधिबल सत्यशील सब मीना। वंशी सम तिय कहहिं प्रवीना' ॥ मृगा केसे नेत्र वाली स्त्री के नयन बाण लगते ही पुरुष की बुद्धि बल, विचार शक्ति ज्ञान सब समाप्त हो जाता है। तब "किं कर्त्तव्य विमूढ़ात्मा" हो जाता है पुनः-

जनः परिपतेद्विप्रा सर्व धर्म विलोपनम्।
तत्र ये हरिपादाब्ज मधुलेश प्रसादिताः ॥१९॥

तेषां नारी लोलाक्षी ज्ञेयणं हि प्रभुर्भवेत् ।
जन्म जन्म हृषीकेश सेवनं यैः कृतंद्विजाम् ॥२०॥

द्विजे दत्तं हुतं वह्नौ विरतिस्तत्र तत्रहि ।
नारीणां किकिलनाम सौन्दर्यं परिचक्षते ॥२१॥

भूषणानां च वस्त्राणां चाकचक्यं तदुच्यते ।
स्नेहात्म ज्ञान रहितं नारी रूपं कुतः स्मृतम् ॥२२॥

अर्थात् स्त्री के चकचके भूषण वस्त्रादि रूप को देखते ही उनमें स्नेह उत्पन्न हो जाता है और स्नेह होते ही अध्यात्म आत्मज्ञान सब समाप्त हो जाता है। यथा–'*जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। वरियाई विमोह वश करई*' ॥ तथा–'*नारि विश्व माया प्रबल*' सर्व ज्ञान सून्य हो जाता है। यथा–'*भागेउ विवेक सहाय सहित सो सुभट संयुग महिमुरे*' तथा–'*भए काम वश योगीश तापस*' प्राणी काम वशीभूत हो जाता है।

भैय्या बालक वृन्द, तथा वैराग्यवान् साधक वृन्द, स्त्रियों का स्वरूप यथार्थ में सर्वाङ्ग केवल मलमूल, मांस मज्जा और हड्डी का ही भान्ड है उसमें सौन्दर्य कहाँ है ऐसा समझ विचारकर वैराग्यवान् साधक के लिये स्त्री का पूर्ण त्याग किया गया है। यथा–

पूय मूत्रपुरीषास्ट कत्वं गमदोस्थिवपान्वितम् ।
कलेवरं हितन्नामकुतः सौन्दर्यमत्रहि ॥२३॥

साधक के लिए स्त्री सर्वथा त्याग है। यथा–'*पुरुष त्याग सक नारिहीं जौ विरक्त मति धीर*'। पुरुष को यदि वैराग्य हो और बुद्धि विषय से उपरत हो गई हो, चित्त शान्त हो तो किसी समय भी स्त्री

को त्यागकर सकता है। अतः स्त्री वैराग्य का पूर्ण कन्टक है घृणित है और सर्वथा त्याग है वैराग्यवानों ने स्त्री की भूरि भूरि निन्दा की है।

हाँ स्त्रियों की भी वन्दना है। यथा-'*नारी निन्दा न करो नारी नर की खान। नारी ते नर होत हैं ध्रुव प्रहलाद समान*'। जैसे मन्दालसा, सुनीती, सुमित्रा इत्यादि फिर ऐसी कितनी स्त्रियाँ हैं इनसे ध्रुव प्रहलाद इत्यादि हुए जो परम श्रीराम भक्त हुए, परन्तु सैय्या विचार करने की बात है इन सबों ने भी तो गर्भयातना का दुःख भोगा ही। यथा, श्रीमद्भागवते, स्क० ३ अध्याय ३१ श्लो० ५।

मातुर्जग्धान्नपानाद्यै रेधद्धातुर सम्मते।
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते सजन्तुर्जन्तु तम्भवे ॥५॥

माता के खाए पिए हुए रस पीव को खाकर वृद्धि होते हुए अनेकों कीट जहाँ भरे हुए हैं ऐसे विष्ठा मूत्र से सड़े हुए दुर्गन्धमय गर्भाशय रूपी गड्ढे में सोता है ॥५॥

कृमिभिःक्षत सर्वांगः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्।
मूर्च्छा माप्नोतु रुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥६॥

उस समय शरीर अति कोमल और वहाँ पर रहने वाले क्षुधित अनेकों कृमि शरीर को बारम्बार काटते रहते हैं और क्षणक्षण में नाना पीड़ाओं से क्षुभित मूर्छित करते रहते हैं ॥६॥ इत्यादि देखिए।

अध्यात्म रामायणे

श्लो०-*स्मृत्वा सर्वाणि जन्मानि पूर्व कर्माणि सर्वशः।*
जठरानल तप्तोऽयमिदं वचन मब्रवीत ॥

जीव गर्भ में अनेकों जन्म के अपने कुकर्मों को स्मरण करता है कि मैंने हजारों लक्षों योनियों में जन्म लेकर करोड़ों स्त्री पुत्रादि के मोह तथा दुःख को अनुभव किया और कुटुम्बियों का भरण पोषण किया परन्तु मैं अभागा भगवान् को तो स्वप्न में भी नहीं स्मरण किया, अब उसी का फल स्वरूप गर्भयातना भोग रहा हूँ।

अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीम भवार्णवोदरे।
अगति शरणागतं हरे कृपया केवल मात्म सात्कुरु॥

हे प्रभु मैं हजारों करोड़ों पाप का खजाना बनकर भयंकर संसार सागर माता के गर्भ योनियातना पिंजरा में बन्द होकर पड़ा हूँ मैं किंकर्त्तव्य हूँ, हे शरणागत रक्षक! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिए आपकी केवल अहैतुकी कृपा से ही मेरा उद्धार होगा। इत्यादि रोता है। पुनः जन्मयातना बालयातना दुःख भोगता है।

भैय्या बालक वृन्द, यदि भगवान् की कृपा हुई और संसार से किसी प्रकार निवृत्ति हुई तो भगवान् की शरण लेता है पुनः नाना विघ्नों को सहन करते हुए अपना कल्याण भक्ति मुक्ति पाता है।

ध्रुव पहलाद भी तो गर्भयातना बालयातना भोगकर भगवान् की शरण हुए और नाना प्रकार विघ्न बाधाएँ कायक्लेश भोगते हुए पूर्व कर्मों का प्रायश्चित्त करके भगवान् के भजन से ही उद्धार हुआ है। अतः भगवान् से विमुख कराने वाली एक मात्र मुमुक्षों के लिए स्त्री ही कन्टक है।

हाँ विषय भोगियों के लिए स्त्री अवश्य रत्न है उनको गृहिणी

लक्ष्मीरूपा है। क्योंकि विष का कीड़ा तो विष को ही अमृत मानता है। यथा–'*बारहिं बार विषय रस खात अघात न जात सुधा रस फीको*' तृप्त नहीं होते हैं भगवान् का नामामृत फीका लगता है।

भैय्या बालक वृन्द, वैराग्यवान् मुमुक्षु चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री परन्तु एक का एक कन्टक है स्त्रियाँ भी मुक्तिकामना से वैराग्य लेकर भगवान् की शरण होती हैं, जैसे पतिपरायणा अहल्या इत्यादि अ० रा० बाल कान्डे सर्ग ५ श्लोक २१।

श्लो०-शक्रस्तु तांधर्षयितुमन्तरं प्रेप्सुरन्वहम् ॥२१॥
कदाचिन्मुनिवेषेण गौतमे निर्गते गृहात्।

किसी समय इन्द्र मुनि गौतम का वेष बनाकर घर में आया और अहल्या का पतिव्रत धर्म नष्ट कर ही डाला और परम तपस्विनी वेदवती को रावण आकर बाधा दिया एवं पतिपरायणा वृन्दावती का भी व्रत भंग हो ही गया, और १६००० हजार व्रज की गोपियाँ सब अपने २ पुरुषपति को त्याग करही भगवान् की शरण ली थीं, वर्तमान मीराबाई इत्यादि. पति के द्वारा अनेकों विघ्नों को सहन करती हुई भगवान् की परमभक्ता हुईं और अपनी मुक्तिभुक्ति बनाईं। ऐसाही पुरुष के लिए स्त्री कन्टक है।

भैय्या बालक वृन्द, मुमुक्षु प्राणी के लिए पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष एक का एक कन्टक है। यथा– *पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्वभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ*'॥ तथा– '*सबकी ममता ताग बटोरी*' अर्थात् स्त्री पति पुत्र की ममता त्याग करै

और पुरुष स्त्री पुत्रादि की ममता त्याग करै। पुनः '*गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोकहँ जानै दृढ़ सेवा*' अर्थात् स्त्री पुरुष का संयोग होना ही भवकूप योनियातना संसार बन्धन का कारण है, इसीलिए वैराग्यवान् मुमुक्षु के लिए स्त्री पुरुष का परस्पर में सर्वथा त्याग और घृणित बताया गया है।

अतः '*पुरुष त्यागसक नारिहीं जौ विरक्त मति धीर*' यदि वैराग्य हो तो पुरुष किसी समय भी स्त्री का त्याग कर सकता है। यथा-
श्लो०-'*संसार सद्भावनभक्ति हीना चितस्य चौराहृदि निर्दया च।*
विहाय योगं कलिता च येन वृथागतस्तस्यनरस्य जीवितम्॥

सर्व दुर्गुणमय, यदि स्त्री को त्यागकर पुरुष भगवान् का भजन नहीं किया तो उसका जीवन वृथा है। इसी से भगवान् श्रीराम जी का मर्त्यलोक में अवतार हुआ। यथा-'*कामिन की दीनता दिखाई। धीरन के मन विरति दृढ़ाई*'॥ संसारी विषयी प्राणी को स्त्री में अतिशय प्रेम करना चाहिए और वैराग्यवान् को बताए। यथा-'*राखिय नारि यदपि उर माहीं। युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं*'॥ स्त्री किसी के वशीभूत नहीं है स्त्री मेरी मायारूपिणी है। यथा-'*माया रूपी नारि*' वैराग्यवान को स्त्री से बहुत दूर रहना चाहिए स्त्री सर्वथा त्याज्य है।

भैय्या बालक वृन्द, तथा वैराग्यवान् महानुभावो, जीवाचार्य श्रीलक्ष्मण जी के द्वारा स्त्री का त्याग दिखाया गया है, यथा-'*रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई*' तब श्रीराम जी श्रीलक्ष्मण जी के पास पठाए, श्रीलक्ष्मण जी उनके नाक कान काटकर कुरूप कर दिए और बोले, '*सुनु सुन्दरि मैं उनकर दासा* हे सुन्दरी मैं रामदास, रामभक्त हूँ

स्त्री से दूर रहता हूँ स्त्री भक्ति का कन्टक है। मैं ब्रह्मचारी हूँ श्रीराम जी की सेवा करता हूँ ऐसा कह सूर्पणखा का तिरस्कार किए।

भैय्या वैराग्यवान् वृन्द, जगज्जननी भगवती श्रीसीता जी के साथ श्रीलक्ष्मण जी १४ वर्ष वनवास किए परन्तु चरण के अतिरिक्त श्रीजानकी जी का कोई अंग प्रत्यंग मुख कमल को भी नहीं देखा, यथा–'*नाहं जानामि केयूर नाहं जानामि कंकणम। नूपुरं मात्र जानामि नित्यपादाभिवन्दनात्*'॥ अर्थात् मैं प्रणाम करते समय चरण कमल का दर्शन करता हूँ इससे नूपुर केवल जान सकता हूँ। फिर भी, '*मर्म वचन जब सीता बोली*' कुछ मर्म भेदी कटु वचन कह दिए, परन्तु वह माया सीता थी और वाल्मीक रामायण में तो असल ही जगदम्बा श्रीसीता जी थीं, इसका स्पष्टीकरण बालमीक रामायण में पूर्ण मिलैगा।

अतः '*पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अविनासी*' अर्थात् यह सब नर नाटक लीला है मनुष्य में ही यह सब घटता है। वही मनुष्यावतार लेकर भगवान् श्रीराम जी तथा भगवती श्रीसीता जी मनुष्य को शिक्षाप्रद चरित्र करके दिखा रहे हैं। '*यथा अनेकन वेष धरि नृत्य करै नट कोय। जोइ जोइ भाव देखावै आपुन होय न सोइ*'॥ तैसेही भगवान् श्रीराम जी परात्परब्रह्म परमात्मा हैं फिर भी, '*नटकृत विकट कपट खगराया*' अथवा '*नट मर्कट इव सबहिं नचावत*' कोई जान नहीं सकता। तथा-'*यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुरा*'। अतः '*विधि हरिशंभु नचावनि हारे*' किन्तु '*तेऊ न जानहि मर्म*' रंगमंच

पर सब संसार ही नाच रहा है। *'शारद श्रुति शेषा ऋषय अशेषा जाकहँ कोउ नहि जाना'* यही है श्रीराम लीला इत्यादि।

सती के मोह में सब देखाया गया है न सीता का हरण ही हुआ है न श्रीराम जी रोते ही हैं वरं *'जहँ देखहि तहँ लक्ष्मणसीता'* तथा–*'जहँ देखहिं तहँ प्रभु आसीना'* इत्यादि देखो, यथार्थ में, यथा–*'जगन्तिनित्यं परितो भ्रमन्ति, यत्सन्निधौ चुम्बक लोहवुद्धि। येतन्न जानन्ति विमूढ़ चित्ताः स्वाविद्यया संवृत मानसा ये'*॥ अर्थात् चुम्बक के निकट होने से जिस प्रकार जड़ लोहे में गति उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार जिनकी सन्निधि मात्र से यह विश्व सदा ढका रहता है और उद्भव स्थिति प्रलय होता रहता है चक्र चलता रहता है संसार भ्रमण करता रहता है, उन परात्परब्रह्म श्रीराम जी को जिनका हृदय अज्ञानता से ढका हुआ है वे मूढ़जन नहीं जान सकते हैं, तथा–*'रामो न गच्छति न तिष्ठति नानुशोचत्याकांक्षते त्यजति नो न करोति किंचित्। आनन्दमूर्ति रचलः। परिणामहीनो मायागुणा न न गतोहितथाविभाती'*॥ श्रीराम जी वास्तव में न चलते हैं न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं और न कोई क्रिया ही करते हैं। श्रीराम जी तो सदा आनन्द स्वरूप अविचल और परिणाम रहित हैं केवल माया के गुणों से व्याप्त अर्थात् छिपे हुए के कारण ऐसे प्रतीत होते हैं यथार्थ में श्रीराम जी की लीला कोई जानता नहीं है। यथा–*'यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जानै कोय'*। और *'निज भ्रम नहिं समुझहि अज्ञानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी'* भगवान् की यह नर नाटक लीला मनुष्य में ही घटती है और मनुष्य की शिक्षा के ही लिए

आपका अवतार है। तथा-'*जस काछिय तस चाहिय नाचा*' तभी सुन्दर होता है। यथा-'*कबहूँ योग वियोग न जाके। देखा प्रगट विरह दुख ताके*'॥

भैय्या साधक वृन्द, वैराग्यवान् को स्त्री सर्वथा त्यागना चाहिए, तभी हम साधक बन सकते हैं, क्योंकि पुरुष का ब्रह्मचर्य ही पुरुषत्व है उसकी रक्षा करने ही से हम पुरुषार्थ कर सकते हैं और भक्तिमुक्ति हो सकती है, इसमें न स्त्री की निन्दा है न पुरुष की निन्दा है, यह तो साधक अपना मार्ग पुष्ट करता है, क्योंकि जब तक जिस वस्तु में दोष नहीं देखा जायगा तब तक उसका त्याग नहीं होता है। यथा-'*तेहिते कछु गुण दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने*'॥

भैय्या साधक वृन्द, यथा-'*यहि तनुकर फल विषय न भाई*' तो आहार, निद्रा और मैथुन यही तीनि विषय हैं, तथा-'*संयम यह न विषय की आसा*' और विषय का ही त्याग बताया गया है। यथा-'*विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः*'। साधक शनैः शनैः निराहार होते हैं। यथा-'*करहिं अहार साक फल कन्दा* पुनः '*बारि अहार मूल फल त्यागे*' पुनः '*वर्ष सहस दश त्यागेउ सोऊ*' इस प्रकार साधक निराहार होता है और मैथुनादि विषय निवृत्त होता है तब वीर्य की रक्षा होती है। तथा-'*साधक नाम जपहिं लवलाए*' अथवा '*नाम जीह जपि जागहिं योगी। विरति विरंचि प्रपंच वियोगी*' तब '*ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं अनूपा*' 'साधन सफल होता है और ब्रह्मानन्द सुख पाता है। तथा-'*साधक मन जस मिले विवेका*' परन्तु इसका मूल कारण है

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्य रक्षा का मूल कारण है आहार का त्याग, तभी सब साधना सफल होगी, और तभी आप श्रीराम भक्त हो सकते हैं। यथा–'*रघुपति भक्ति करत कठिनाई*' तथा–'*धर्मशील कोटिन महँ कोई*' से आरम्भ और '*धर्मसील विरक्त अरुज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी*' इतने साधनों के बाद भक्ति कही गई है। यथा–'*सबते सो दुर्लभ सुर राया। राम भक्ति रत गत मदमाया*' तथा–'*राम कृपा काहू एक पाई*' इत्यादि साधकों को साधु कहा जायगा, तैंतीश करोड़ देवताओं में से एक श्रीशंकर जी ही साधु कहे गए हैं। यथा–'*शिव समको रघुपति व्रतधारी। बिनु अघ तजी सती अस नारी॥ प्रनकरि रघुपति भक्ति दृढ़ाई*' ऐसा ही, तथा–'*शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे। साधवा नहिं सर्वत्र चन्दनं न वने वने*'॥ साधु नाम अथवा जाती नहीं है, साधक को साधु कहते हैं। '*आपन समुझि साधु कह कोभा*' हम अपने कार्डों में हजार टैटिल छपवा लें, साधु '*सदा अपन पौ रहहिं दुराए*' साधु अपने को छिपाकर रखते हैं प्रकाश करने से जैसे हवा में कपूर उड़ता है तैसे साधक के सब गुण उड़ जाते हैं। यथा–'*जैसे बिनु बिराग सन्यासी*' हो जाता है। अस्तु:-

विनीतः—

महन्त गंगादास
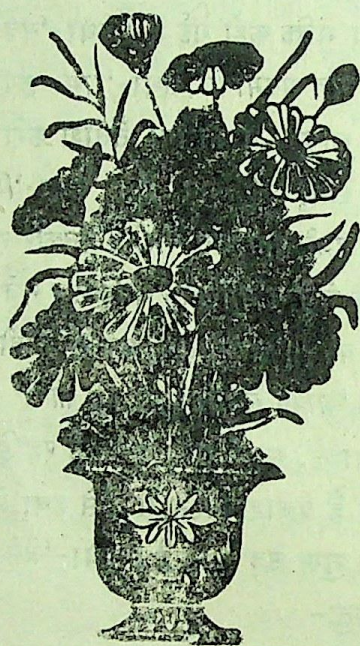
पण्डित श्री हरिवल्लभ दासजी "शास्त्री"

"नव्य व्याकरण, नव्य न्यायाचार्य" कृष्ण गङ्गा, मथुरा।

"मानस हृदय मर्म प्रकाशिका" नामक पुस्तक का मैंने अवलोकन किया। वस्तुतः गोस्वामी तुलसीदासजी के आगाध मानस के हृदय का प्रकाशन इस पुस्तक में श्रीमहाराजजी ने अपने दीर्घकाल के अनुभव से किया है, ऐसा प्रकाशन आज तक के किसी टीका में दृष्टिगोचर नहीं होता है। इस पुस्तक में केवल संकलन ही नहीं है अपितु श्री महाराज जी ने अपने योग बल से, जीवों के लिए इस लोक तथा परलोक में सुख प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग भी प्रदर्शित कराया है। जिस मार्ग का आश्रयण करने से जीवात्मा सीधा अपने लक्ष्य पर निर्विघ्न पहुँच सकता है। इस पुस्तक में पद पद पर जीवात्मा के कल्याण की ही चर्चा की गई है। इस पुस्तक में—

सङ्गं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य॥
कदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।

इस सिद्धान्त का विशेषतः प्रतिपादन है। यह ग्रन्थ ऐसी भाव भंगियों से भरा हुआ है जो साधारण पढ़ा-लिखा भी आनन्द प्राप्त कर सकता है।

इस ग्रन्थ में प्रतिपादित मार्ग का जो भी जीवात्मा अनुसरण करेगा वह निश्चय ही इस लोक में आत्म सुख का अनुभव कर अन्त में भगवच्चरणारविन्द को प्राप्त होगा यह दृढ़ विश्वास है।

इदानीम्

पं० हरिवल्लभ दास शास्त्री
प्रधानाचार्य
उपदेशक महाविद्यालय
श्रीभारत धर्म-महामण्डल, जगतगंज, वाराणसी

अनुक्रमणिका

श्रीरामः शरणं मम

श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये

मङ्गलाचरणम्

आपदामपहरतारं दातारं सर्वसंपदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥
मङ्गलं कौशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये ।
चक्रवर्त्ति तनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥
वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामल मूर्त्तये ।
पुंसां मोहन रूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥
हे मैथिली हृदय पंजक भृंगराज ?,
हे स्वीयभक्तजनमानसराजहंस ? ।
हे सूर्यवंशविभवैभव रामचन्द्र ?,
त्वत्पादपंकजरजः शरणं ममास्तु ॥
मङ्गलानां च कर्त्तारौ हर्त्तारौ च अमङ्गलम् ।
जीवानां च सनिश्तारौ सीताराम नमामितम् ॥
इष्टदेव मम बालक रामा । शोभा वपुष कोटि शत कामा ॥
बन्दौं बालरूप सोइ रामू । सब बिधि सुलभ जपत जेहि नामू ॥
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दशरथ अजिर बिहारी ॥
अब प्रभु कृपा करहु यहिभाँती । सब तजि भजन करौं दिनराती ॥

मानस हृदय मर्म प्रकाशिका

अथ बाल-बोध

बालानां बोधनार्थाय, शिशूनां शिक्षणाय च।
जीवानां निस्तारणाय, मानस मर्मवदाम्यहम् ॥

भैय्या बालक गण ! वा प्राणी वृन्द ! इसको बारम्बार पढ़ो, समझो और करो। *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*। मैं बालकों को आत्म बोध, शिशुओं को शिक्षाप्रद, और जीवों के निस्तार पाने का मार्ग कहता हूँ। सुनो-भइया, आप सब कल्याण का बालकांक तो पढ़े ही होंगे और इस वर्ष में कल्याण का मानवता अंक तो पढ़ते ही होंगे, उसमें बड़े-बड़े विद्वानों का आत्मभाव, शास्त्र सिद्धान्त प्रगट किया गया है। बालकों के आदर्श राम कृष्णादि तथा ध्रुव, प्रह्लादादि के आचरण द्वारा दिखाये गए हैं, जो जगतपूज्य हैं और मानवतांक में भी आचरण व्यवहार से ही मानवता बताई गई है यदि सदाचरण, सद्व्यवहार शास्त्र के अनुकूल है तब तो मानवता है और शास्त्र से प्रतिकूल है तो वही दानवता हो जाती है।

आचारः परमो धर्मः, आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानं, आचारात् किं न साध्यते ॥

भैय्या बालक वृन्द ! शुद्ध आचार ही परम धर्म है, आचार ही परम तप है और आचार ही परम ज्ञान है। पवित्र आचार होने

ਬੰਦੌਂ ਬਾਲਰੂਪ ਸੋਈ ਰਾਮ • ਸਬ ਸਿਧਿ ਸੁਲਭ ਜਪਤ ਜੇਹਿ ਨਾਮ
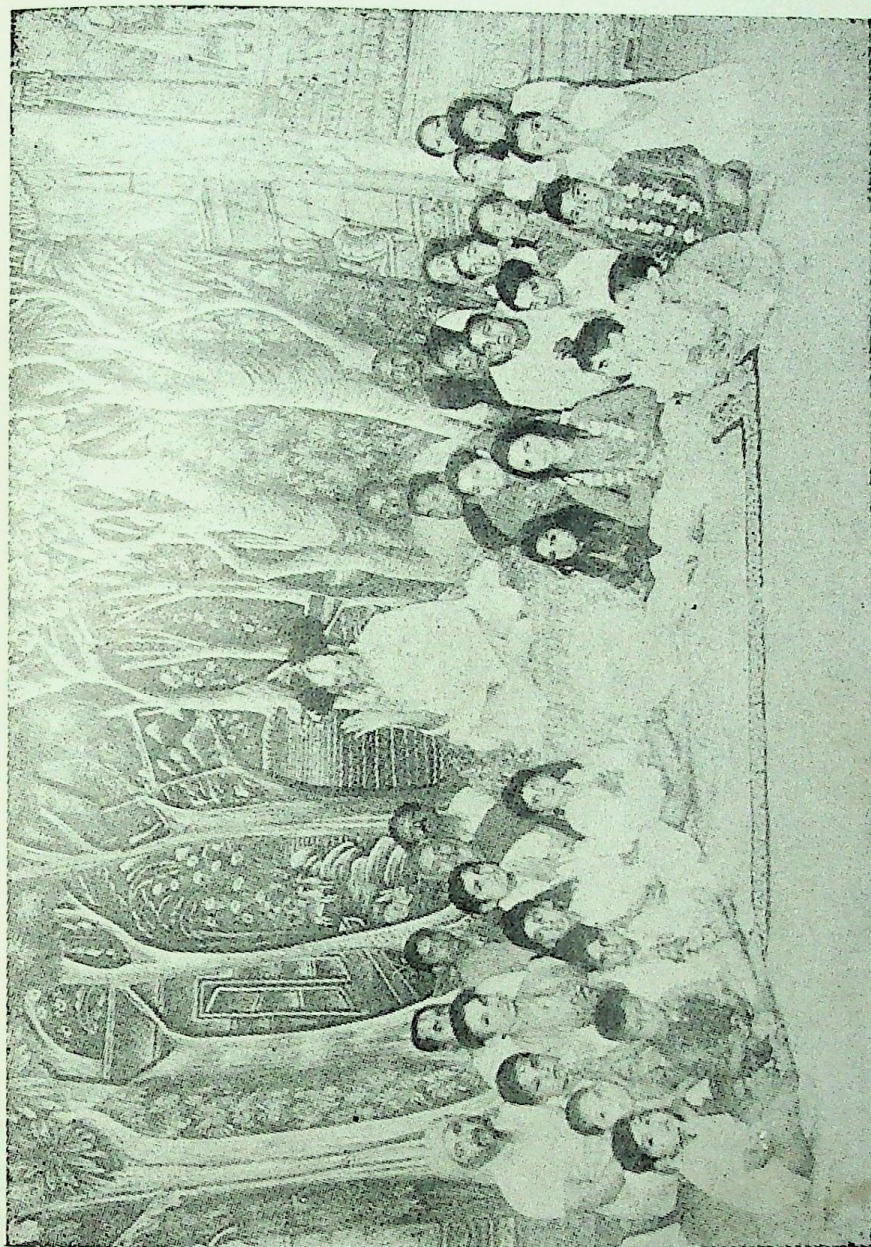
से मनुष्य क्या नहीं कर सकता अर्थात् सब कुछ कर सकता है साकेत वैकुण्ठादि आचार से ही प्राप्त होते हैं।

हरिभक्ति परोवापि, हरिध्यानरतोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वयमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते ॥

भैय्या! प्राणी का आचार शुद्ध न होने से कितना भी हरि भक्ति परायण हो, कितना भी हरि ध्यानरत हो फिर भी पतन हो जायगा अतएव आचारवान होना नितान्त आवश्यक है परन्तु आचार भ्रष्ट होने के लिये एक मात्र स्त्री ही नरक का द्वार खोलकर बठी है स्त्री की स्मृति होते ही प्राणी आचार भ्रष्ट हो जाता है यथा- "*द्वारं किमेकं नरकस्य नारी*" भैय्या! देखिए मानस पढ़िये तो आपको पूरा पता लग जायगा कि धर्म परायण, धैर्यवान् सर्व समर्थ भगवान् राम ने अपने मर्त्यलोक की लीला विभूति में दर्शाया है कि- "*माया रूपी नारि*" तथा "*नारि विश्व माया प्रबल*" अतः सांसारिक जीव स्त्री के पीछे अपने आचार से गिर जाता है। यथा-

बिगत दिवस गुरु आयसु पाई। सध्या करन चले दोउ भाई ॥
प्राचीदिशि शशि उयेउ सुहावा। सियमुखसरिस देखि सुखपावा॥
बहुरि विचार कीन्ह मनमाहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं ॥
दो०-जन्मसिंधु पुनि बन्धुविष, दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रंक ॥
घटै बढ़ै विरहिन दुःखदाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई।

कोक शोक प्रद पंकज द्रोही। अवगुण बहुत चन्द्रमा तोही॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
करिमुनि चरणसरोज प्रणामा। आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा॥

बस, संध्या करना बन्द हो गया। श्रीसीता जी के मुख मंडल चन्द्रमा को देखते ही और नाना प्रकार से मुख शोभा की हृदय में आलोचना करते करते संध्या तर्पण न करके वापस चले आए और श्रीगुरु की आज्ञा पाकर सो गए। त्रिकाल संध्या तर्पण जो प्राणी का नियमित सर्वश्रेष्ठ आचार है वह सम्यक् प्रकार से बन्द हो गया। जिसको श्रीराम जी अरण्य कांड के अन्त में स्त्री को स्मृति का दोष कारण नारद के प्रति प्रकट किये हैं। "*काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धारि। तिन महँ अति दारुण दुःखद, माया रूपी नारि*"॥ से लेकर। "*धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा। होइ हिम तिनहिं देत दुख मन्दा*"

अतएव मनुष्य का कल्याणमय जो नाना प्रकार का सन्ध्या तर्पण होम यज्ञानुष्ठानादि धर्म है वह कमल रूपी परम कोमल है, उसको नाश करने के लिए स्त्री हिमकर है (अर्थात् परम शीतल हाव-भाव सम्पन्न मधुर हास्य युक्त मुख मण्डल चन्द्रमा के सदृश्य) जो कमल रूपी धर्म को गला देता है। शेष में यह कहा जाता है।

भैय्या बालक वृन्द तथा मानवमात्र सभी के लिए जो प्राणी अपने कल्याण के लिए संसारासक्ति छोड़कर वैराग्य मार्ग का आश्रय लेते हैं उनके त्याग की प्रधानता एक मात्र स्त्री ही है, यथा—"पुरुष *त्याग सक नारिही जौ विरक्त मति धीर। न तु कामी विषयन विवस*

विमुख जो पद रघुवीर' स्त्री को त्यागना बहुत ही कठिन है। और स्त्री त्याग से ही ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य दृढ़ होने से ही जीव संसार से मुक्त होता है परन्तु वैराग्यवानों के ब्रह्मचर्य का कन्टक कामासक्ति है और कामासक्ति से जीव का पतन हो जाता है श्रीमद्भागवते यथा—

श्लो०-कर्मणादैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाःप्रविष्ट उदरे पुंसोरेतः कणाश्रयः॥

अर्थात् दैव प्रेरणा से देह पाने के लिए जीव पुरुष के लिंग द्वारा अधोपतन होकर वीर्य रूप से भवकूप स्त्री के योनि मार्ग गर्भोदर में प्रवेश करता है यही है जीव का बन्धन और यह बन्धन कामासक्ति होने ही से यथा-"काम के केवल नारि' कामासक्ति का प्रधान कारण एकमात्र स्त्री ही है, तथा "काम कृषानु बढ़ावनिहारी" और स्त्री ही काम का निवास स्थान है।

श्लो०-सुवेषं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनि क्लिन्द्यन्ति नारीणां सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

तथा—भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होहि विकल मन सकैं न रोकी। जिमि रविमणि द्रव रविहिं विलोकी॥

स्त्री का सर्वाङ्ग काम रूप ही है। और स्त्री काम का ही स्थान है तथा-"नारि विवस नर सकल गोसाईं' कामदेव स्त्री द्वारा ही प्राणी को विवश करता है। पद्मपुराणे।

श्लो० किं पुनः कामिनी देव यस्या अंगेन वैबलम् ।
कामिनी नामहं देव अंगेषु निवसाम्यहम् ॥
भलं कुचेषु नेत्रेषु कुचाग्रेषु च सर्वदा ।
नाभौकट्यां पृष्ठ देशे जघनेयोनि मन्डले ॥
अधरे दन्तभागेषु कुन्तायां हि नसंशयः ।
अंगेष्वेनं प्रत्यंगेषु सर्वत्र निवसाम्यहम् ॥
नारी मम गृहं देव सदा तत्र वसाम्यहम् ।
तत्रस्थ पुरुषान्सर्वान्मारयामि न संशयः ॥
स्वभावे ना वलादेव संतप्ता मम मार्गणे ।
पितरं मातरं दृष्ट्वा अन्यस्यजन बान्धवम् ॥
सुरूपं सुगुणं देव मम वाणा हता सती ।
चलते नात्र सन्देत्ये विपाकं नैव विचिन्तयेत् ॥
योनि स्पन्दैत नारीणां स्तनाग्रौ च सुरेश्वर ।
नास्ति ध्यैर्यं सुरेशान सकुला नाशयाम्यहम् ॥

भैय्या वालक वृन्द ! तथा वैराग्यवान सज्जनो, देखिये ऊपर लिखे हुए प्रमाणों से स्त्री के सर्वांग में कामदेव का ही वास स्थान है। जहाँ स्पर्श होगा वहीं विजुली की तरह काम वाण विध जायगा, फिर तो सँभलना मुश्किल ही नहीं वरं बचैगा ही नहीं। यथा–"बुधिबल सत्य शील सब मीना। वंशी समतिय कहहिं प्रवीना' बुद्धि, बल, सत्य, शील सर्व नाश हो जायगा और जीवन नेवछावरि कर देना होगा। तथा–"नारि विश्व माया प्रबल" स्त्रियों का सर्वांग अवगुणों से ही पूर्ण है। "अवगुण मूल शूलप्रद प्रमदा सब दुखखानि"

सब दुःखों की खानि ही है जो मनुष्य स्त्री की माया में फँस गये हैं वे तो भवकूप अर्थात् योनि अन्धकार कूप में पड़ेंगेही, फिर तो जन्म मरण का बीज वपन हो जायगा, यथा-"*काम क्रोध लोभादि मद प्रवल मोह की धार। तिनमहँ अति दारुण दुखद माया रूपी नार*" सर्व दुःख रूपही हो जाना होगा और उपाय ही क्या है।

भैय्या बालक वृन्द ! जो बड़भागी जन तीव्र वैराग्य लेकर स्त्री से उत्तीर्ण हो चुके हैं अर्थात् इन्द्रिय निग्रह में तत्पर साधनावस्था में हैं उनका अधोपतन करने के लिए एक मात्र स्त्री ही प्रबल कन्टक है। यथा-"*रंभादिक सुर नारि नवीना। सकल असम शरकला प्रवीना॥ करहिं गान बहुतान तरंगा। बहुविधि कीड़हिं पानि पतंगा॥*" जब स्त्रियों के हावभाव रूपी कामदेव के मन्द शीतल सुगंध पवन के झकोरे चले। यथा-'*चली सुहावनि त्रिविध बयारी। काम कृषानु बढ़ावनि हारी*' तब प्राणी विवश हो जाता है। यथा-'*घृतकुंभसमा नारी तप्तंगार समः पुमान। तस्माद्घृतं च वह्निं च नैक स्थाने धारयेत्*' एकत्र होते ही भक्क से जल उठैगा, इसीलिए वैराग्यवान प्राणी स्त्री से बहुत दूर रहते हैं।

श्लो०-विश्वामित्र पराशरादि प्रभृतयोः वाताम्बु
पर्णाशनम स्तेऽपि स्त्री मुख पंकजं
सुललितौ दृष्टैव मोहंगताः। शाल्यन्नं
घृत पयोदवियुतं ये भुंजन्ति मानवाः
तेषामिन्द्रिय निग्रहो यदि भवेद्विध्यस्तरति सागरे॥

अर्थात् विश्वामित्र, पराशर इत्यादि महा महा मुनीश्वर कोई

पत्ता खाते थे, कोई जल कोई वायु खाकर रहते थे, यथा-"*कछु दिन भोजन वारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा*" जो कामदेव शक्ति को जला डाले हैं परन्तु वे भी स्त्री के चन्द्रमुख को देखकर कामासक्ति को प्राप्त हुए है। यथा '*भये काम वश योगीश तापस पामरन की को कहे। देखहिं चराचर नारि मय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥ देखि मुयहु मन मनसिज जागा*" स्त्री को देखकर मरे हुए पुरुष के मन में भी कामदेव की जागृति हो गई।

अतः भैय्या बालक वृन्द. तथा वैराग्यवान प्राणियो! यदि अपना कल्याण चाहते हैं तो स्त्री से बहुत दूर रहिये, वैराग्यवान पुरुष को सर्वथा त्याग बताया गया है, इतनी दूर की स्त्री शब्द की व्याख्या नहीं करना, स्त्री से संभाषण, स्पर्श नहीं करना स्त्री के अंग प्रत्यांग को स्मरण नहीं करना यथा-"*भूषणानां च वस्त्राणां चाक-चक्यं तदुच्यते। स्नेहात्म ज्ञान रहितं नारी रूपं कुतः स्मृतम्*"॥ स्त्री के रूप को स्मरण करते ही ज्ञान वैराग्य सब चौपट हो जायगा और काम वासना जागृत हो जायगी।

स्पर्श होते ही विजुली सी लगैगी और जीवन नष्ट हो जायगा। तथा-"*को नाम नारी मासाद्य सिद्धिं प्राप्नोति भूतले। कामिनी कामिनी संग मित्यपि नर सन्त्यजेत्*"॥ स्त्री अथवा स्त्री गामी इनका संग सदा त्याग करना चाहिए।

भैय्या बालक वृन्द, तथा वैराग्यवान महानुभावो, आप सब अच्छे से विचार करैं देखिए, भगवान् श्रीरामचन्द्र परब्रह्म परमात्मा

होते हुए भी अपनी मानव लीला में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का मार्ग दर्शाए हैं। यथा "*कामिन की दीनता देखाई। धीरन के मन विरति दृढ़ाई*' वन यात्रा में श्रीजानकी जी के विरह में भगवान श्रीराम जी रोदन किए हैं वह लोक शिक्षा मात्र था यथार्थ में, '*विसमय हर्ष रहित रघुराऊ* तथा '*बाहिज चिन्ता कीन्ह विशेषी*' उसमें कामिन अर्थात् प्रवृत्ति वाले विषयियों को स्त्री में कितनी आसक्ति होती है यह देखाए, और वैराग्यवान वीतराग मुनियों तथा साधकों को बताए कि भैय्या! स्त्रियों के पीछे जन्म जन्मान्तर रोना होता है स्त्री से दूर रहना चाहिए। '*राखिय नारि यदपि उरमाहीं। युवती शास्त्र नृपति वश नाहीं॥ विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुण खानी* इससे वैराग्यवानों को स्त्री से घृणा हुई और वैराग्य दृढ़ हुआ।

भैय्या बालक वृन्द! ऐसा ही लोक शिक्षा संसारी विषयी जीव जैसा करते हैं पुरुष बालकाल से ही किसी बालिका को देखा तो उसके सुन्दर रूप में आसक्त हो जाता है ऐसेही भगवान जनकपुर में फुलवारी में श्रीजानकी जी को देखकर आसक्ति देखाए। यथा– "*सिय मुख शशि भए नयन चकोरा*' श्रीसीताजी के मुखचन्द्र को चकोरवत देखने लगे। अर्थात् मुग्ध हो गए, महारानी श्रीसीताजी भी तथा–"*शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी*" मुग्ध हो गई',यह है लोक शिक्षा,यथाथमें श्रीरामजी श्रीसीताजी के हैं और श्रीसीताजी श्रीरामजी की हैं, यथा–"*प्रीति पुरातन लखै न कोई*" अनादि प्रीति कोई जानता

नहीं है, परन्तु संसार में जैसा होता है वैसाही करके दिखा रहे हैं। *"यह चरित्र जानहिं मुनि ज्ञानी"* ॥

पुनः सन्ध्यावन्दना की यात्रा में भी उपमा उपमेय में चन्द्र का ही गुण अवगुण कहा गया अब अन्तिम शिक्षा वैराग्यवानों के ही लिए दी जाती है। यथा-

अवगुण मूल शूल प्रद, प्रमदा सब दुःख खानि।

भैय्या! स्त्री सब दुःखों की खानि सारे अवगुणों की जड़, जीव को सदा दुःख देने वाली, हमारे सब आचार-विचार को भ्रष्ट करने हारी इससे सदा बचने की चेष्टा करते रहना चाहिए। देखो रावण राक्षस है, स्त्री लंपट, कामी है फिर भी कहता है।

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस, अनृत, चपलता, माया। भय, अविवेक, अशौच, अदाया॥

यदि मन्दोदरी, तारा, द्रौपदी इत्यादिकों में यह आठ महान अवगुण भरे हैं तो साधारण स्त्रियों में तो हजार-हजार महान् अवगुण होंगे। शंकर भगवान् भी यही कहे हैं।

सुनहु सती तव नारि स्वभाऊ। संशय अस न धरिय उर काऊ॥

हे सती! तुम्हारा स्त्री का स्वभाव है जो अविवेकी होता है। न जानकर किसी के प्रति सन्देह नहीं करना चाहिए। तुलसीदास जी भी कहे हैं—

सती कीन्ह चह तहौं दुराऊ। देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ ॥

कि स्त्रियों की स्वभाव की प्रभुता को देखो, सर्व अन्तर्यामी जगन्नियंता भगवान् श्रीशंकरजी से भी दुराउ करना चाहती है। पुनः-

उतर देइ न लेइ उसाँसू। नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥

मंथरा ने कैकेई के प्रति नारि चरित्र करके क्या कर डाला, दशरथजी भी कह रहे हैं- *'कौने औसर का भयउ गयेउँ नारि विश्वास'*' स्त्री के प्रति विश्वास नहीं करना चाहिए। "*यद्यपि नीति निपुण नरनाहू*"। परन्तु '*नारि चरित जलनिधि अवगाहू*'' ॥ कितना ही नीतिज्ञ, कितना ही विचारशील क्यों न हो पर स्त्री का चरित्र अगाध समुद्र है कोई अन्त नहीं पा सकता, नीति कहती है- '*त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्याः*'। स्त्रियों का चरित्र विधाता भी जब नहीं जानता तो मनुष्य क्या जान सकता है। भरतलाल भी कह रहे हैं।

विधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुण खानी॥
सरल सुशील धर्मरत राऊ। सो किमि जानै तीयस्वभाऊ ॥

स्त्री सकल कपट, अघ, अवगुण की खानि है। इनके हृदय की गति को ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं, तो पिता तो अति ही सरल स्वभाव, शीलवान्, धर्मपारायण सो कैसे स्त्री के कटु स्वभाव को जान सकते हैं। भैय्या बालक वृन्द ! रंभाशुक संवाद तो आप सुने ही होंगे. शुक जी कहते हैं-

श्लो०-कदाचिदपि मुच्येत् लौह काष्ठादि यंत्रतः।
पुत्र दारा निबद्धैस्तु न विमुच्येत् कर्हिचित् ॥

भैय्या! लोहा की जंजीर में अथवा बड़े बड़े काष्ठ यन्त्र में बंधा हुआ जीव कभी मुक्त हो भी सकता है परन्तु स्त्री पुत्र की ममता माया में बँधा जीव कभी भी मुक्त नहीं हो सकता। अतएव "*नारि विश्व माया प्रबल*"। भैय्या स्त्रियों की माया बहुत प्रबल है।

जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। बरियाई विमोह वश करई ॥

जो बड़े-बड़े ज्ञानियों के चित्त को अपहरण कर लेती हैं और बलात्कार से अपने आधीन करके दुःख देती हैं।

मृग नयनी के नयन शर को, अस लाग न जाहिं।

मृगा के से विशाल नेत्र वाली जो स्त्री है उसके नेत्र रूपी वाण किसको नहीं लगे हैं। अर्थात् सबको लगे हैं। इससे बचने के लिए गोस्वामी जी अपने मन को समझाते हैं।

दीप शिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सत्संग ॥

हे मन! हमको पतंग की तरह जला देने के लिए स्त्री का तन दीपक की शिखा के समान है, उसमें तुम मत जलो, काम मदान्ध नशा का त्याग कर सन्त संग करो। जहाँ स्त्रियों के सारे दुर्गुणों

की आलोचना होती है और स्त्री का त्याग बताया जाता है। श्रीकबीरदास जी कहते हैं। यथा-

भाग रे भाग फकीर के बालका,
कनक अरु कामिनी बाघ लागै।
पकड़कर खींच लें पड़ा चिचिआयगा,
बड़ा तू मूर्ख है नाहिं भागै॥
शृङ्गी ऋषि ऐसे को पकड़कर खींच लिया,
कोटि उपाय करैं नाहिं त्यागै॥
कहैं कब्बीर यह एक उपाय है,
बैठ सतसंग में सदा जागै॥

उस सतसंग से अपनी चित्तवृत्ति स्त्रियों से हटाकर राम-राम भजन करो। अपने कल्याण का मार्ग खोजना है तो एकमात्र साधन साधु संग है और दूसरा रामनाम भजन है। यथा—

अ० रा० अरण्यकान्डे सर्ग १०

श्लो०-भक्तिमुक्ति विधायनी भगवतः
श्रीरामचन्द्रस्य हे,
लोकः कामधुगांघ्रि पद्म युगलं,
सेवध्व मत्युत्सुकाः॥
नाना ज्ञान विशेषमंत्र वितति,
त्यक्त्वा सुदूरे भृषं,

रामं श्याम तनुं स्मरारि हृदये,
भान्तं भजध्वं बुधाः ॥४४॥

नर विविध कर्म अधर्म बहु मत, सोक प्रद सब त्यागहू ।
विश्वास करि कह दास तुलसी, रामपद अनुरागहू ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी अनुभव की हुई हार्दिक भावना को कहते हैं । कि हे भैय्या प्राणी वृन्द ! नाना प्रकार कर्म, धर्म, अधर्म सब शोकप्रद अर्थात दुःख देने वाले हा हैं, इन सबको त्यागो । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारी बात का विश्वास करके राम पद अनुरागहूँ, श्रीराम जी के चरण कमलों में प्रेम करो । भैय्या, "*राम भजे हित होइ तुम्हारा*" राम नाम का भजन करने से हीं तुम्हारा कल्याण होगा, गोस्वामी तुलसीदास जी अपने इहलोक की यात्रा समाप्त करके परम पद, परम धाम जाते समय प्राणियों के कल्याण के लिए अपने अन्तिम मन्तव्य में यही कह गये हैं कि भैय्या ?

अल्प तो अवधि जीव तामें बहु शोच पोच,
करिबे कहँ बहुत है पै काह काह कीजिए ।
पार ना पुराणन को वेदहु को अन्त नाहि,
वाणी तो अनेक मन कहाँ कहाँ दीजिए ।
काव्य की कला अनन्त छंद को प्रबंध बहु,
राग तो रसीले रस कहाँ कहाँ पीजिए ।

सब बातन की एक बात तुलसी बताए जात,
जन्म जो सुधारा चाहो तो, श्रीराम नाम लीजिए।

भैय्या बालक गण ! वा प्राणी वृन्द ! अब तो आप अच्छी तरह से समझ लिए होंगे। "*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*" भय्या गीता में कहा हुआ यह सिद्धान्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की श्री मुखवाणी है। इसी को गोस्वामी जी हम सबों को समझाकर कहे हैं। कि भैय्या, मन तो एक ही है और सिद्धान्त मार्ग अनन्त हैं, मन कहाँ कहाँ लगावोगे बस एक राम नाम लीजिए "*श्रीरामनामाऽखिल मंत्र बीजम्*"। तथा-*यथ वटबीजस्थः प्राकृतश्च महा द्रुमाः। तथैव राम बीजस्थं जगद्देतत्चराचरम्*" ॥ श्रीराम नाम ही सब मंत्रों का बीज है. बस, "*केवल नामेव नामेव*" शुद्ध केवल नाम, "*राम रामेति रामेति*" राम राम राम, इसी में मन लगावो।

तीरथ अमित कोटि शत पावन। नाम अखिल अघ पुञ्ज नशावन।

भैय्या ! राम नाम सारे पापों के समूह को नाश करके शत-कोटि तीर्थों के समान जीव को पवित्र करने वाला है। इसी को तो वेद व्यासजी ने अपने अठारह पुराणों का सारांश राम नाम ही बताया है। यथा—

शप्तकोटि महामंत्र चित्तविभ्रान्त कारकः।
एक एव परोमन्त्रो रामेत्यक्षर द्वयम् ॥

मैंने अपने रचे हुए अठारह पुराणों में महाविशाल प्रभावशाली

सात करोड़ मंत्र लिखे हैं परन्तु सब मंत्रों में परम परात्पर मंत्रराज वा महामन्त्र, राम नाम ही मात्र सार है इसलिए "*राम नाम जप सब विधि ही को राज रे*" गोस्वामी जी के बताए हुये केवल रामनाम जपने ही से सारा वेद, पुराण, इतिहास तीर्थ, व्रत, योग यज्ञ, तपस्या सभी हो जाँयगे, गोस्वामी जी बारम्बार यही कर रहे हैं।

यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु विचार ॥
श्री रघुनायक नाम तजि, नाहिन अन अधार ॥

भैय्या! मन में विचार कर देखो, यह कलिकाल मल अर्थात पाप का ही घर है, इस काल में जीवों को रक्षक एक मात्र राम नाम को छोड़कर दूसरा आधार कुछ भी नहीं है। "*जगज्जैत्रेक मंत्रेण रामनामाभि रक्षितम्*"। यह सारा संसार प्राणी मात्र एक रामनाम के द्वारा ही रक्षित है।

भैय्या बालक वृन्द! आप मानस रामायण नित्य नियम करके पढ़ें। वह आपको अपने कल्याण का सब रास्ता बतायेगी, परन्तु आप उसको बारम्बार पढ़ो समझो और मानस के अनुकूल आचरण करो, आचार बिना मानस फलदायक नहीं होगा। आचार का विषय पूर्व में आप पढ़ चुके हैं। रामायण में सब कुछ तुम्हें मिलेगा। मानस रामायण वर्तमान काल में कल्पतरु कहा गया है।

श्लो०-यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सु कविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्,
श्रीमद्रामपदाब्ज भक्ति मनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।

मत्वा तद्रघुनाथ नामनिरतं स्वान्तस्तमः शान्तये,
भाषाबद्ध मिदंचकार तुलसी दासस्तथा मानसम् ॥
पुण्यं पाप हरं सदा शिवकरं विज्ञान भक्ति प्रदं,
माया मोह मलापहं सुविमलं प्रेमाम्बु पूरं शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्र मानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये,
ते संसार पतंग घोर किरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ॥

भैय्या बालक वृन्द ! जिस मानस रामायण को जगत प्रभु श्री शंकर भगवान् तथा कवि शिरोमणि आदि में दुर्गम अर्थात् संस्कृत में वर्णन किये थे, और जो मानस पढ़ने से श्रीमद्रामचन्द्र के चरण कमलों की भक्ति प्राप्ति होती है, गोस्वामी श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं भी अपने अन्तःकरण की शान्ति के लिए एवं राम नाम में रत होने के लिए उस मानस को भाषा में कर रहा हूँ। क्योंकि संस्कृत समझना वर्तमान काल में वहुत कठिन होगा, इसलिए भाषाबद्ध कर रहा हूँ। यह मानस पुण्य को बढ़ाने वाला, पाप समूह का नाशकारी सदा कल्याण करने वाला, विज्ञान और भक्ति का मार्ग प्रदान करने वाला एवं माया जनित मोह के कारण किए हुए सर्व पाप का नाश-कारी, परम शुभ, परम पवित्र प्रेम जल से परिपूर्ण है। जो भक्तजन इस रामचरित मानस में प्रेम एवं भक्ति से अवगाहन करेंगे, तो संसार रूपी सूर्य की घोर किरण अर्थात् दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिताप से नहीं जलेंगे।

मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जो यहि सर परई ॥

भैय्या बालक वृन्द ! मनरूपी हाथी, विषय रूपी बन में जल रहा है, यदि यह मानस सरोवर में आकर प्रविष्ट हो जाय तो सुखी हो जायगा।

जो फल कोटिन यज्ञ किये,अरु जो फल मकर प्रयाग नहाए।
जो फल धामन के परसे, अरु जो फल चैत्रन बास बसाए॥
जो फल योग अखंड किए अरु जो फल पूरण नेम निवाहे।
जो फल दान अमान किए पर सो फल तुलसी की मानस गाए॥

तुलसीदास जी कहते, हैं भैय्या प्राणी वृन्द ! ऊपर कहे हुए तीर्थ व्रतादि सबका फल केवल मानस रामायण पारायण करने से होगा।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा।

निर्मल हृदय से जो प्राणी इस मानस रामायण का पारायण गान करेंगे, उनकी सब मनोकामना पूर्ण होंगी।

श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी मानस रामायण की रचना करके हम सब अनभिज्ञ जीवों को संसार से निस्तार पाने के लिए कितना सुगम और कितना सरल मार्ग बनाए हैं, कितने परिश्रम से वेद पुराण इतिहासों को खोज-खोज भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, प्रेम का संग्रह करके हम सबों का परम उपकार किया है, जिसका अवगाहन करके हजार-हजार प्राणी नित्य मुक्त हो रहे हैं। अन्यान्य कवि आज जिनकी कविताओं के द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। देखिये-

वैदिक प्रमाण जाको वेद को बदत त्यों,
पौराणिक प्रमाण में प्रमाण जासु गावैं हैं।
सभी देश वासी निज-निज अच्छरन माहिं,
लियो है उतार वृद्ध बालकन पढ़ावैं हैं॥
कहाँ लगि कहौं जासो यमहूँ डराय जात,
ऐसो को न जाकी चौपाई चार गावैं हैं॥
तुलसी रचित राम चरित को रघुराज,
मानस बदत रामरूप उर आवैं हैं॥

भैय्या मित्र गण! इस कविता से "*नाना पुराण निगमागम संमतम्*" आप समझ लिए होंगे। देखिये इसके रचयिता श्री रघुराज कवि हैं। और भी आगे देखिए:—

वेद सब सोधि सोधि, सोधि कै पुराण सबै,
सन्त और असन्तन को भेद को बतावओ।
कपटी कुराही क्रूर कलि के कुचाली लोग,
कौन राम नामहूँ की चरचा चलावतो॥
"बेणी" कवि कहैं मानो मानो ही प्रतीति यह,
पाहन हिए में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जौ पै यह श्री रामायण तुलसी न गावतो।

भैय्या बालक बृन्द ! इस कविता के रचयिता श्री वेणी नामक कवि हैं, जो कह रहे हैं कि यदि तुलसीदास जी नाना प्रकार वेद, शास्त्र, पुराणों को खोज-खोज यह रामायण न बनाए होते तो सन्त और असन्त का भेद कौन बताता, इस कलियुग के कपटी, कुटिल, क्रूर, कुचाली, दुष्टों से राम नाम की चरचा कौन चलाता, कवि हम सबों को पूरी दृढ़ता और विश्वास दिलाते हैं कि भैय्या, इस बात का विश्वास मानो कि यदि यह मानस रचना न हुई होती तो हम लोगों के इस पाषाण हृदय में प्रेम कौन उत्पन्न करता, यदि यह मानस भूतल पर नहीं होता तो यह महा भयंकर और अति भारी भवसागर से पार कौन लगाता।

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा ॥

भैय्या ! यदि आप सब भवसागर से पार जाने की इच्छा रखते हों तो यह राम चरित्र मानस राम कथा आपके लिए एक मजबूत नौका मिली है, इस पर बैठ करके निश्चिन्त भवसार पार हो जाइए, सुगम उपाय मिला है। देखिए:—

अंग्रेजी फारसी फ्रेंच जर्मनीहूँ में सियाराम,
सियाराम नाम की कहानी दर्शात हैं।
मद्य पाठशालन में शालन के बालन में,
पोथी के अटालन में राम ही दिखात हैं ॥
राजदरबारन में दुकान अलमारिन में,
बाग की बहारन में होत सोई बात है।

मूरख हजारन मों राम को लिवायो नाम,
तुलसीदास चरण ही को यह करामात है ॥

भारत वर्ष के अन्तर्गत तो हिन्दी, बंगला, उड़िया, तैलगू, मरहठा, गुजराती, पंजाबी आदि भाषाओं में तो है ही परन्तु अन्यान्य देश की फारसी, फ्रैंच, जर्मनी, रूसी, चीनी जापानी आदि भाषाओं में भो मानस के प्रभाव से सीताराम सीताराम की ध्वनि सुनी जाती है। जहाँ देखिए वहाँ पाठशालाओं में, पाठशालाओं के बालकों में, पुस्तकों की लाइब्रेरियों में, रामनाम ही देखा जाता है। राज दरबारों में, दूकानों की आलमारियों में, बगीचों में फुलवारियों में, हवा खाते, उठते-बैठते, सवत्र राम नाम तथा मानस की ही चर्चा चल रही है। हजार-हजार मूर्ख दुराचारियों से राम नाम कहला रहे हैं। यह सब तो तुलसीदास के चरण ही की करामात कही जायगी अथवा पुरुषार्थ तो उन्हीं का है।

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भव निधि तरहीं ॥

भैय्या मित्रगण ! जो कोई इस तुलसीदास जी की रचित कविता मानस रामायण को कहेंगे, वा सुनेंगे और अनुमोदन करेंगे वे अति अपार संसार समुद्र को गोपद की तरह बिना प्रयास के सहज में ही पार कर जायँगे।

भैय्या बालक वृन्द ! देखिये, वर्तमान काल के कवियों ने मानस पर बड़ा-बड़ा विचार दर्शाया है, जिनके नामों को गिनाता हूँ।

हाल के द्विवेदी चतुर्वेदी शुक्ल मिश्र बंधु,
गुप्तदीन रामहित सनेही रत्नाकर जू।
रंग औ अनंग रसरंग मणि पाठक जू,
नवलबिहारी शर्मा जू नवनागर जू॥
इन्दु श्री विन्दु अरविन्दु नेहलता श्री गाँधी जी,
गद्य-पद्य लेखक मिलिन्द शक्ति चामर जू॥
निज-निज भाव सो गोसईं गुण गान कियो,
छिपे नाहिं छपे पत्रिकान बीच सादर जू॥

द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी, शुक्ल, मिश्र, बन्धु, गुप्त, दीन, राम हित, रामसनेही, रत्नाकर, रंगजी, अनंगजी. रसरंगमणि जी, पाठक जी, नवलबिहारी, शर्मा, नवनागर जी, इन्दु जी, बिन्दु जी, अर-विन्दु जी, नेहलता, श्री गाँधी जी और गद्य-पद्य लेखक, मिलिन्दजी, शक्तिचामर जी, इन सबों ने अपने-अपने भावों को भिन्न-भिन्न रूप से गोस्वामी जी की गुणावली का गान किया है, वह छिपी हुई नहीं है, इन सबों ने बड़े आदर से पत्रिकाओं में, समाचार पत्रों में छपाया है, परन्तु इसकी गहराई कहाँ तक है, यह किसी को पता नहीं लगा।

तुमहिं आदि खग मसक प्रयन्ता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अन्ता॥

काक जी गरुड़ जी से कह रहे हैं कि हे गरुड़ तुम्हारे सहित मसा पर्यन्त खग आकाश में उड़ते हैं, परन्तु आकाश कितना लम्बा

चौड़ा है, जब तुम्हीं को अन्त नहीं मिला तो मसा विचारे की तो क्या गणना है।

भैय्या ! इसी प्रकार जब ऊपर कहे हुए बड़े-बड़े वेगवान गरुड़ के समान रामायण के प्रवचनकारों को मानस का पता नहीं लगा तो मसा मक्खी रूपी मेरे सरीखे अनभिज्ञों को मानस का पता लगाना एक परिहास मात्र ही है। अतएव मानस ही मन में रहने की वस्तु है वह वाणी की गति से दूर है। "*अनमिल आखर अर्थ न जापू*"।

भैय्या बालक वृन्द ! मैं तो अपनी अल्प बुद्धि से मानस का अर्थ इतना ही समझा हूँ कि—

यहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा ॥

रघुकुल के रघुपति जो श्रीराम जी हैं. उन्हीं का परम उदार नाम अर्थात् राम इस मानस में गोस्वामीजी रक्खे हैं। जो "*पावनानां पावनम्*" पावन को भी पावन करने वाला अति पावन है और वेद पुराण का सार है अर्थात् यही राम नाम ही की कीर्त्ति वेद पुराण गान करते हैं।

शेष शारदा वेद पुराणा। सकल करहिं रघुपति गुण गाना ॥

शेष सरस्वती वेद पुराण इत्यादि रघुपति अर्थात् रघुकुल के पति श्रीरामनाम का ही गुणानुवाद सब गान करते हैं। यथा—

राम रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्।
ब्रह्महत्यादि पापघ्नमिति वेदविदो विदुः ॥

राम राम इति अर्थात् केवल राम राम ही परं जप है जो ब्रह्ममय एवं जीव को संसार सागर से तैराने वाला राम तारक मन्त्र है, जिसको देव देवेश शंकर भगवान सदा सर्वदा "*महामन्त्र जेहि जपत महेशू* '। जिसके लिए पार्वती कह रही हैं कि हे प्राणनाथ, "*तुम पुनि राम नाम दिन राती । सादर जपहु अनङ्ग अराती*"। आप सदा सर्वदा दिन रात बड़े आदर से, बड़े प्रेम से, जपते रहते हैं वह राम नाम क्या है।

राम कौन प्रभु पूँछौं तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ॥

राम कौन हैं हे प्रभु ! मुझको समझाकर कहिए, मैं भी राम नाम जप करूँगी कैसे जप किया जाता है ? शंकर भगवान ने कहा- '*राम रामेति रामेति रमेरामे मनोरमे* '। हे प्रिये इसकी विधि है राम राम इति अर्थात् शुद्ध राम राम, का ही जाप करना परन्तु जैसे जल में मिश्री मिलाने पर जल में मिश्री तदाकार हो जाती है, अपना अस्तित्व मिटा देती है और जल मिश्री का स्वरूप धारण करके मीठा हो जाता है, ऐसे ही '*रामे रमे मनोरमं*' अपने मन को राम में रमा के अपना अपनत्व नष्ट कर दे जैसा कि '*को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा*'। मैं कौन हूँ कहाँ हूँ, क्या करता हूँ, क्या हूँ ऐसी स्मृति न हो केवल राम राम ही हो, "*तदैवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य इव समाधी*"। जैसे योग समाधी में केवल तेजोमय प्रकाश ही दीखता है अपना सर्वांग शून्य हो जाता है अपने स्वरूप का ज्ञान नष्ट हो जाता है।

ऐसे ही केवल राम राम ही दीखे अपना अपनत्व वही राम राम में लय हो जाय, और राम राम को अपने में रमा लेवे अर्थात अपने भी रामाकार हो जाय "*राम राम रटु, राम राम जपु, राम राम रमु*" उच्च स्वर से राम नाम रटो, मौन होकर राम राम जपो और मन में मनन करके राम राम में रमो अर्थात् मन बचन कर्म से राम राम करो। तब '*ब्रह्म हत्यादि पापघ्न*' ब्रह्म हत्या इत्यादि जीव का सर्व पाप नाश हो जाता है '*तब यह जीव कृतारथ होई*" यही मन में रखना होता है इसी से इसका नाम मानस हुआ है म, और न, मन कहा जाता है रहा अकार और सकार, अकार को सकार के आगे रखिए तो हो जायगा सा, अर्थात् वही, राम, सा को मन के सामने योग कर देने से मनसा बन जायगा, मनसा राम जपु।

भैय्या बालक वृन्द! वा प्राणी वृन्द! यह रामनाम का पूर्ण प्रकार से मर्त्यलोक में वाल्मीक के द्वारा प्रचार हुआ है। '*उलटा नाम जपत जग जाना*" वाल्मीक ने उस उल्टे नाम को बहुत प्रयास करके सीधा नाम बनाया मरा का राम बनाया. इसके पूर्व में यह नाम मरा ही के स्वरूप में था।

भैय्या बालक वृन्द! तथा प्राणी गण! श्री वाल्मीक जब सर्व प्रथम मरा मरा उच्चारण किए हैं तब वह मरा रूप में इस प्रकार का "रां" अनुस्वार ऊपर और रा, नीचे अनुस्वार ही आगे म, कहा जायगा इसलिए प्रथम म, और पीछे रा कहने से मरा हुआ परन्तु यह मरा योगियों के अनुभव की वस्तु है। यह केवल प्रकाश मात्र है और त्रिगुण रूप से परा, पश्यन्ति, मध्यमा, शरीर में ही अर्थात्

परा से मध्यमा तक इतनी दूर तक व्यवहार करती है, वैखरी अथवा मन, "*वा मनसि गोचरं*"। वाणी में नहीं आता, मन वाणी से अग्राह्य है, केवल अनुभव मात्र है। "*अनुभव गम्य भजहिं जेहि सन्ता*"।

श्रीवाल्मीकजी साठ हजार वर्ष तक समाधिस्थ होकर अनुभव करते-करते इसके यथार्थ स्वरूप को देखते हैं तो "*अर्द्ध मात्राक्षरो*" अर्ध मात्र, अक्षर है हलन्त र् और ऊपर में एक अनुस्वार है। अर्थात् र् वही आगे "*अर्ध मात्राक्षरो रामः*" पुनः "*रकारार्थो रामः*" कहा जायगा और जो अनुस्वार मकार स्थानी है वह "*मकारार्थो जीवः*" जो दोनों मिला है "*ब्रह्म जीव इव सहज संघाती*"। एक आत्मा-रूप और दूसरा परमात्मा रूप से दोनों सत्‌चित् आनन्द ब्रह्म है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥

इस प्रकार वाल्मीक ने पहिले केवल प्रकाश मात्र अनुभव किया। जब परा वाणी से पश्यन्ति वाणी में अनुभव किए तो एक अक्षर की धर्ममात्रा अर्थात् हलन्त र् पुनः अर्द्ध मात्रा अ् युक्त हुआ। तब शुद्ध "र' बन गया। "अ" माया का स्वरुप है वह दो भेद युक्त है-"*एक रचै जग गुण वश जाके*' और "*एक दुष्ट अतिशय दुख रूपा*"। तब दूसरी माया जो दुष्टा है। वह सामने खड़ी हो गई तब "रा" हो गया पुनः वह दुष्ट माया अति मायावी होने से त्रिगुण रूपी दूसरा रूप धारण करके जो हलन्त रूपी रकार था और रकार के ऊपर जा अनुस्वार रूपी जीव था। वह जीव और ब्रह्म में अन्तर डालने के लिए चन्द्राकार आवर्त डाल दिया, तब वह जीवरूपी अनुस्वार

ब्रह्म रूपी रकार, को न देखकर भ्रम में पड़कर निज माया को ग्रहण करके रूपान्तरित होता है। यथा अ० रा० अरण्यकान्डे सर्ग ४ श्लो०-*रूपें द्वे निश्चितेपूर्वं मायया: कुलनन्दन विक्षेपा वरणेतत्र प्रथमं कल्पयज्जगत्। लिंगाद्य ब्रह्म पर्यन्तं स्थूल सूक्ष्म विभेदतः॥ २३॥ अपरं त्वखिलं ज्ञान रूपमावृत्यतिष्ठति। मायया कल्पितं विश्वं परमात्मनि केवले॥ २४॥* और मकार बनकर ऊपर से नीचे आकर "रा" के सामने आता है तब "राम" बन जाता है और रकार ब्रह्म अकार माया, मकार जीव, इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप बन जाता है! तभी से यह जीव को कहा जाता है-"*सो मायावश भयउ गुसाईं*"। "*तब यह जीव विविधि विधि, पावै संसृति क्लेश*'॥ विनय में तुलसीदास जी कहते हैं कि-"*तबही ते न भयो हरि थिर जब ते जिव नाम धर्‌यो*"। हे हरि तभी से इसने स्थिरता वा शान्ति नहीं पाई, जब से जीव ऐसा नाम हुआ, पुनः अन्यत्र पद में कहा गया—

जिव जब ते हरि ते बिलगान्यो। तब ते देह गेह निज जान्यो॥
माया वश स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमते दारुण दुःख पायो॥

इस प्रकार जो ब्रह्म, माया, जीव पूर्व में हलन्त रकार रूप निर्गुण था वही त्रिगुण रूप होकर "राम" हो गया, वही त्रिगुण को द्विगुणा करने से छः हो गया, जिसका षडाक्षर "*राम मन्त्र*" बना, पुनः षडाक्षर की व्याख्या करने से छै काण्ड रामायण बनी. पुनः षडाक्षर को द्विगुणा करने से बारह हो गया, जिसका द्वादशाक्षर वासुदेव मन्त्र बना; जिससे बारह स्कन्ध श्रीमद्भागवत् बना, पुनः

वही षडाक्षर को त्रिगुणा करने से अठारह हुआ, जिसका अष्टादशाक्षर गोपाल मन्त्र बना, जिसकी व्याख्या करने से अठारह पर्व महाभारत का निर्माण हुआ, पुनः षडाक्षर को चतुर्गुणा करने से चौबीश हुआ, जिस चौबीश अक्षर से ब्रह्म गायत्री अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप बना वह चौबीश अक्षर चौबीश तत्त्व है। चौबीश तत्त्वों का शरीर होता है तो वह चौबीश तत्त्वयुक्त ब्रह्म का शरीर बना, जो चौबीश अवतार में विभक्त है। इसीलिए कहा गया है-"*श्रीरामनामाखिल मन्त्र बीजम्*"। जिसकी व्याख्या चौबीश हजार श्लोक बाल्मीक रामायण का निर्माण हुआ जो ब्रह्म स्वरूप एवं पञ्चम वेद कहा जाता है। वह चौबीश हजार. श्लोक चौबीश अक्षर, चौबीश तत्त्व, चौबीश अवतार का सारांश षडाक्षर राम मन्त्र और षडाक्षर राम मन्त्र का सारांश तथा निर्गुण का सगुण राम हैं, जिसको कहा जाता है— "*एते चांश कला सर्वे रामस्तु भगवान् स्वयम्*"। मानसकार कहते हैं— "*राम ब्रह्म चिन्मय अविनाशी*"। वही राम दो प्रकार से कहे गए हैं एक नामी और दूसरा नाम. "*नाम रूप दुइ ईश उपाधी*"। अर्थात ब्रह्म की दो संज्ञायें हैं। एक नामी जो राम रूप से मूर्त्तिमान हैं और दूसरा नाम ब्रह्म जो व्यापक रूप से व्यवहार करता है। जो वाणी का विषय नहीं है वही सतयुग में अनुभव गम्य था जो कर्म योग अर्थात् समाधिस्थ होकर अनुभव किया जाता था। योगीजन मरा कहेंगे, अतएव मकार जो जीवरूपी है वह योगवस्था में अपने को कहता है कि हे म! हे जीव!) तू ब्रह्मरूपी 'रा', में "जा", योगी लोग समाधिस्थ होकर अपनी अत्मा को अपान से प्राण पर्यन्त उठाकर ब्रह्म में प्रेरित करते हैं। यथा —

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते।
ज्ञातव्य तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते ॥

भ्रू के मध्य में कल्याण रूपी आत्मा का स्थान है, वह शिव वा परमात्मा ब्रह्म में मन प्राण लीन हो जाता है, अतएव आत्मा अपनी पराशक्ति परमात्मा ब्रह्म में लीन हो जाता है तब वह म रूपी जीव, ब्रह्म रूपी रा, में जाकर लीन हो जाता है इस प्रकार कर्म योगी कहेंगे, म, रा, हे म, रा, में जा, यह कर्म-उपासना योग, समाधी-ध्यान सतयुग में था वही रा जो रूप ब्रह्म अनुभव गम्य था "*योगिनांभाव गम्यम्*" उसी रकार ने त्रेता में "*रकारार्थो रामः*" दाशरथी राम होकर लीला रूप से प्राणियों का कल्याण किया और द्वापर में कृष्ण रूप "*माया मनुष्यो हरिः*" नाना लीला करके जीवों का उद्धार किया उस समय भक्ति और प्रेम से नाना प्रकार सेवा करके ब्रह्म की उपासना की जाती थी। इस प्रकार दूसरी उपासना भक्ति योग से की जाती है तो भक्तियोगी भक्तजन ब्रह्म रूपी रा अर्थात् राम का अपने हृदय में आवाहन करते हैं "*हृदये श्यामलं रूपम्*" अतएव-

जो कोशल पति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना॥

वे भक्तियोगी भक्तजन कहते हैं कि हे राम! म, में आओ अर्थात् हे रा रूपी ब्रह्म मैं जो म रूपी जीव हूँ हमारे हृदयमें आओ। भक्त कहते हैं, '*करहु सो राम हृदय मम अयना*" इस प्रकार मरा और राम शब्द की व्याख्या है। कर्म योगी मरा कहते हैं और भक्ति योगी

राम कहते हैं। मरा निर्गुण ब्रह्म हैं और राम सगुण ब्रह्म हैं परन्तु विचार करने से "*सगुणहिं अगुणहि नहिं कछु भेदा*" सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है "*अगुण अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम वश सगुन सो होई*" जैसे "*उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई*"। अभिलाषा होती है कि मैं परम परात्पर परमात्मा ब्रह्म को देखूँ। जो "*अगुण अखंड अनन्त अनादी है*' परन्तु ऐसा निर्गुण निराकार होने से भी "*भक्त हेतु लीला तनु गहहीं*" भक्तों के लिए लीला मात्र से "*माया मनुष्यो हरिः*" शरीर धारण करता है आखिर "*माँगु माँगु वर भै नभ वानी*" आकाश में एक माँगु माँगु शब्द सुनाई पड़ा. अन्त में "*विश्ववास प्रकटे भगवाना*" विश्व व्यापी निराकार निर्गुण प्रत्यक्ष में मूर्त्तिमान हो गये। "*नील सरोरुह नीलमणि नील नीरधर श्याम*"। नील कमल के समान कोमल एवं सुवासित, नील मणि की तरह प्रकाशमान, नीर भरे हुए नील बादल के समान, अर्थात् करुणा भरे हुए करुणामय, श्यामसुन्दर एवं—

दूर्वादलं द्युति तनुं तरुणाब्ज नेत्रं हेमाम्बरं वर विभूषण भूषिताङ्गम्।
कन्दर्पकोटि कमनीय किशोरमूर्त्तिं पूर्तं मनोरथभवं भजु जानकीशम्॥

भक्तियोगी के लिये निराकार ही साकार ब्रह्म होता है।

सो केवल भक्तन हित लागी। परम कृपालु प्रणत अनुरागी॥

इत्यादि त्रेता द्वापर में भगवान् राम कृष्णादि रूप से साकार अर्थात् नामी ब्रह्म होकर कल्याण किए।

वही कर्म योगियों का ध्येय निदिध्यासन जो मरा निर्गुण ब्रह्म था उसी को कलियुग के प्राणियों के उद्धार के लिए वाल्मीक, राम नाम के रूप में निर्माण किए—

कूजंतं राम रमेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविता शाखां वन्दे वाल्मीक कोकिलम् ॥

ऐसे वाल्मीक की मैं वन्दना करता हूँ जो कोकिल की तरह कविता रूपी डार पर बैठकर मधुर से मधुर वाणी से मधुर से अक्षर रकार मकार अर्थात् राम राम की "*कुहूँ कुहूँ कोकिल धुनि करहीं*" ध्वनि लगाई जो सारे ब्रह्माण्ड में गुञ्जरित हो गई।

राम भक्त अब अमिय अघाहू । कीन्हेहु सुलभ सुधा वसुधाहू ॥

जिस राम नामामृत को पी पी कर राम नाम के भक्त सन्तुष्ट हो जाँय-पूर्ण हो जाँय, वह रामनामामृत वसुन्धरा पृथ्वी पर सबके लिए सुलभ कर दिए।

सबहिं सुलभ सब दिन सब देशा । सेवत सादर शमन कलेशा ॥

प्राणीमात्र के लिये सर्वकाल में, सर्वदिन में, सर्वदेश में सुलभ कर दिए जिसमें शौचाशौच की आवश्यकता नहीं, समय, काल, देश की आवश्यकता नहीं, किसी उपचार सामग्री की आवश्यकता नहीं। "*प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू*" मात्र "*जपात् सिद्धिः*" यथा-"*राम नाम जप सब विधि ही को राजरे*" राम नाम जपना ही सारी विधि बन जाती है। षाडशोपचार पंचोंपचार, दशोपचार, गंगा स्नान, संध्यातर्पण

आदि सारी विधि बन जाती है। प्रथम सतयुग में *"सतयुग सब योगी विज्ञानी"* थे, *"करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी"* और त्रेतायुग में सभी प्राणी—

त्रेता विविध यज्ञ नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

भैय्या बालक वृन्द! सतयुग में सभी योगी विज्ञानी थे तो वे योग नियम से कहे हुए निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करके संसार से उत्तीर्ण होते थे। त्रेता में यज्ञ करके उद्धार होते थे। द्वापर में पूजा करिके मुक्त होते थे। परन्तु कराल कलिकाल में तो एक राम नाम का ही स्मरण करके वा जप करके अथवा उच्चश्वर से कीर्त्तन करके जीव संसार से मुक्ति पाते हैं।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा, और कलियुग में केवल नाम कीर्त्तन।

भैय्या मित्रगण! कलियुग में जीव के निस्तार के लिए श्री वाल्मीक जी मरा को राम बनाने के लिए बहुत परिश्रम से शतकोटि वार लिखलिख कर घोषणा किए और मुखस्थ किए। पुनः लिखे हुए

शतकोटि श्लोक की परीक्षा देने के लिए शंकर भगवान के पास गए। शंकर वाल्मीक जी के शतकोटि बार घोषणा किए हुए राम-राम का अनुमोदन करते हुए उस शतकोटि श्लोक लिखित राम नाम महिमा को संकोच करके केवल तत्त्व मात्र चौवीश हजार एकत्रित ग्रन्थाकार करके नामकरण किए, वाल्मीकीय रामअयन अर्थात् वाल्मीकीय रामायण। इस रामायण में से शंकर भगवान् कलिकाल के प्राणियों के लिए राम नाम का परत्व मन ही मन जानकर—

ब्रह्म रामते नाम बड़, वरदायक वरदानि।
रामचरित शतकोटि महँ, लिय महेश जिय जानि॥

अर्थात् सतयुग में हलन्त र्, निर्गुण ब्रह्म था, जो "*योगिनां ध्यान गम्यं*'। वही त्रेता और द्वापर में मूर्त्तिमान राम कृष्णादि नामी ब्रह्म था जो यज्ञ और पूजा से प्राप्त होता था। परन्तु कलिकाल में-

रामेति वर्ण द्वयमादरेण सदा स्मरण मुक्तिमुपैति जन्तुः।
कलौयुगे कल्मष मानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

केवल राम नाम के शिवाय अन्यत्र कोई उपाय नहीं है। यही केवल राम नाम ही प्राणियों को सर्व प्रकार कल्याणकारी होगा।

कल्याणानां निधानं कलिमल मथनं पावनं पावनानां,
पाथेयं जन मुमुक्षोः सपदि परपद प्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जानानाम्॥
बीजंधर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥

सर्व कल्याणों का निधि, कलि के पापों का नाशकारी, पावनों को भी पावन करने वाला, मुमुक्षुओं के मार्ग का सम्बल रूप, भक्तों को शीघ्र एवं बिना प्रयास ही परमपद प्राप्त कराने वाला और सर्व जीवों के लिए एक मात्र विश्राम अर्थात् सुख का स्थान, श्रेष्ठ कवियों की वाणी का भूषण, सज्जनजनों का जीवन और धर्म रूपी वृक्ष का बीज, *"श्रीरामनामाखिल मंत्र बीजम्"* अतएव *"एवं भूतो श्रीराम नाम"* इस प्रकार जो राम नाम सो प्राणियों के लिए सर्व प्रकार की विभूति अर्थात् सुख ऐश्वर्य देने के लिए सर्व समर्थ है।

न तत्पुराणं नहिं यत्र रामो, यस्यां न रामो नहिं संहितासा।
स नेतिहासो नहिं यत्र रामः काव्यं न तस्यान्नहिं यत्र रामः॥
शास्त्रं न तत्तस्यान्नहि यत्र रामः तीर्थं न तद्यत्र नहिं रामचन्द्रः।
यागः स यागो नहिं यत्र रामः योगः स रोगो नहिंयत्र रामः॥

भैय्या बालक वृन्द ! जिस पुराण में राम नाम नहीं है वह पुराण ही नहीं है, वह संहिता ही नहीं है, वह इतिहास ही नहीं है, वह काव्य ही नहीं है, वह शास्त्र ही नहीं है, वह तीर्थ ही नहीं है, वह योग भी रोग है, जिसमें राम नाम नहीं। अर्थात् जिस वस्तु में राम नहीं है वह निरर्थक वस्तु है।

भणिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
सब गुण रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम यश अंकित जानी॥

"सादर कहहिं सुनहिं बुधताही" अच्छे कवि के द्वारा विचित्र

कविता होने से भी राम नाम बिना असुन्दर ही रहती है और साधारण ही कवि के द्वारा रचित उपमा उपमेय ध्वनि अवरेव अलंकार कुछ भी नहीं है परन्तु राम नाम की महिमा वर्णित है तो विद्वान लोग उसी को आदर पूर्वक कहते वा सुनते हैं। "*रामनाम बिनु गिरा न सोहा*" राम नाम बिना वाणी ही की शोभा नहीं है। "*राम नाम कलि अभिमत दाता*' कलिकाल में राम नाम ही मनोवाँछित पूर्ण करने वाला है।

भैय्या बालक बृन्द! उसी रामनाम को शंकर भगवान् "*रामचरित शत कोटि महँ लिय महेश जियजानि*" शत कोटि रामायण में से कलिकाल के लिए राम नाम की महिमा मन ही मन जानकर कलि के जीवों के उद्धार के लिए। "*रचि महेश निज मानस राखा*"। जो रामनामामृत ब्रह्मरूपी पंचम वेद, श्री वाल्मीकीय रामायण रूपी समुद्र से मंथन करके संभूत हुआ है और कलिकाल के सब पाप रूपी राक्षसों को ध्वंस करने वाला, अक्षय अव्यय है। '*घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना*" जो कभी कम नहीं होता संसार में दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। वह रामनामामृत श्री शंकर भगवान् अपने सुन्दर मुख-रूपी चन्द्रमा में रक्खे हुए सदा सर्वदा।

रामराम रामराम रामराम राम
रामराम रामराम रामराम राम।

शोभा पाता रहता है। अर्थात् सदा जपते रहते हैं।

तुम पुनि राम नाम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती॥

वह श्रीरामनामामृत शंकर के मुख रूपी चन्द्रमा में "*उदित सदा अथइहि कबहूँ ना*" और संसारासक्त जीव दैहिक, दैविक, भौतिक, त्रिताप, अथवा काम, क्रोध लोभादि रोगों से ग्रसित प्राणियों के लिए श्रेष्ठ औषध है। '*रघुपति भक्ति सजीवनि मूरी*' । भक्ति जीव की संजीवनी है पुनः वही राम नाम '*जगज्जैत्रेक मंत्रेण राम नामाभि रक्षितम्*' । लंका में जानकी का रक्षक हुआ। '*नाम पाहरू दिवस निशि* इस प्रकार रामनामामृत के जापक कलिकाल के उन प्राणियों को धन्यवाद है जो सर्वदा राम नामामृत को पीते रहते हैं। अर्थात् जपते रहतेहैं। यथा-

ब्रह्मम्भोधि समुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं चाव्यम् ।
श्री मच्छंभु मुखेन्दु सुन्दर वरे संशोभितं सर्वदा ॥
संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं ।
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥

जो राम नाम साक्षात् ब्रह्म का ही एक रूप है। '*नाम रूप दुइ ईश उपाधी* । त्रेता में ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी नामी रूप मूर्त्तिमान् होकर जीवों का कल्याण किये, द्वापर में कृष्ण रूप से जीवों का उद्धार किया। और कलियुग में नाम ही जीवों का कल्याण करने में समर्थ है।

तेन दत्तं हुतं तप्तं सदा विष्णु समर्चितम् ।
जिह्वाग्रे वर्तते यस्य रामेत्यक्षर द्वयम् ॥

जो प्राणी दो अक्षर राम नाम जिह्वा से कह रहे हैं। वे दान, यज्ञ, पूजा तप सब कुछ कर रहे हैं।

श्री राम नाम कल्पवृक्ष

राम नाम काम तरु जोई जोई माँगरे

तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगरे

राम नाम को कल्पतरू, कलि कल्याण निवास

बारेक नाम कहत जग जेऊ। होत तरण तारण नर तेऊ॥

भैय्या बालक वृन्द ! यह राम नाम की महान महिमा को शंकर भगवान् अपने मन में विचार करके रक्खे थे कि कलिकाल के प्राणियों के उद्धार का यह एक ही उपाय है। वही राम नाम को "*पाय सुसमय शिवा सन भाषा*"। समय पाकर अर्थात् कलिकाल का आगमन देखकर पार्वती को कहा पार्वती ने जब प्रश्न किया तो शंकर कहे-"*कीन्हेउ प्रश्न जगत हित लागी*"। प्रिये ! आपका प्रश्न तो संसार के कल्याण के हेतु है। '*पूँछेहु राम कथा अति पावनि*" आपने जो राम नाम की महिमा पूँछी यह परम पावनी है। "*सकल लोक जग पावनि गंगा*"। यह कथा प्राणियों को पावन करने के लिए गंगा के समान है।

भैय्या बालक वृन्द वा मित्र गण ! वही कथा वही राम नाम आज हम सबों के लिये अर्थात् कलिकाल ग्रसित प्राणियों के लिये। "*सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि*"। वसुधा पर अमृत की लहरें उमड़ती हुई। "*चली सुभग कविता सरिता सो*"। कविता रूपी सुन्दर नदी बह रही है। '*रामचरित मानस यहि नामा*"। जो कविता का नाम है रामचरित मानस जिसको. "*सुनत श्रवण पाइय विश्रामा*"। कान में सुनते ही हम सबों को सुख शान्ति मिल रही है। जिन तुलसीदास तथा जिनकी कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा कवि चारों तरफ कर रहे हैं। अहा ! गोस्वामी तुलसीदास जी-

मथि पुराण श्रुति वेद निर्मई स्वर्ग निसेनी,
भक्ति प्रेम साहित्य मई बनि गई त्रिवेनी।

यह जल जो जन न्हात सुखद मद्गति सो पावत,
तुलसी के उपकार मानि गुण गरिमा गावत।
नित इसके आश्रयण से मिलती कीर्त्ति अगम्य है,
"शंकर" व्यापी विश्व में श्री तुलसी स्मृति रम्य है॥

शंकर नामक कवि अपने छप्पै में कहते हैं कि श्री तुलसीदास की कविता रूपी कीर्ति सारे विश्व में व्याप्त होकर सुन्दर स्मृति दिला रही है—

हे रामचरित सरोज मधुकर हे अमर कवि केशरी।
महिमा तुम्हारी कवि कलाधर भुवन भर में है भरी॥
है जाह्नवी जल सम पवित्र कवीन्द्र तेरी कल्पना।
है भव्य भावों से भरी कविवर तुम्हारी भावना॥

कविवर तुम्हारी कविता कलिकाल के जीवों का कल्याण करने के लिए प्रेम भक्ति भावों से परिपूर्ण है।

विश्व सकल की पूज्य परम प्रद प्रभा प्रकाशिनि,
भक्ति भाव भरि भव्य विज्ञता विमल विकाशिनि।
मंजुल मृदुल मनोज्ञ निखिल नित नीति सुहावनि,
देती सुख प्रद सतत सर्वहिं रामायण पावनि।
भुवि विदित सकल कल्याणमय नित कलि कलुष नशावनी,
हे मुद मंगलमय! सदा श्रीराम चरित विस्तारिनी॥

यह आप की रामायण कविता जीव मात्र को पावन करने हारी एवं सर्व सुख देने वाली है।

भैय्या बालक वृन्द ! यह तुलसीदास रचित रामायण रोज पाठ किया करें। अन्त में तुलसीदास जी यही तो कहे—

ताहि भजिय मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहिं पाई॥

कुटिलता को त्यागकर उस प्रभु का भजन करो राम का भजन करने से कौन गति नहीं पाया है अर्थात् सब गति पाये हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! वा प्राणी वृन्द ! तथा सज्जन वृन्द ! आप मानस का पाठ सदा करें और रामायण के बताए हुए आचार को भी पालन करें। अब मन लगाइए मानस पर, मानस का सिद्धान्त पढ़िए।

जौं बिधि जनम देहि करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू॥

यदि विधाता कृपा करके इस पृथ्वी पर मनुष्य जन्म दें, तो राम सरीखा पुत्र और सीता सरीखी पुत्र बधू दें। विधाता से कैकेई माता यह प्रार्थना करती हैं। इसलिए– '*कैकेइ कहँ पुनि पुनि मिले*'' तभी तो कैकेई माता को बारम्बार मिले। पुनः अवधवासी कहते हैं। "*सेवक हम स्वामी सिय नाहू*" । हम सेवक हों सीतापति रामजी हमारे प्रभु हों। तभी तो "*मीत पुनीत प्रेम परि पोषे*"। मित्रों के पवित्र प्रेम से सन्तुष्ट हुये, परन्तु ग्रामवासी तथा कैकेई माता का श्रीरामजी से एक ही एक सम्बन्ध था। किन्तु तुलसीदास या हम सबों का तो "*मोहिं*

तोहि नाते अनेक नाथ मानिये जो भावै" । हम सबों तथा जीव मात्र का श्रीरामजी से नव गाढ़ सम्बन्ध है । जिस किसी सम्बन्ध से सेवा मिले । "*ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावै* ' । तुलसीदासजी कहते हैं किसी प्रकार चरणों में शरण मिलनी चाहिए तो भैय्या-

हम सब पुण्य पुञ्ज नहिं थोरे । जिनहिं राम जानत करि मोरे ॥

हम सबों का पुण्य क्या कम है, श्रीरामजी जिनको अपना जानते हैं । कुछ भी हूँ, हूँ तो राम का ही । परन्तु प्रार्थना ऐसी करनी चाहिए कि हे श्रीरामजी, आप जिस सम्बन्ध में हों वहाँ ही सेव्य हैं । और मैं जो भी हूँ परन्तु सेवक हूँ । यदि आप पुत्र हैं तो मैं पिता हूँ तथापि "*पुत्र नेह तव पद रति होई* ' । आपके पुत्र होने से भी मेरी आपके चरण में ही रति हो, चरण पखारूँ, चरणामृत पियूँ, गोद में खेलाऊँ, लाड़-लड़ाऊँ, प्यार करूँ, हृदय लगाऊँ, सदा चरणों में प्रणाम करूँ, स्मरण करूँ, मुझे भले ही कोई मूर्ख कहै कि ऐसा उलटा यह क्यों करता है अर्थात् बेटे का पाँव धोना चरणामृत पीना बेटे को प्रणाम करना जो विपरीत है भले ही हो, परन्तु भैय्या, मैं तो तुम्हारे चरण की ही सेवा करूँ । और यदि आप शिष्य हैं तो मैं गुरू हूँ । तब भी वशिष्ठ जी ने गुरु होने पर भी यही तो कहा है ।

नाथ एक वर माँगउँ, राम कृपा करि देहु ॥
जन्म जन्म प्रभु पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु ॥

तथा-श्लो०-यथात्वं माययासर्वं करोसि रघुनन्दन । तथैवानु विधास्येऽहं शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम् ॥ यथार्थ में गुरुर्गुणां त्वंदेव पितृणां त्वं पितामहः । अन्तर्यामि जगज्जात्रा वाहकस्त्वमगोचरम् ॥ जगत के माता पिता और गुरुवों का भी गुरु तो आपही हैं। तथापि शिष्य भावना से ही आपके चरणों में मेरा जन्म जन्मान्तर प्रेम बढ़े। सदा जय जयकार मनाऊँ, आशीर्वाद करूँ, वात्सल्य स्नेह से गोद खेलाऊँ, प्यार करूँ, यह सेवा करूँ, भैय्या आप चाहे किसी अंश में हों परन्तु "सेवक हम स्वामी सिय नाहू" । मैं सेवक और आप स्वामी प्रभु रहें क्योंकि "सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि' ॥ सेवक सेव्य भाव बिना जीव का कल्याण नहीं है संसार से निस्तार नहीं पाता और ऐसी प्रभु की आज्ञा भी तो है "सो अनन्य जाके असि मति न टरै हनुमन्त । मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त" ॥ सो अनन्य, हे श्रीहनुमान जी ! मेरा अनन्य भक्त वही है जिसने ऐसा निश्चय किया है मैं सेवक हूँ और जड़ चेतनमय विश्वरूप भगवान श्रीरामजी मेरे स्वामी हैं। यथा-"विश्व रूप रघुवंश मणि" तथा-'निज प्रभुमय देखहिं जगत' अथवा "सियाराममय सब जग जानी" जिन प्राणियों की ऐसी भावना है वही अनन्य है। यथा-अ० रा० उ० कान्डे सर्ग ७।

श्लो०—मामतः सर्वभूतेषु परिच्छिन्नेषु संस्थितम् ।
एकं ज्ञानेन मानेन मैत्र्या चार्चेद भिन्नधीः ॥७८॥
चेतसैवानिशं सर्वं भूतानि प्रणमेत्सुधीः ।
ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम् ॥७९॥
तस्मात्कदाचिन्नेद्वेत भेद मीश्वर जीवयोः ।

अर्थात् अभेददर्शी भक्त समस्त परिच्छिन्न प्राणियों में स्थित मुझे एक मात्र परमात्मा का ज्ञान मान और मैयत्री आदि से पूजन करे ॥ ७८ ॥ इस प्रकार मुझ शुद्ध चेतन को ही जीव रूप से प्राणी मात्र में स्थित जानकर बुद्धिमान् पुरुष अहर्निशि सब प्राणियों को चित से प्रणाम करे ॥ ७९ ॥ ईश्वर और जीव में भेद कभी भी न देखे। यथा—*"जीवात्मा परमात्मा च पर्यायो नात्र भेदधीः"* । तथा—*"ईश्वर अंस जीव अविनाशी"* इत्यादि इस प्रकार जो जानता है और सब प्राणी का समादर करता है वही अनन्य भक्त है। अथवा हे हनुमान्! जिस जीव ने सदा यह निश्चय किया है कि विश्वरूप भगवान् प्राणी मात्र से सेव्य हैं, रक्षक हैं, और मैं तथा चराचर प्राणी मात्र उस प्रभु का सेवक है वही अनन्य भक्त है। अतएव किसी सम्बन्ध में हों, पिता हों, पुत्र हों, गुरु हों, चाहे शिष्य हों, परन्तु आप जगत प्राणी मात्र के प्रभु हैं, सेव्य हैं और प्राणीमात्र आपकी प्रजा है सेवक है। भैय्या रामभद्र! आप तो गुरुओं के गुरु हैं, पिताओं के भी पिता हैं। अर्थात् आप प्राणी मात्र के प्रभु हैं सेव्य हैं। सारे जगत् के पालनकर्त्ता हैं आप सभी के सेव्य (स्वामी) हैं।

प्रिय बालक वृन्द! तथा प्रिय सज्जनों! यह ऊपर कही हुई धारणा ध्येय और भावना, ऐसा निश्चित होना तो सब सुकृतियों का अन्तिम फल है। यथा-

सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। सीयराम पद सहज सनेहू॥

श्रीसीतारामजी के पद कमलों में स्वाभाविक प्रेम होना।

इसीलिए तो वर्णाश्रम से ही सुकृत और पुण्य संग्रह करने का मार्ग बताया गया है। कहा जाता है। "*जो विधि जन्म देहिं करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू*" अथवा "*पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई*"॥ श्रीसीताराम सरीखे पुत्र, पुत्र वधुएँ अथवा राम का भक्त पुत्र हो जिनके द्वारा "*कुलं पवित्रं जननी कृतार्था*" कुल पवित्र हो, माता पिता कृतार्थ हों, जिनके द्वारा "*वर्णाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहि सदा*" सदा भगवान से प्रार्थना करूँ कि प्रभु...। यथा पद्य में—

मुझसे कभी किसी प्राणी का हो जाये न अहित अपमान,
सब में तुम्हीं दिखाई देओ हो मुझसे सबका सम्मान।
दुःख मिटाने में औरों के अपना सुख कर दूँ बलिदान,
बढ़ता देखि दूसरों का सुख मैं पाऊँ आनन्द महान्॥
मैं अपने छोटे पापों को समझूँ बहुत बड़ा अपराध,
कभी न देखूँ दोष पराया गुण सबके देखूँ निर्बाध।
घृणा करूँ मैं नहीं किसी से रहूँ सदा दुष्कृत से दूर,
आने दूँ कुविचार न मन में रक्खूँ सद्विचार भरपूर॥
बुरे संग से बचा रहूँ नित करूँ सज्जनों का सतसंग,
रँगा रहै जीवन मेरा मधु पावन भक्ति प्रेम के रंग॥

भैय्या बालक वृन्द! इस प्रकार मैं '*सबका प्रिय सबका हितकारी*'

होऊँ। जैसे श्रीराम जी "प्रात काल उठिके रघुनाथा। मात पिता गुरु नावहिं माथा" एवं 'जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संयोगा'॥ जैसा भरत, "सीताराम चरण रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥" जैसा लक्ष्मण, "लालन योग लषन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहि न होने॥ जीवन लाहु लषन भल पावा। सब तजि राम चरण मन लावा'॥ इत्यादि वर्णाश्रम से ही धर्म बताया गया है।

बारेहि ते निज हित पति जानी। लछमण राम चरण रति मानी॥

अतएव अपने वर्णाश्रम के धर्म को पालन करते हुए अपनी अभीष्ट सिद्धि भगवान को प्राप्त करने के लिए बाल्यकाल से ही जिज्ञासु होना चाहिए। यथा लक्ष्मण प्रश्न "ईश्वर जीवहिं भेद प्रभु" और "सब तजि करौं चरण रज सेवा' उत्तर में श्रीराम जी कह रहे हैं, "माया ब्रह्म न आपु कहँ, जान कहिअ सो जीव"। माया, ब्रह्म को न जानकर अपने ही "अहं ब्रह्मास्मि" वही जीव है, "जीव धर्म अहमिति अभिमाना' यह समझाते हुए अन्त में तो यही कहते हैं, "प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीती" और "निज निज धर्म निरत श्रुति रीती" अतएव "वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः" की सेवा करते हुए शास्त्र की आज्ञानुसार वर्णाश्रम के धर्म को पालन करते हुए, "संत चरण पंकज अति प्रेमा"। साधु संग करें, "सत संगति मुद मंगल मूला' एवं "बिन सत्संग न हरि कथा' और "तेहि बिनु मोह न भाग" बिना साधुसंग के निर्पेक्ष मेरी कथा सुनने को नहीं मिलती, और तब तक मेरे बताए हुए मार्ग को जीव जान नहीं सकते, "जाने बिनु न होइ परतीती" पुनः "बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती" और "प्रीति बिना नहिं भक्ति दृढ़ाई" इसलिए

साधुसंग करना चाहिए, "*सतसंगति दुर्लभ संसारा*" अतएव साधुसंग से अपना कर्त्तव्य निश्चय हो जाता है. तत्पश्चात् '*तेहि कर फल पुनि विषय बिरागा। तब मम चरण उपज अनुरागा॥*" क्योंकि "*काम क्रोध लोभादि रत गृहासक्त दुःख रूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप*"। वे बिचारे दीन, मोहान्धकार गृह कूप में पड़े हुए कैसे मुझे जान सकते हैं। अतएव विषय से निवृत्ति होने से ही भगवान में स्वाभाविक प्रेम होता है। "*जेहि जाने जग जाइ हेराई*"। भगवान को जानने से ही भगवान् में प्रेम होता है और संसार की मोह ग्रन्थी छूटती है और तभी संसारी पदार्थ स्त्री पुत्रादि में मिथ्या प्रतीति होने लगती है। अतएव '*ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या*"॥

भैय्या बालक वृन्द! मित्रगणं! पिता का वीर्य, माता का रज '*विधि प्रपंच गुण अवगुण साना* अर्थात् पिता का वीर्य (ब्रह्म) माता का रज (माया) दोनों को मिलाकर विधाता ने सृष्टि निर्माण की है। इसी में जीव कर्माधीन होकर '*फिरत सदा माया के प्रेरे*' भ्रमण करते हुए वास कर रहे हैं। इस प्रकार जीव पिता के वीर्य द्वारा माता की योनि मार्ग में गर्भस्थ होता है। नौ मास गर्भ स्थान में रहकर इसका पूर्ण पिण्ड तैयार हो जाता है। पुनः योनि के ही मार्ग से पृथ्वी पर पतन होता है। इसका पूरा विवरण आप आगे पढ़ेंगे, अतएव '*ईश्वर अंश जीव अविनाशी*' भगवान् से ६६ सीढ़ी नीचे आया है, पुनः वही ६६ सीढ़ी ऊपर जाने से अपने स्वरूप को प्राप्त होता है। यथा—'*सरिता जल जलनिधि महँ जाई*' तैसे ही '*होइ*

अचल जिमि जिव हरिपाई' ॥ परन्तु वहाँ तक पहुँचने की ६६ सीढ़ियों को दो भागों में विभक्त किया है।

प्रथम प्रवृत्ति की ३८ सीढियाँ, दूसरी निवृत्ति की २८ सीढियाँ हैं। प्रवृत्ति में ३८ सीढ़ी इस प्रकार हैं। अर्थात् गृहस्थी में जो पञ्च देवता की उपासना होती है। *'सौर्य, शाक्त, गाणपत्य, शैव, वैष्णव"*।

सौर्य—अर्थात् सूर्य बारह कला युक्त हैं—वही बारह सीढ़ी हैं। सूर्य की उपासना से हृदय में प्रकाश होता है। तब दश इन्द्रियों और प्राण अपान यह बारह मार्गों से विषय विलासिता की खींचा-तानी में गति अवरूद्ध हो जाती है। यथा—*'घालेसि सब जग बारह बाटा'* जब जीव की विषय वासना सब तरफ से रुक जाती हैं तब वह निश्चय करता है कि—

एकै आँक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभुपाहीं ॥

अब प्रभात काल (ज्ञान) होते ही प्रभु की शरण जाऊँगा, यह एक ही कर्त्तव्य है *'सर्व इन्द्रियाणि संरुद्ध्य'* जीव एकाग्र चित्त होकर एक मार्ग बनाता है। यही सूर्य की बारहों कला का प्रकाश १२ सीढ़ी हैं।

शाक्त—शक्ति देवी की सात उपासना ७ सोपान हैं, शक्ति नाम है बुद्धि का *सत असत् विवेकिनी बुद्धिः'* जो सत् असत् का निर्णय करके सप्त ज्ञान को दृढ़ करती है। *'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'* एवं *'सत् हरि भजन जगत सब सपना'* अर्थात् *राम नाम सत्य है'* तो बुद्धि सत् मार्ग एवं

सत् वस्तु को ही ग्रहण करती है। तब जीव अपना यथार्थ कर्त्तव्य करता है। यही शक्ति उपासना सात सोपान है।

गाणपत्य—पुनः जीवगणेश की पञ्च उपासना करता है। गणेश का स्थान है मूलाधार, जहाँ अपान वायु है और प्राण वायु त्रिकूट में है. प्राण से अपान तक जीव पञ्च स्थानों में विभक्त है। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र पर्यन्त *'प्राणाऽपान वसोञ्जीवह्यध्यश्चोर्ध्वश्चधावति। वाम दक्षिण मार्गाभ्यां चञ्चलत्वान्न दृश्यते॥ रज्जु वद्धो यथा श्येनो गतोय्या कृष्यते पुनः। गुणवद्धस्तथा जीवः प्राणाऽपानेन कर्षति॥ उर्ध्वोंऽधस्संस्थितावैतौ यो जानाति स योगवित्'* ॥ प्राण की इस प्रकार अधः उर्ध की गति का ज्ञान गणेश के द्वारा होता है। इन पञ्च प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान को पाँच भागों में इस प्रकार विभक्त किया है। मूलवन्ध, उड्डियान वन्ध, महावन्ध और जालन्धर वन्ध, यह चार वन्ध हैं। इन चारों वन्धों को भेदकर अपानवायु प्राण के साथ पाँचों संयोग करके प्राणी *'प्राणायाम्परायणाः'* आत्मा परमात्मा को एकत्रित करता है। *'तत्समंचद्वयोरैक्यं जीवात्मा परमात्मनोः'* इस प्रकार जब जीव पञ्च प्राण, पञ्च मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च तत्त्व, यह पाँचों पञ्चीकरण एक योग करता है तब आत्मा परमात्मा दोनों का योग होता है। यह गाणपत्य नामक पाँच सीढ़ी हैं।

शैव—शैव १० सोपान अर्थात् दश रुद्र हैं। इस दश प्रकार शिव की उपासना से जीव दश इन्द्रियों का निग्रह करता है। तब एकाग्र चित्त से भगवान् का भजन और दृढ़ सेवा करके विज्ञान को प्राप्त

होता है। जिसको नौ अङ्गों से युक्त नौधा भक्ति भी कहते हैं। जिसकी पूर्वार्द्ध साधना भक्ति कही गई है, उसके शिक्षक शिव हैं। इस प्रकार जब जीव नौधा भक्ति विज्ञान रूपा सेवा की योग्यता प्राप्त करता है, तब '*भक्ति मोरि तेहि शंकर देइहि*' परन्तु '*शंकर भजन बिना नर, भक्ति न पावै मोरि*' अर्थात् '*शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भक्ति राम पद होई*' ॥ इस प्रकार जीव भगवान की सेवा का अधिकारी होता है। परन्तु इस सेवा के प्रेरक एवं शिक्षक शिव हैं, यथा-'*मुनि पूँछी हरि भक्ति सुहाई। कही शंभु अधिकारी पाई*' ॥ एवं '*ब्रह्म ज्ञान रत मुनि विज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी*' ॥ अर्थात् '*तोहि निज भक्त राम कर जानी। ताते मैं सब कहा बखानी*' ॥ अर्थात् शंकर भगवान् जीव की योग्यता की परीक्षा करके भगवान् श्रीरामजी की सेवा देते हैं। यही शैव उपासना को १० सीढ़ी वा सोपान हैं।

वैष्णव-विष्णु की चार सम्प्रदाय चार सीढ़ी हैं, जो सर्वोच्च मुक्ति स्थान हैं। यथा- ओम् अ० उ० म० जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है। '*अकारार्थो विष्णु र्जगदुदय रक्षा प्रलय कृन्, मकारार्थो जीवस्तदुपकरणं वैष्णवमिदम्* ॥ *उकारोऽनन्यार्हं नियमयति सम्बन्धमनयोस्त्रयी सारस्त्र्यात्मा प्रणव इममर्थं समदिशत्* ॥ इस प्रकार जीव विष्णु का उपकरण, प्रतिनिधि, सदा सेवा कांक्षी सेवक, सब सेवा निपुण है। यथा-'*सेवक कर पद नयन सो, मुख सो साहिब होय*' अर्थात् एक ही शरीर में ईश्वरत्व भी है और सेवकत्व भी है। भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक ही वस्तु है। तैसे ही हाथ पग की तरह जीव, भगवान् का सदा उपकरण है सेवक है। इस प्रकार जीव विष्णु का उपकरण

वैष्णव है। इसे ही वैष्णव कहते हैं। परन्तु यह सेवा वर्णाश्रम से ही प्रारम्भ होती है। ॐकार वर्णाश्रम का उपास्य मन्त्रराज है, उसी ॐकार के अनुसार जीव वर्णाश्रम से ही भगवान का सेवक है। किस दैवयोग, अपराध के कारण यम यातनाधीन संसार सागर कारागार चौरासी लक्ष योनियों में पतन होकर अनादि काल से जीव, अनादि अविद्या में अज्ञानी होकर *'फिरत सदा माया के प्रेरे'* भगवान् कभी घुणाक्षर न्याय से *'कबहुँक करि करुणा नर देही'* देते हैं जो *'नर तनु भव वारिधि कहँ बेरो'* कहा गया है। इस मनुष्य शरीर रूपी नौका में बैठे हुए जीव के *'सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो'* भगवान ने अपना अनुग्रह रूपी भक्ति मार्ग बताया है, वही जीव के कल्याण का मार्ग है। वह भक्ति प्राप्त करने को वर्णाश्रम से ही २८ सीढ़ी बनाए हैं। अर्थात् जब तक जीव को *'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'* प्रतीत न हो, तब तक वर्णाश्रम में ही रहकर *'प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीती'* अर्थात् *'प्रवृत्तिश्च महापुण्यः'* ब्राह्मण गुरु जनों की सेवा *'पुण्य एक जग में नहिं दूजा। मन क्रम वचन विप्र पद पूजा'*॥ सबसे बड़ा पुण्य सांसारिक प्राणियों के लिए ब्राह्मणों के चरणों की पूजा बताई गई है। जीवों को *'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः'* की सेवा पूजा करके पुण्य संग्रह करना चाहिए और उनके वाक्यों में विश्वास रखना चाहिए *'गुरौ वेदान्त-वाक्येषु विश्वास इति श्रद्धा'* इसी को श्रद्धा कहते हैं, इसीलिए कहा गया है।

बन्दौं प्रथम महीसुर चरणा। मोह जनित संशय सब हरणा॥

ब्राह्मणों, गुरुजनों के उपदेश आशीर्वाद से मोह द्वारा उत्पन्न हुआ सन्देह नष्ट हो जाता है। ऐसे ब्राह्मणों, गुरुजनों के चरणों की वन्दना पूजन करके उनके उपदेश द्वारा अपने भ्रम को निवारण करते हुए उनके कहने के अनुसार संयम-नियम का पालन पूर्वक *'निज-निज धर्म निरत श्रुति रीती'* ही बताए हुए वर्णाश्रम के ३८ सोपानों को क्रमशः उत्तीर्ण करते हुए ॐकार के अनुसार *'मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा'*॥ ॐकार महामंत्र ब्रह्म गायत्री जाप करते हुए, शालग्राम, राम—कृष्णादि की पूजा करते हुए इस महापुण्य के प्रभाव से जीव सांसारिक मोह बन्धन से मुक्त हो जाता है। यह वर्णाश्रम के ३८ सोपान वा सीढ़ी हैं। अब आगे निवृत्ति के २८ सोपान कहे जायेंगे।

भैय्या बालक वृन्द! तथा सज्जन वृन्द! अब *'प्रवृत्तिश्च महापुण्याः'* के फल स्वरूप *'तेहिकर फल पुनि विषय विरागा'* अतएव *'निवृतिश्च महाफलाः* को जीव प्राप्त होता है। निवृत्ति का महामन्त्र है राँ र, अ, म, इस महातारक मंत्रराज की प्रक्रिया है *'रकारार्थो रामः सगुण परमैश्वर्य जलधिः। मकारार्थो जीवः सकल विधि कैंकर्य निपुणः॥ तयोर्मध्याकारो युगलमथ संबन्धमनयोरनन्यार्हं ब्रूते त्रिनिगम स्वरूपोयमतुलः'*॥ अर्थात् र, स्वरूप सकार ब्रह्म श्रीराम जी हैं। म, स्वरूप, सर्व सेवा निपुण जीव है। अकार, स्वरूपी माया, भक्ति रूप से दोनों को एकत्र संबन्ध रहती है। इसी प्रकार ॐकार भी, प्रथम कहा है। राँ, और ॐ, एक वस्तु है। ॐ कार्यरूपी वर्णाश्रम सामान्य धर्म का विशेषण है और राँ, विरक्ताश्रम धर्म का विशेष्य विशेषण है।

ॐ वर्णाश्रम का उपास्य मंत्र है और रॉं विरक्ताश्रम का उपास्य मंत्र है। ॐ सामान्य धर्म है, रॉं विशेष धर्म है। परन्तु जीव सामान्य और विशेष दोनों धर्मों में भगवान् का सेवक है। प्रथम वर्णाश्रम सामान्य धर्म को पालन करते हुए विरक्ताश्रम विशेष धर्म में गति करता है।

अब यहाँ *'पञ्चस्थाने गुरुर्विप्रो दीक्षा शिक्षा च वैष्णवाः'* अर्थात् प्रवृत्ति वर्णाश्रम पञ्चदेवता की उपासना में ब्राह्मण गुरु होता है। अब *'निवृतिश्चमहाफलाः'* में विरक्त वैष्णव गुरु होता है। जिसको *'बोध यथारथ वेद पुराणा'* अतएव *'राम चरण जाकर मन राता'* एवं *'सब तजि राम चरण मन लावा'* याथार्थ में *श्रुति सिद्धान्त नीक तेइ जाना'* वह परम वैष्णव गुरु होता है जिनके आदेशानुसार *'गुरुरुपदिष्ट मार्गेण'* निवृत्ति के २८ सोपान *'षट्दम शील विरति बहु कर्मा'* अब जीव के बहु कर्मों की *'दीक्षा शिक्षा च वैष्णवाः'* शिक्षक और परीक्षक परम वैष्णवों में चार परमाचार्य हैं। इन परमाचार्यों में श्री चरण सेवा, वर्णाश्रम से ही प्रथम बालकाल से माता पिता सेवा, प्रौढ़ काल में विद्याध्ययन एवं गुरुजनों की सेवा, पुनः देश सेवा, तीर्थादि, देव देवी की सेवा, दर्शन इत्यादि पुण्य समूह की प्राप्ति-*'पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता'* परम वैष्णवाचार्य मिलते हैं। फिर तो *'सतसंगति संसृति कर अन्ता'* संसार दुःख से निवृत्ति हो ही जाती है। संत संसार सागर से उस पार में पहुँचे हैं, संतों की प्राप्ति होना ही संसार का अंत है। प्रथम वर्णाश्रम के पुण्य फल से ही जीव संसार से वैराग्य प्राप्त करता है और तभी मोह अन्धकार अज्ञानता रूपी नींद से जाग उठता है।

जानिय तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय विलास विरागा॥

और तभी यह जीव काम क्रोधादि सांसारिक रोगों से मुक्ति पाता है।

जानिय तब मन निरुज गोसाईं। जब उर बल विराग अधिकाई॥

पुनः जीव संसार में संग्रह किए हुए नाना शुभ कर्म धर्म आचार इत्यादि के बदले में सत्संग लाभ करता है। *'सतसंगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला'* ॥ और *'मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई॥ सो जानव सतसंग प्रभाऊ'* ॥ संत संग ही से भक्ति मुक्ति सब कुछ मिलती है। अन्त में *'सब कर फल हरि भक्ति सुहाई'*। जीवों के कल्याण के लिए भक्ति ही निवृत्ति का अन्तिम फल है। परन्तु वह भक्ति संतों को ही प्राप्त है और उन्हीं से जीवों को प्राप्त होती है। *'मिलै जो सन्त होहिं अनुकूला'* यही जीव का पुरुषार्थ है और सुख का हेतु है परन्तु *'सुख चाहत मूढ़ न धर्मरता'* जीव सुख की कामना तो करता है, परन्तु अज्ञानता वश अपने धर्म का पालन नहीं करता, अर्थात् वर्णाश्रमानुकूल धर्माचरण करने से संसार दुःख की निवृत्ति होती है। पुनः विरक्ताश्रम का *'सर्व धर्मान्परित्यज्य'* करके अर्थात् वर्णाश्रम के शुभाचरण वा धर्मा-चरण के फल स्वरूप निवृत्ति होती है। पुनः निवृत्ति आश्रम में *'विरति बहु कर्मा'* नाना प्रकार शुभाचरण करते हुए निवृत्ति का धर्म पालन होता है।

अब निवृत्ति का फल स्वरूप जो भक्ति है उसकी प्राप्ति करने के

लिए जो वैराग्य, ज्ञान,योग, विज्ञान एवं बड़े-बड़े चार आश्रम बताये जाते हैं इनमें २८ सीढ़ी बनी हैं। अतएव २८ सोपान कहे गए हैं। इन सोपानों से उत्तीर्ण होने के लिए जो ऊपर कहे हुए चार परम संत परमाचार्य बताए गए हैं उनकी दीक्षा और शिक्षा के अनुसार निवृत्ति के नाना कर्मों को करना जीव का कर्त्तव्य है। हमारे इन कर्मों के शिक्षक यही परमाचार्य हैं जो सदा आप्तकाम आत्माराम हैं। और चार संप्रदाय युक्त परमाचार्य वा आद्याचार्य साक्षात् ईश्वर स्वरूप ही कहे जाते हैं। यथा—**श्री संप्रदाय**--अर्थात् श्री लक्ष्मी जिसकी आचार्या हैं। **श्री विष्णु संप्रदाय**--अर्थात् विष्णु जिसके आचार्य हैं। **श्री ब्रह्म संप्रदाय**--ब्रह्मा जिसके आचार्य हैं। **श्री रुद्र संप्रदाय**--शंकर जिसके आचार्य हैं। यही चार परमाचार्य, परात्पराचार्य, अर्थात् आद्याचार्य हैं। जिनको *गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः'* संबोधन होता है जो *'कृपासिन्धु नर रूप हरि, ही गुरु साक्षात् परब्रह्म'* कहे जाते हैं जो जीव को भक्ति मुक्ति देने के लिए मर्त्यलोक में मनुष्य *'माया मनुष्यो हरिः'* शरीर धारण करके हम सब जीवों का उद्धार कर रहे हैं, और चतुः संप्रदाय रूप से भगवान् के साकेत. बैकुण्ठ, गोलोक, के चतुः द्वार पर विराजमान हैं, और जीव के कल्याण के पूर्ण अधिकारी हैं एवं जीव की गति मति सेवा के पूर्ण शिक्षक एवं परीक्षक हैं। इनके बिना परीक्षा पत्र के जीव भगवान् की सेवा के लिए साकेतादि लोकों में अन्दर प्रवेश नहीं कर सकते।

भगवान् के परम धामादि लोकों के चतुः द्वार पर चार पर-

माचार्य चार सम्प्रदाय रूप से परमाद्याचार्य विराजमान हैं। बिना इनकी अनुमति (परीक्षा पत्र) के जीव अन्दर प्रवेश ही नहीं कर सकते। जीव गुरु की ही कृपा से भगवान् के सन्निकट रहने योग्य, सेवा, श्रद्धा, तपस्या और भक्ति प्राप्ति करते हैं। यही परात्पर परमात्मा स्वयं गुरु हैं। जिनके लिए कहा जाता है। *'लक्ष्मीनाथ समारम्भाम्'* अथवा *'सीतानाथ समारम्भाम्*, एवं *'राधानाथ समारम्भाम्'* इत्यादि से गुरुत्त्व प्रारम्भ होकर क्रमशः *'अस्मदाचार्य पर्यंताम्* आज अपने गुरु तक गुरुत्त्व चला आ रहा है। *'शिष्योपशिष्य'* यथा- *'गुरुणांच गुरुश्चैव पितृणांच पितामहः'*। अथवा *'वन्दे रामं जगद् गुरुम्, वन्दे कृष्णं जगद् गुरुम्'* इत्यादि जिनके परत्त्व, अलभ्यता को शास्त्र कह रहे हैं। *'अनेक जन्म सँस्कारात् सद्गुरुः लभ्यते बुधैः'* और *'संतुष्टः स गुरुर्देव आत्मरूपं प्रदर्शयेत्'*॥ बहु जन्मान्तरों के पुण्य संग्रह करते-करते, प्रवृत्ति से लेकर निवृत्ति पर्यन्त अर्थात् वर्णाश्रम से ही माता-पिता, गुरुजनों की सेवा, देश देशान्तर में प्राणी मात्र की सेवा, तीर्थादि में अनेक देव-देवी की सेवा इत्यादि पुण्यों के फल स्वरूप *'गुरु साक्षात् हरिः स्वयम्'* गुरु की प्राप्ति होती है, और गुरु को ही परम प्रभु जानकर—

तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाँति सेवहिं सनमानी॥

गुरु सेवा करके जब गुरु हमारी सेवा से प्रसन्न हो जायेंगे। तब आत्माको परात्पर परमात्मा का साक्षात् दर्शन करा देंगे। यथा-

'अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन

तस्मै श्रीगुरवे नमः' ॥ पुनः 'अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः'' ऐसे परमदयालु जो श्रीगुरुदेव, उनको बारम्बार नमस्कार है। जो "सर्व तीर्थाश्रयश्चैव सर्व देव समाश्रयः। सर्व वेद स्वरूपी च गुरु साक्षात् हरिः स्वयम्"। गुरु साक्षात् परात्पर परमात्मा परब्रह्म स्वयं राम ही जीव के कल्याण करने को शिष्योपशिष्य "अस्मदाचार्य पर्यन्ताम्' इहलोक में अवतीर्ण होते हैं। बिना गुरु कृपा "दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभस्तत्त्व दर्शनः। दुर्लभः सहजावस्था सद्गुरोः करुणा बिना" ॥ जीव के लिए विषयों का त्याग, आत्म परमात्म तत्त्व का बोध अथवा सहजावस्था अर्थात्—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी ॥

मैं ईश्वर का ही अंश (पुत्रवत् "आत्मा वै जायते पुत्रः" सदा सेवक हूँ। स्वभाव से ही सुख स्वरूप हूँ, नाश रहित, निर्मल, ज्ञान स्वरूप हूँ इत्यादि का ज्ञान होना दुर्लभ है। "गुरु बिनु होइ कि ज्ञान" भगवान स्वयं कह रहे हैं।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत् कर्हिचित्।
न मर्त्य बुद्ध्याऽसूयेत्, सर्व देव मयो गुरुः ॥

मैं ही साक्षात् गुरु हूँ, मेरे में कभी अन्य बुद्धि वा मनुष्य बुद्धि नहीं करनी चाहिए। मैं सर्व देवाधिदेव, एवं प्राणियों का गुरु हूँ।

कुरुते नर बुद्धिश्च मन्त्र दाता गुरुं प्रति। अयशस्तस्य सर्वत्र विघ्नश्च पदेपदे

जो अज्ञानी अबोध प्राणी, मंत्र दाता, मुक्ति भक्ति दाता, गुरु

के प्रति मनुष्य बुद्धि रखते हैं अर्थात् गुरु भी तो एक मनुष्य ही हैं, ऐसा कहते हैं तो उनकी सवत्र अपकीर्ति एवं सर्व कार्यों में विघ्न होता है।

गुरु के बचन प्रतीति न जेही। स्वपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

अर्थात् गुरु के बचनों में जिनका विश्वास नहीं है। उनको स्वप्न में भी सुख वा किसी कार्य की सिद्धि सुगम नहीं होती अर्थात् किसी कार्य में सफलता नहीं होती है। यथा—

स्व कंठेऽपि स्थितं वस्तुं यथा न प्राप्यते भ्रमात्।
भ्रमान्ते प्राप्यते तद्वदात्मापि गुरुवाक्यतः॥

जैसे अपने गले में वस्तु होते हुए भी बुद्धि भ्रम के कारण अप्राप्ति ही रहती है। और बुद्धि का भ्रम निवृत्त हो जाने से मिल जाती है। वैसे ही "*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*" अपने हृदय में ही परात्पर परमात्मा होने से भी, बुद्धि मोह भ्रान्ति के कारण—

विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिनु दीप को बार बहोरी॥

अज्ञान अन्धकार में अपने आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं कर सकता, परन्तु गुरु के उपदेश द्वारा "*जासु बचन रवि कर निकर*" मोह अज्ञान–बुद्धि का भ्रम निवृत्त होने से आत्म तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। अतएव गुरु ही इस भूले हुए जीव के शिक्षक एवं परीक्षक हैं। गुरु की ही कृपा से जीव भगवान् की सेवा श्रद्धा तपस्या और भक्ति प्राप्त करता है और उन्हीं की कृपा से परीक्षा में उत्तीर्ण होता है,

पुनः अपना सेवा अधिकार प्राप्त कर सकता है। उन्हीं की कृपा से और आज्ञा के अनुसार प्राणी क्रमशः एक से अट्ठाइस तक सोपान उत्तीर्ण हो जाता है। गुरु की ही कृपा से जीव वैराग्य ज्ञान योग साधन भक्ति में गति करता है और तभी "*यह जीव कृतारथ होई*" वा "*जीव पाव निज सहज स्वरूपा*"॥

अब निवृत्ति के कहे हुए २८ सोपानों को चार भागों में विभक्त करके कहा जा रहा है। जिसमें बड़े-बड़े चार सोपान हैं, पुनः २८ सोपानों में विभक्त हैं। यथा—

भक्ति ज्ञान विज्ञान विरागा। योग चरित्र रहस्य विभागा॥

अर्थात् भक्ति ज्ञान, विज्ञान वैराग्य, योग, परन्तु विज्ञान और भक्ति प्रायः एक सी वस्तु हैं जिनका वर्णन आगे किया जायगा। सर्व प्रथम वैराग्य चार—

वैराग्य—वैराग्य के चार सोपान इस प्रकार हैं।

(१) **नाम वैराग्य** नाम वैराग्य उसे कहते हैं। जीव जब स्त्री पुत्र गृह त्यागकर सन्यास आश्रम को चलता है तो घर से निकलकर वानप्रस्थ होने से जब तक गुरु के द्वारा मंत्रादि ब्रह्म तत्व की प्राप्ति नहीं होती है तब तक नाम वैराग्य कहा जाता है। यह प्रथम सोपान है।

(२) **कर्म वैराग्य**—कर्म वैराग्य उसे कहते हैं। जीव जब गुरु के द्वारा मंत्रादि ब्रह्म तत्व की प्राप्ति करके गुरु के आदेशानुसार मन्त्र

जपादि होम तर्पण पूजा आदि कर्मनिष्ठ होता है। इसी को कर्म वैराग्य कहते हैं। यह दूसरा सोपान है।

(३) ज्ञान वैराग्य—ज्ञान वैराग्य उसे कहते हैं जीव जब मंत्र जपादि कर्मों के द्वारा अपना अन्तःकरण निर्मल कर लेता है और हृदय का मोहान्धकार नाश होकर अपने आत्मतत्त्व को जानकर अपने किए हुए पूर्व दुष्कर्मों का विचार कर पश्चात्ताप करते हुए प्रभु से क्षमा, कृपा की याचना करता है और प्रार्थना करता है कि हे प्रभो !

न धर्म निष्ठोऽस्मि न चात्मवेदि न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनो नान्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥

इसी को ज्ञान वैराग्य कहते हैं यह तीसरा सोपान है।

(४) त्याग वैराग्य—त्याग वैराग्य उसे कहते हैं, जीव जब अपने आत्मतत्त्व का निश्चय करके आत्मा में ही आप्त काम, "*सर्वारम्भ परित्यागी न शोचति न कांक्षति*" और अपने मन में मंत्रार्थ करते हुए, "*रामाय*" अर्थात् रा, मा, य,

रामभद्र ! दयासिन्धो ! दयानिधे ! दीनबन्धो !
पापपङ्के निमग्नोस्मि त्राहि मां रघुनन्दन !।
माता पिता गुरुः स्वामी सखा बन्धुस्त्वमेव मे,
रक्षकाकाभयादायिन् ! त्राहि मां रघुपुङ्गव ! ॥

यत्र कुत्रापि यास्यामि देवतिर्यङ् नरेषुच,
तत्र मामचलां भक्ति देहि मे भरताग्रज ! ।

इत्यादि मनन करते हुए इन्द्रिय व्यवहार से पृथक् अपने आत्मा में ही परमानन्द सुख अनुभव करते हुए "*विकारी परिणामी च देह आत्मा कथं वद*" शरीर से आत्मा पृथक् निश्चय करके शरीरासक्ति से निवृत हो जाता है और "*फिरत सनेह मगन सुख अपने*" संसार में स्वेच्छाचारी होकर विचरता है। "*महा घोर संसार रिपु जीति सकै सो वीर*" ये परम पुरुषार्थी संसार के काम क्रोधादि को पराजित करके काल से भी निर्भय हो जाते हैं। "*कालौ सन्मुख गए न खाई*" और "*सुर नर मुनि कोउ नाहि, जेहि न मोह माया प्रबल*" एवं "*मम माया दुरत्यया*" को भी पराजय किये हुए हैं। ऐसे परम पुरुषार्थ को त्याग वैराग्य कहते हैं। इस प्रकार न्यूनाधिक वैराग्य की चार श्रेणी हैं। यथा–

नाम वैराग्य दश विप्राणां कर्म वैराग्य शतानि च।
ज्ञान वैराग्य ममो देहो, त्याग वैराग्य च दुर्लभः ॥

नाम वैराग्य, कर्म वैराग्य, ज्ञान वैराग्य त्याग वैराग्य, यह चार प्रकार का वैराग्य. चार सोपान हैं। इसमें से नाम ही वैराग्य हो, तब भी ब्राह्मण से दश गुणा अधिक है। कर्म वैराग्य होने से तो सौ गुणा अधिक है और ज्ञान वैराग्य होवे तो साक्षात् भगवान् का ही स्वरूप बन जाता है। और त्याग वैराग्य तो भगवान् से भी अधिक है। इस प्रकार वैराग्य के चार सोपान हैं।

(२) ज्ञान के सप्त सोपान—ज्ञान के सप्त सोपान इस प्रकार हैं। यथा-"*शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, तत्त्वोत्पत्ति, असंशक्ति, पदार्थाविभावनी, तुर्यगा*"। अब इन्हें भिन्न-भिन्न कहा जा रहा है।

(१) शुभेच्छा—अशुभ कर्मों का त्याग, शुभ कर्मों का ग्रहण अर्थात् चोरी. नारी, मिथ्या इत्यादि अशुभ कर्म हैं इनका त्याग करके. माता-पिता सेवा, गुरुजनों की आज्ञा पालन. प्राणी मात्र का हितैषी "*सब के प्रिय सब के हितकारी*' सज्जनों का संग, तीर्थादि भ्रमण '*चरण राम तीरथ चलि जाहीं*" संतजनों की सेवा इत्यादि शुभ कर्म हैं अशुभ कर्मों को त्याग कर शुभ कर्मों के करने से अपना अंतःकरण निर्मल हो जाता है। अंतःकरण निर्मल होने से शास्त्र पुराणों के विचार करने की शक्ति होती है। इसी को शुभेच्छा कहते हैं। यह ज्ञान का प्रथम सोपान है।

(२) विचारणा—शास्त्र-पुराण "*विधि निषेध मय*" अतएव "*विधि प्रपंच गुण अवगुण साना*' और "*गणि गुण दोष वेद बिलगाए*" वह गुण, अवगुण, विधि निषेध कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, पाप, पुण्य, बद्ध मुक्त, प्रवृत्ति निवृत्ति, साधु असाधु, इत्यादि भिन्न-भिन्न विचार करें वा विचार होना। इसे विचारणा कहते हैं। इस विचार शक्ति से अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता है। परन्तु मार्ग दो दृश्य होते हैं और दोनों अपनी-अपनी पुष्टि करते हैं। शास्त्र पुराण में दोनों मार्ग समान बताये जाते हैं। कहा जाता है कि माता-पिता कुटुम्ब परिवार की सेवा करना ही धर्म है।

मातु पिता अरु गुरु की बानी। बिनहिं विचार करिय भल जानी॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके॥

दो० मातु पिता गुरु स्वामि शिख, शिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाह तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जाय॥

इत्यादि कहा गया है कि माता-पिता कुटुम्ब बन्धु यही सब तुम्हारे हितैषी हैं, इनकी सेवा करने से ही तुम्हारा जीवन कृतार्थ होगा। तुम्हें मुक्ति भक्ति मिलेगी, यही शास्त्र सम्मत है और अन्यत्र यही शास्त्रों में कहा जा रहा है—

तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
राम प्राण प्रिय जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

दो०--प्राण प्राण के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह, जिनहिं तिनहिं विधि बाम॥

इत्यादि कहा गया है कि प्राणी मात्र के माता-पिता भगवान् श्रीराम जी हैं। सब कुटुम्ब परिवार स्त्री पुत्रादि माता पिता सबको त्याग कर भगवान की सेवा करनी चाहिए।

अब विचार करने से दो मार्ग बन जाते हैं। प्रथम तो माता-पिता कुटुम्ब बन्धुओं की सेवा करना, दूसरा यह भी कहा है कि- "*मातु पिता स्वारत रत ओऊ*"। माता पिता बन्धु सभी स्वार्थी हैं इन सबकी सेवा त्याग कर भगवान् की सेवा करनी चाहिए। भगवान्

श्रीरामजी "*स्वारथ रहित सखा सबही के*" सबके प्रिय हितैषी, स्वारथ रहित एक भगवान् हैं। उन्हीं की सेवा करना चाहिए "*कस्य माता पिता कस्य कस्य भ्राता सहोदराः*"। इस प्रकार शास्त्र पुराणों सभी में द्विविधा होने के कारण विचार के शेष में "*किं कर्तव्य विमूढ़ात्मा*" हृदय में विचार शक्ति शून्य हो जाती है, मूढ़ की तरह क्या करूँ, क्या न करूँ, "*द्विविध मनोगति प्रजा दुखारी*" प्राणी द्विविधा ग्रस्त होकर चिन्तित होता है। मानसिक व्यथा ग्लानि हो जाती है। तब असमर्थ होकर नाना भावना करता है विचार करता है कि क्या करना चाहिए, इसी का नाम है विचारणा, यह ज्ञान का दूसरा सोपान है।

(३) तनुमानसा--—यथा—'*द्विचित कतहुँ परितोष न लहहीं*॥ *एक एक सन मर्म न कहहीं*"॥ मनकी मर्म भेदी व्यथा किसी को कही नहीं जाती, परन्तु मन में नाना प्रकार की संकल्प विकल्प, रूपी तरंगे उठने लगती हैं। इस प्रकार नाना चिन्तातुर होकर चित्त में अशान्ति छा जाती है।

भय उचाट वश मन थिर नाहीं। छन वन रुचि छन सदन सुहाहीं॥

इस प्रकार मन में उच्चाटन सा हो जाता है। स्थिरता नहीं आती, कभी तो '*सब तजि करौं चरण रज सेवा*' और कभी "*चार पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके*'॥ इस प्रकार कभी तो माता पिता की ही सेवा करना श्रेष्ठ धर्म है और कभी "*सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्*"। सांसारिक सम्बन्ध सब झूठा है। "*सबकी ममता*

ताग बटोरी"। गुरू पिता माता सर्वस्व जानकर अपने अन्तरात्मा परमात्मा की ही सेवा करना सर्वोत्तम धर्म है। अब एकान्त वन में जाकर भगवान् का ही भजन करूँ। इस प्रकार मनमें द्विविधा होने से नाना प्रकार की भ्रान्ति होकर क्या क्या भावना होने लगती है। नाना प्रकार चिन्ता ग्रस्त हो जाता है। इसी का नाम तनुमानसा है, यह ज्ञान का तीसारा सोपान है।

(४) तत्त्वोत्पत्ति—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥

यह जीव स्वभाव से ही ज्ञान स्वरूप ईश्वर का ही एक अंश परात्पर सुख सच्चिदानन्द, परन्तु अनादि अविद्या लिप्त संसार विषय में जड़ीभूत होकर स्त्री पुत्रादि अनीश्वर पदार्थों में सदा सर्वदा तदाकार होने से "*हृदय जवनिका बहु विधि लागी*"। हृदय के विवेक नेत्रों पर मल जड़ीभूत मलीन होने के कारण "*नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा*"। आकाश में धूली छा जाने से जैसे आकाश अदृश्य हो जाता है, उसी प्रकार यह जीव का अपना ईश्वरीय रूप अदृश्य हो जाता है और अपना स्वरूप भूलकर अपनी नाना नामों से ख्याति करता है कि मैं सांसारिक एक जीव हूँ अमुक देशीय, अमुक जातीय, अमुक व्यवसायी, अमुक नाम गोत्र वाला हूँ, ऐसा अहमत्त्व मन में धारण कर लेता है। यथा-

दृष्टान्त—एक गड़रिया था वह अपनी बकरी भेड़ों को रोज जंगलों में चराया करता था। जंगल माँसाहारी बाघ भेड़िया आदि

जन्तुओं से रक्षा के लिए दो चार कुत्तों को पोषकर रक्खा था वे कुत्ते भी छेरी भेड़ों के साथ ही रहा करते थे। एक दिन अकस्मात् एक व्याघ्र का बच्चा अबोधशिशु बन से न जाने कैसे आकर छेरी भेड़ों के साथ रह गया। गड़रिया ने देखा यदि यह हमारी पोष मानकर, हमारी छेरी भेड़ों में रह जाय तो कुत्तों के साथ यह भी बकरियों की रक्षा करता रहेगा। ऐसा समझकर व्याघ्र के बच्चे को भी कुत्तों के साथ खिलाना पिलाना और रोज की तरह भेड़ों के साथ बन में चराने को ले जाने लगा। ऐसे बहुत दिन हो गये। दैव संयोग से एक दिन एक व्याघ्र जंगल से निकल पड़ा और भेड़ों पर शिकार के लिए टूट पड़ा। व्याघ्र को आता देखकर सब छेरी भेड़ी और कुत्ते भी भगे। तो पोषा हुआ यह व्याघ्र का बच्छा भी भगा व्याघ्र के बच्चे को भी भागता हुआ देखकर वह आता हुआ शिकारी व्याघ्र बोलता है कि हे व्याघ्र भाई, तूँ क्यों भागता है, तो वह व्याघ्र का बच्चा बोलता है कि मैं तो व्याघ्र नहीं हूँ, मैं तो बकरी हूँ, तूँ मुझे खा लेगा. तो शिकारी बाघ बोलता है भैय्या तुम तो बकरी नहीं हो. बाघ हो, तुम अपने को बकरी कैसे कह रहे हो। बाघ शिशु बोला नहीं, नहीं मैं तो बकरी हूँ। बाघ बोला भाई तुम तो भूले हो, अपना मुख तो देखो, और हमारा मुख देखो हम तुम दोनों बाघ हैं आखिर बाघ शिशु ने कहीं जल में अपना मुख देखा तो बोला हाँ भाई हमारा तुम्हारा रूप-रंग तो एक ही सा दीखता है क्या हम भी सच्चे बाघ ही हैं। बाघ बोला हाँ-हाँ भाई तूँ भी बाघ ही है, तुम भी बकरी भेड़ों का शिकार किया करो। आखिर बाघ शिशु एक गर्जन

किया और उसकी गर्जना को सुनकर गड़रिया तो डरकर भागा जो रोज छेरी भेड़ों के साथ बाघ के बच्चे को लाठियों से मारता था, और बाघ का बच्चा, जो छेरियों के साथ मार खाते हुए अपने को भेड़ी समझ रक्खा था वह शिकारी बाघ बनकर बन में चला गया और स्वाधीन हो गया।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रगणो ! देखो जो सिंह व्याघ्र होते हुए भी नीच संगत में पड़कर रोज छेरी भेड़ी की तरह गड़रिया के द्वारा कितनी ताड़ना भोगता था, आज भगवान् उसके ऊपर कृपा करके बाघ होकर गुरु रूप से मिले और उपदेश देकर संसार दुःख से मुक्त कर दिया।

भाइयो, इसी प्रकार यह जीव "*ईश्वर अंश जीव अविनाशी*" होने पर भी विषयासक्त, पशुवत् संसार यातना में पड़े हुए, मोहासक्त बद्ध प्राणियों की संगत में पड़ जाने से वह बाघ के शिशु की तरह अपने को सांसारिक विषयासक्त अमुक देश, अमुक जाति, अमुक नाम का कह रहाहै अपनी दैवीशक्ति को सम्यक् प्रकार से भूल गयाहै। "*यादृशी भावना यस्य*" होकर जीव ने अपने को सिंह के बदले बकरी समझ लिया है। अर्थात् मैं ईश्वर अंश नहीं हूँ, मैं सांसारिक प्राणी हूँ स्त्री पुत्रादिकों की मोह ममता मायामें बंधे रहना ही मेरा कर्त्तव्य है।

भैय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार यह जीव अनादि काल से अविद्या में भूला हुआ अपने ईश्वरीय तत्त्व को पुनः संपादन करने के लिए, वह बाघ शिशु के न्याय से "*गुरुः साक्षात् हरिः स्वयम्*"

हमारे लिए *"कृपासिन्धु नर रूप हरि"* नर रूप होकर गुरु रूप से प्राप्त होते हैं और वह बाघ के शिशु की तरह हम सब प्राणियों को उपदेश देकर जीवों की नारकी बुद्धि दूर करके विषयासक्ति से मुक्त करके ईश्वरीय शक्ति एवं ब्रह्मतत्त्व का संपादन करते हैं, जो *"ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति '* ब्रह्म स्वरूप हो जाता है। यथा–*"वाल्मीक भए ब्रह्म समाना"* गुरु के उपदेश से ही तो वाल्मीक ब्रह्म समान हुए।

भैय्या बालक वृन्द ! दूसरा दृष्टान्त लीजिए, जैसे काष्ठ में अग्नि का स्वरूप होने से भी, किस दैव योग से वह काष्ठ हो गया है और घरों में नाना प्रकार कड़ी, वर्गा, खम्भा, बड़ेरी, चौकठ, कपाट, इत्यादि बनकर अनादिकाल से अनन्तकाल पर्यन्त घोर बंधन में पड़कर हजारों मनका बोझा छत्तादि अपने शिर पर वहन कर रहा है और अग्नि चिह्न भी उसमें नहीं दीखता है और अपनी जड़ता के कारण, न किसी प्रकार से अपने अग्नि तत्त्व को ही प्राप्त करने को समर्थ है। वह जड़ काष्ठ हो गया है। यदि पूर्व दृष्टान्त के अनुसार बाघ शिशु के न्याय, गुरु रूप होकर भगवान् स्वयं किसी रूप से किसी के द्वारा किसी कारण से उस काष्ठ में अग्नि का संयोग कर देता है तो साथ ही वह काष्ठ जलकर अपने अग्नि तत्त्व को धारण करके तेजोमय हो जाता है और थोड़े ही काल में अपनी जड़ता रूपी काष्ठ गुण को भस्म रूप से त्यागकर अग्नि रूप में सदा के लिए लीन हो जाता है। काष्ठ अदृश्य हो जाता है।

भैय्या बालक वृन्द ! इसी प्रकार यह जीव *"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"* होते हुए भी अपना ईश्वरीय तत्त्व, ब्रह्म शक्ति को संपूर्ण

भूलकर अपने को जीव मान चुका है और काष्ठवत् जड़, ज्ञान शून्य होकर इसमें ईश्वरीय शक्तिका चिह्न भी नहींहै। केवल *"जीव धर्म अहमिति अभिमाना"* मैं कर्त्ता हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ, *"अहं ब्रह्मास्मि"* मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं मेरा में ही रह गया है।

भैय्या बालक वृन्द! इस जीव के कल्याण के लिए भगवान *"कृपा सिन्धु नर रूप हरि"* नर रूप धारण करके जीव को गुरु रूप से प्राप्त होते हैं और काष्ठ-अग्नि संयोग की तरह हृदय अज्ञान अन्धकार से ब्रह्माग्नि मंत्र का प्रयोग करके जीव के हृदय में प्रकाश करते हैं। जैसे काष्ठ में अप्राकृत अग्नि तो है ही, परन्तु काष्ठता छा जाने से उसका प्रकाश और उष्णतागुण नष्ट हो गया था परन्तु प्राकृत अग्नि दियासलाई इत्यादि का संयोग हो जाने से और बारीक काष्ठ साथ में देकर थोड़ा पवन करने से शीघ्र ही काष्ठ अग्नि रूप धारण कर लेता है।

भैय्या बालक गण! ऐसे ही इस शरीर में अप्राकृत ब्रह्म *"अस प्रभु हृदय अछत अविकारी"* रहते हुए भी काष्ठवत् माया ममता मोह अज्ञानता छा जाने के कारण ईश्वरीय शक्ति लुप्त हो गई है।

भैय्या! गुरुदेव कृपा करके प्राणी के हृदय में अग्निवत् राम कृष्णादि मंत्र प्राकृत ब्रह्म का संयोग कराके, संयम नियमादि बारीक काष्ठवत् संयुक्त मंत्र जपादि पवन रूप प्रवाहित करते हुए, हृदय के अज्ञानता जड़ता रूपी काष्ठ को जलाकर ब्रह्म रूपी अग्नि का विकास कराकर, ईश्वरीय तत्त्व को उत्पन्न कराते हैं। *"सोउ प्रगटत जिमि*

मोल रतन ते'' जैसे हीरा का मूल्य हीरा से ही पैदा होता है, ऐसे ही मंत्र ब्रह्म से ही अप्राकृत ब्रह्म ईश्वरीय शक्ति प्रत्यक्ष हो जाती है। ''*सन्तुष्टः स गुरुर्देव आत्म रूपं प्रदर्शयेत्*''॥ गुरु प्रसन्न होकर आत्म तत्व ब्रह्म का साक्षात् करा देते हैं।

भैय्या बालक वृन्द! हम सबों की अज्ञानता के कारण नष्ट हुई ब्रह्म शक्ति, ईश्वरीय सत्ता, ईश्वरीय तत्व, गुरु के द्वारा पुनः संपादन होना इसी का नाम है तत्वोत्पत्ति, यह ज्ञान का चौथा सोपान है।

(५) असंशक्ति—जीव जब गुरु का कृपा पात्र होकर मंत्रादि ब्रह्मविद्या ब्रह्मशक्ति ईश्वरीय तत्व प्राप्त करता है। अज्ञानता की ब्रह्माग्नि में जलते हुए, '*रस रस शोष सरित सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी*'' प्रकाश स्वरूप ज्ञान पाकर शनैः शनैः सांसारिक अनीश्वरीय पदार्थ स्त्री पुत्रादि की ममता संकोच होने लगती है और नाना प्रकार षट्रस खाद्य वस्त्र भूषणादि से अनाशक्ति होती जाती है। "*जिमि लोभहिं शोषै संतोषा*'' मंत्र जपादि से क्रमशः मनमें तृप्ति आने लगती है "*स्वाद तोष सम सुगति सुधाके*' अर्थात् "*तोषक तोषा*'' परम संतोष प्राप्त करके "*केहि कै लोभ विडम्बना कीन्ह न यहि संसार*'' अनीश्वरीय पदार्थों से लोभ नष्ट हो गया। चित्त की अशान्ति दूर हो गई। संसार को सारी आसक्ति दूर हो गई। सांसारिक सब पदार्थों में अश्रद्धा अनासक्ति होना इसी का नाम असंशक्ति है, यह ज्ञान का पाँचवा सोपान है।

(६) पदार्थाविभावनी—जब जीव सांसारिक सब पदार्थों से

अश्रद्धा प्राप्त करता है और आप्तकाम आत्माराम, आत्मा में ही तृप्त हो जाता है। " न शोचति न काँक्षति ' तब वह जीव सब प्रकार शान्ति लाभ करके स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्यादि विषय विलासिता अनीश्वरीय वस्तुओं की कुछ भी आवश्यकता नहीं करता। उसका जीवन सुखमय धन्य-धन्य हो जाता है तब जीव अपने आत्मा में ही सारे दैवी गुणों को देखने लगता है।

बढ़ेउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥

तब कहता है। अब मेरा जीवन भगवान् के दिव्य गुणों से परि-पूर्ण हो गया है। पहले अज्ञानता वश मैंने अपने को स्वतन्त्र मान रक्खा था, और सर्वदा मन में अभिमान का एक समुद्र उमड़ा करता था और हमारे सारे दैवी गुण उस अहंकार समुद्र में डूब गए थे। अब मुझे यह अनुभव होता है कि मैं परम कल्याणमय, परम सुहृद, अनन्त, अचिन्त्य, सद्‌गुणनिधि, भगवान का एक यन्त्र मात्र हूँ, मैं एवं मेरा अर्थात् संसार के सारे अनीश्वरीय पदार्थ, एवं मेरा देहाभिमान् अहंकार यह कुछ भी नहीं है और मेरापना वा मैं भी उन्हीं का हूँ। अब मुझे जहाँ घृणा थी वहाँ प्रेम होता है। जहाँ प्रतिवाद था वहाँ ही आनन्द होता है। जहाँ अपराध था, वहाँ क्षमा होती है। जहाँ अन्धकार था, वहाँ प्रकाश दीखता है। जहाँ विषयासक्ति थी वहाँ भगवान् में प्रेम होता है। अब मेरा मन भगवान् तथा भगवान् के दिव्य गुणो से परिपूर्ण हो गया है। अब मुझको संसारी अनीश्वरीय पदार्थों की कुछ आवश्यकता नहीं है।

भैय्या बालक वृन्द ! संसारी अनीश्वरीय सारे पदार्थों से अनिच्छा हो जाना, जीव की इसी अवस्था का नाम है पदार्थाव-भावनी, यह ज्ञान का छठवाँ सोपान है।

(७) **तुर्यगा**—जब जीव को आत्मा तथा परमात्मा का विशुद्ध ज्ञान हो जाता है, जैसे मंत्रार्थ "*रामाय*" मैं राम का हूँ "*जीवः सकल विधि कैंकर्य निपुणः*"। मैं "*ईश्वर अंश जीव अविनाशी*"। अविनाशी ब्रह्म का ही अंश जीव हूँ और ब्रह्म की सर्व सेवा में निपुण हूँ। वे प्रभु मेरे सेव्य हैं मैं उनका सर्व प्रकार सेवक हूँ "*सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि*"। इस प्रकार ईश्वरीय निष्ठा इष्ट में आस्तिकता, इष्ट में विश्वास, ईश्वर को प्राप्त करने की अति उत्कंठा, संसारी मोह ममता का त्याग, संसार से विमुख, (संसार से वैराग्य) भगवान् के सन्मुख, (भगवान में अनुराग) मैं किसी का पिता, पुत्र, पति, नहीं हूँ, किसी का भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला नहीं हूँ, किसी बन्धन में नहीं हूँ, किसी मोह में नहीं हूँ, किसी पदार्थ में आसक्त नहीं हूँ, मैं सम्यक् प्रकार भगवान् का हूँ। वह प्रभु भगवान् की प्राप्ति करना मुझे नितान्त आवश्यक है। मुझ आत्मा और परमात्मा दोनों को एकत्रित होना अवश्य चाहिए, अब मुझे भगवान् के सम्बन्ध से सब जीवों के प्रति प्रेम, आत्मीयता से मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया। भगवान् प्रेम स्वरूप हैं, अब मैं भगवान् का अनुभव कर रहा हूँ। यह जीव मात्र ही भगवान् का अंश है। नाम, रूप, गुण, प्रकृति, स्थिति इत्यादि ईश्वर का ही प्रभुत्व है। सब वस्तुओं से पृथक् होने

पर भी अन्तरात्मा चैतन्य रूप से एक ही है। *"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"* प्राणी मात्र सभी ईश्वर का ही है।

भगवान् विभु हैं और यह सारा संसार, उन्हीं का वैभव है। आत्मा अनेक हैं परमात्मा एक ही सब में व्याप्त है *"जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं"* इसलिए *'सीय राम मय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि युग पानी '* अथवा *"सबहिं मान प्रद आपु अमानी"* ऐसा स्वभाव से सभी को सन्मान देना और अपने अमानी होना *"ज्ञान मान जहँ एको नाहीं '* विशुद्ध ज्ञान उसी को कहते हैं जहाँ किसी प्रकार मान अभिमान का चिह्न भी नहीं है। *"तृणादपि सुनीचेन"* और *"सबके प्रिय सबके हिंतकारी"* जो परमविद्या परमज्ञान श्रीरामजी को विश्वामित्र दिये थे जिसका बला अतिबला नाम से वर्णन किया गया है *"जाते लाग न क्षुधा पिपासा '* और *"अतुलित बल तनु तेज प्रकाशा"*॥ प्रथम बला अर्थात् बाहर बल क्षुधा पिपासा सर्दी गर्मी साँप बिच्छू, भूत पिचास डाकिनी इत्यादि शरीर रक्षण, और अतिबला अर्थात् अतुलनीय बल, तेज, पुरुषार्थ सामर्थ्य, परमात्मतत्व, परमात्मज्ञान, आत्मबल, आत्मज्ञान, अध्यात्म विद्या, अध्यात्मबल, अध्यात्मज्ञान इत्यादि ईश्वरीय तत्व को और जीव तत्व को यथार्थ जानना, यही पूर्ण ज्ञान है। बला विद्या से जोव तत्व का ज्ञान होता है और अतिबला विद्या से परमात्मतत्व का ज्ञान होता है परन्तु यह ज्ञान गुरु की कृपा साध्य है *"गुरु बिनु होहि कि ज्ञान"* इसी का नाम है विशुद्ध ज्ञान, इसी अवस्था का नाम है तुर्यगा, यह ज्ञान का सातवाँ सोपान है।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्र गणों इस प्रकार ज्ञान के सातों सोपानों से क्रमशः जब जीव उत्तीर्ण हो जाता है तब आत्मा के साथ परमात्मा से एकचित होने के लिए जिज्ञासु होता है। जो आगे अष्टाङ्ग योग नाम से वर्णन किया जायगा जो आठ सोपानों में विभक्त है

३—अष्टाङ्गयोग—'*योगश्चित्त वृत्ति निरोधः*"।

अष्टाङ्गयोग इस प्रकार से है। यथा—**यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधी, योऽष्टावङ्गानि योगयोः** इसी को योग कहते हैं।

(१) **यम**—"*अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः*" विशेषं तु "*अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः। दयार्जवं मिताहारः शौचं चैव यमादशाः*"॥ अर्थात् किसी जीव की हिंसा न करना, दुःखदायी कटु बचन न कहना, झूठा न बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचारी होना, क्रोध न करना, अधीर न होना, स्वभाव दयावान् और सरल होना, बहुत भोजन न करना, पवित्र रहना, यही दश यम वा संयम कहे जाते हैं। संयम पालन करने से यह फल होता है। अहिंसा होने से कोई प्राणी हमसे हिंसा नहीं करता सत्य से वाक्य सिद्धि होती है, चोरी न करने से सबका प्रिय हो जाता है, ब्रह्मचर्य से शक्ति बढ़ती है, ब्रह्मवेत्ता होता है, अपरिग्रह होने से पूर्व की स्मृति होती है, त्रिकाल का ज्ञान होता है इत्यादि फल प्राप्त होते हैं, इसी का नाम है यम, यह योग का प्रथम सोपान है।

(२) नियम—*"शौच संतोष स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः"*
विशेष—

तपः संतोष आस्तिक्यं दानमीश्वर पूजनम्।
सिद्धान्त वाक्य श्रवणं ह्रीमती च जपो हुतम्॥

अर्थात् तपस्या, संतोष, देवता में भाव, दान देना, इष्ट पूजा में निष्ठा, गुरु और वेद वाक्यों का श्रवण, लोक लज्जा से बचना, सुबुद्धि होना, मंत्रादि जप, होम करना यही दश नियम कहे जाते हैं। इससे यह फल होता है कि शौच से साधन सिद्धि, सुबुद्धि से मन की शुद्धि, तप से मन की एकाग्रता, संतोष से इन्द्रिय निग्रह, स्वाध्याय से इष्ट का दर्शन, इत्यादि फल प्राप्त होते हैं। यही नियम कहा जाता है यह योग का दूसरा सोपान है।

(३) आसन—*"स्थिरसुखमासनम्* विशेष, *चतुराशीति लक्षाणा-मेकैकं समुदाहृतम्। ततः शिवेन पीठानां षोडशोनं शतंकृतम्"*। अर्थात्, जिस आसन से बहुत समय सुखपूर्वक बैठ सके उसी को आसन कहते हैं। परन्तु आसनों की संख्या चौरासी लाख है किन्तु उसमें भिन्न भिन्न साधकों का भिन्न भिन्न मत है। *"ऋषिश्च भिन्नाःस्मृतयश्च-भिन्ना नाना मुनीनां मतं विभिन्नाः"*। किसी ने चौरासी लाख योनियों की आकृति आसन रूप में धारण करना, वे चौरासी लाख आसन बताये हैं। किसी ने लाख का एकांश चौरासी ही बताया है। किसी ने छप्पन भी कहे हैं। किसी ने अठारह कहे हैं। किसी ने छै ही बताये हैं। इत्यादि आसनों के भिन्न-भिन्न मत हैं परन्तु योगियों में श्रेष्ठ,

शंकर भगवान् चौरासी आसन दृढ़ किये हैं। इन्हीं आसनों के साथ षट्क्रिया नेती, धोती, नौली, इत्यादि बताई गई हैं। जो "*कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन*"। इत्यादि बताया गया है। इसी को आसन कहते हैं। यह योग का तीसरा सोपान है।

(४) प्राणायाम—यथा-"*तस्मिन्सति श्वाँसप्रश्वाँसयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः तथा सूर्य भेदन उज्जायी शीतकारी शीतली तथा। भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लावनीत्यष्ट कुंभकाः प्राणायामः*'। श्वाँस प्रश्वाँस बारंबार पूरक कुंभक रेचक, करने से प्राणवायु की गति अवरुद्ध होती है। इससे प्राण संयत होता है। आत्मा का साक्षात्कार होने का ज्ञान होता है। इसके आठ भेद हैं. सूर्यभेदन, उज्जायी, शीतकारी, शीतली, भस्त्रिका भ्रामरी, मूर्छा प्लावनी, यही आठ भेद युक्त कुंभक प्राणायाम कहा जाता है। इससे धीरे-धीरे कुम्भक की वृद्धि करना होता है प्राणायाम से 'नाना प्रकार मस्तिष्क का दुर्विचार. अविवेकिता का नाश हो जाता है। और प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, पंच प्राण वायु की एकता होती है जो आत्मा परमात्मा की एकता में उपयोगी होती है। इसी को प्राणायाम कहते हैं यह योग का चौथा सोपान है।

(५) प्रत्याहार—"*स्वविषया संप्रयोगे, स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः*" तथा -'*चरतां चक्षुरादीनां विषयेषु यथा क्रमम् यत्प्रत्याहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते*'। अर्थात् विषयों से चित्त की निवृत्ति होने से जैसा चित्त का स्वरूप होता है। इन्द्रियों की एकाग्रता होना, रूप. रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श, यह पाँच विषय हैं। इनके नेत्रादि पंच

ज्ञानेन्द्रिय भोक्ता है। इनको धीरे-धीरे विषयों से अलग-अलग करके इन्द्रियों की विषयों से निरीहता की आकाँक्षा होने से इन्द्रिय निग्रह होता है। मन निर्मल होता है, मन की वृत्ति आत्मा में लगती है। तब आत्मा परमात्मा की एकता में सुयोग मिलता है इसे प्रत्याहार कहते हैं। यह योग का पाँचवा सोपान है।

(६) धारणा—"*देश वन्धश्चित्तस्य धारणा*"। विशेष—

हृदये पञ्च भूतानां धारणा च पृथक् पृथक्।
मनसोनिश्चलत्वेन धारणा साऽभिधीयते॥

अर्थात् चित्त वृत्ति को एकाग्र करके हृदयादि स्थानों के एक देश में दो घंटा, चार घंटा स्थिर करके, मन प्राण, को निश्चल करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पञ्चभूतों को भिन्न-भिन्न धारण करना, इससे आत्मा परमात्मा के एकत्र करने में सहयोग होता है। इसे धारणा कहते हैं। यह योग का षष्ट सोपान है।

(७) ध्यान—"*तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम्*"। विशेष—

स्मृत्येव सर्व चिन्तायां धातुरेकः प्रपद्यते।
यच्चित्ते निर्मला चिन्ता तद्धि ध्यानं प्रचक्षते॥

अर्थात् ध्येय पदार्थ में ही चित्त की एकाग्रता होना, सांसारिक सर्व चिन्ता विस्मृत होकर एक ही वस्तु परमात्मतत्त्व परमात्मा का ही एकमात्र स्मरण होना ध्यान कहा जाता है। यह योग का सप्तम सोपान है।

(८) समाधी—"*तदैवार्थ मात्रनिर्भासं स्वरूपशून्य इव समाधी*"

विशेष—

धारणं पञ्चनाडीभि र्ध्यानं च षष्ट नाडीभिः
दिन द्वादश के नस्यात् समाधी प्राण संयमात् ॥

सलिले सैन्धवं यद्वत्साम्यं भजति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधीरभिधीयते ॥

यदा संक्षिपते प्राणान् मानसं च प्रलीयते।
तदा समरसत्वं च समाधीरभिधीयते ॥

तत्समंच द्वयोरैक्यं जीवात्मा परमात्मनोः।
प्रनष्टः सर्व संकल्पः समाधी सा भिधीयते ॥

अर्थात् चित्त में इष्ट का चिन्मय स्वरूप ज्योति मात्र प्रकाश ही अपना स्वरूप शून्य मृतक प्रायः हो जाना इसी को समाधी कहते हैं। अतएव, प्राण वायु का संचार पाँच घन्टा रुके, वह धारणा कही जाती है। और बारह घंटा रुके, वह ध्यान कहा जाता है और बारह दिन प्राण वायु रुके, श्वाँसा वन्द रहै उसे समाधी कहते हैं। जैसे जल में लवण (नमक) मिलकर तदाकार हो जाता है वैसे ही मन और आत्मा का एकाकार होना ही समाधी कही जाती है। जब प्राण और मन की गति एक में लय हो जाती, उस समय की मन और आत्मा की समता को समाधी कहते हैं। जब जीवात्मा और परमात्मा दोनों तदाकार होकर, जीव के सर्व संकल्प नष्ट हो जाते हैं

और सर्वचिन्ता रहित ब्रह्मानन्द परमानन्द अवस्था होती है उसी को समाधी कहते हैं। यही अष्टांग योग है।

भैय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार जीव जब अपने परात्पर तत्त्व को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करता है तब विचार करता है कि अपने परात्पर तत्त्व परमात्मा की तो प्राप्ति की, परन्तु परमात्मा और आत्मा में व्यवहार क्या करना चाहिए। बताया गया है। "*सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि*"। परमात्मा के साथ आत्मा का सेव्य सेवक भाव न होने से जीव का संसार से निस्तार नहीं होता। "*सेवक हम स्वामी सिय नाहू*"। अर्थात् हम (जीव) सेवक, और स्वामी सीता नाह श्रीरामजी हों, भगवान श्रीराम जी ने स्वयं श्री हनुमान जी से कहा है।

सो अनन्य जाके अस मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

हे हनुमान जी ! जो प्राणी ऐसी दृढ़ मति रखते हैं कि मैं जीव मात्र का सेवक हूँ, और रूप राशि शोभा समुद्र भगवान् श्रीराम जी का रूप चर अचर जगत मेरा स्वामी है। वही मेरा अनन्य भक्त है।

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोय।
सर्व भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोय॥

पुरुष वा स्त्री अथवा नपुंसक हो, चाहे चर हो अथवा अचर हो, जो सर्व प्रकार कपट चातुरी त्याग करके हमारी सेवा (भजन)

करता है वही हमारा परमप्रिय है "*मानऊँ एक भक्ति कर नाता*"। जीव के साथ हमारा एक मात्र भक्ति का नाता है। "*भक्ति हीन विरंचि किन होई*" ॥ भक्तिहीन ब्रह्म भी क्यों न हो परन्तु वह भी मुझे प्रिय नहीं है, तो भगवान् परमात्मा से हमारा (जीव का) प्रियत्व होना ही आवश्यक है। और देख भी रहा हूँ की जड़ चैतन्य सभी प्राणी भगवान् की सेवा भक्ति कर रहे हैं। यथा-"*सब तरु फले राम हित लागी*"। वृक्ष जड़ हैं फिर भी सेवा कर रहे हैं। "*करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया*"। एवं "*करहि सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा*" पुनः "*सरिता गिरि बन अवघट घाटा। प्रभु पहिचानि देहिं बर बाटा*"। *जिनहिं देखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं विषमविष तामस तीछी*"। अतएव "*खग मृग चरण सरोरुह सेवी*"। "*मधुकर खग मृग तनु धरि देवा*"। ब्रह्मा से कीट पर्यन्त चर अचर जड़ चैतन्य सभी भगवान् की सेवा कर रहे हैं भगवान् सभी के सेव्य हैं। जीव सभी सेवक हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! यह दिव्य ज्ञान जीव को होना ही यही अष्टाङ्ग योग है जिसके द्वारा जब इन्द्रिय निग्रह हो जाता है, मन निर्मल हो जाता है। तब ज्ञान की प्राप्ति करता है। तभी भगवान् की सेवा के लिए उद्यत होता है "*योगश्चित्त वृत्ति निरोधः*" चित्त की चांचल्य वृत्ति का निरोध होना यही अष्टाङ्ग योग है जो आठ सोपान करके वर्णन किया गया है। अब आगे विज्ञान वा नवधा भक्ति कही जायगी।

—:※:—

नवधा भक्ति वा विज्ञान

विज्ञान स्वरूपा नवधा भक्ति में नौ सोपान हैं। वे नौ सोपान इस प्रकार हैं —

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम् ॥

इत्यादि, जिसको श्री भरतलाल के प्रति कहा गया है।

संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥
कुल कपाट कर कुशल करम के। विमल नयन सेवा सुधरम के॥

यही नौ भक्ति जीव को विज्ञान रूपा है एवं प्रेम रूपी रतनों की नौ खाने हैं, नौ निधि हैं। भगवान् के नौ सम्बन्धों को जोड़ने वाली हैं इन नौ अङ्गोंसे भगवान् की सेवा, नौ सम्बन्धों से होती है। यथा-

पिता पुत्रत्व संबन्धो जगत कारण वाचिका।
रक्षरक्षकभावश्चरेणा रक्षक वाचिना ॥
शेषशेषित्व संबन्धश्चतुर्थ्यां लुप्तयोच्यते।
भार्याभर्तृत्व संबन्धोऽप्यनन्यार्हत्व वाचिना ॥
अकारेणापि विज्ञेयो मध्यस्थेन महामते।
स्वस्वामिभाव संबन्धो मकारणाथ कथ्यते ॥

आधाराध्येय भावोऽपि ज्ञेयो रामो पदेन तु।
सेव्य सेवक भावस्तु चतुर्थ्यां विनिगद्यते॥
नमः पदेन खंडेन त्वात्मात्मीयत्वमुच्यते।
षष्ठ्यन्तेन मकारेण भोग भोक्तृत्व मप्युत।

अर्थात् पिता-पुत्र १-रक्ष रक्षक २-शेष शेषी ३-पति पत्नि ४-स्वामी सेवक ५-आधार अधेय ६-जीव ईश्वर ७ सखा सख्य ८-भोग भोक्ता ६ इस प्रकार नौ सम्बन्ध युक्त जीव, भगवान् की ही नौ निधि है। नौ रतन है, नौ साधना वा नौ सेवा नवधा भक्ति नौ सोपान उत्तीर्ण होने से साध्य होती है। अर्थात प्राप्त होती है। यह नौधा भक्ति की साधना नौ प्रकार की सेवा, पंचधा प्रेमा-भक्ति वा परा भक्ति की शिक्षा स्वरूपिणी है। जो आगे नौ सोपान के रूप में वर्णन की जा रही है। यथा:-"*श्रवणादि नौ भक्ति दृढ़ाई*"।

(१) **श्रवण**—'*श्रवणं नाम चरितं गुणादीनां श्रुतिर्भवेत्*' विशेषाः-

बिनु सत संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग॥

भगवान् के उत्तम सुयश नाम रूप लीला धामादि गुणानुवाद श्रवण करना श्रवण भक्ति है। परन्तु बिना साधु-संग के भगवान् की कथा की प्राप्ति नहीं होती और भगवान् की उदारता, जीव की निष्ठुरता कथा रूप में यथार्थ न सुनने से जीव का मोह नाश न होने से

भगवान् में प्रेम नहीं होता है। यथा–"*जाने बिन्नु न होइ परतीती, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती*"। साधु–संग कर, जहाँ

ब्रह्म निरूपण धरम विधि बरनहिं तत्वविभाग।
कहहिं भगति भगवन्त के, संयुत ज्ञान विराग॥

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान के तत्वों को भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों से ब्रह्म तत्व का निर्णय किया जाता है। और संसार स्वार्थ का हेतु है। संसारिक यथार्थ स्वरूप, (स्त्री पुत्र कुटुम्बादि का) भिन्न भिन्न रूप से वर्णन किया जाता है। जिससे मन की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है।

निर्गुण उपासक संतशिरोमणि जगद्गुरू श्री कबीरदास जी अपनी संत मंडली में भाषण देते हुए उपदेश कर रहे हैं। यथा–"*जगत है रात को सपना, समुझ मन कोइ नहिं अपना*"। फिर भी भैया "*कठिन है मोह की धारा, बहा सब जात संसारा*"। देख संसार का हाल प्राणी अन्धा, "*घड़ा ज्यों नीर का फूटा, पात ज्यों डार से टूटा*"। "*नर ऐसी जान जिन्दगानी, सबेरा शोच अभिमानी*"। अरे मूर्ख, "*देखि मत भूल तनु गोरा' जगत में जीवना थोरा*"। *त्यागि मद मोह कुटिलाई, रहो निःसंग जग भाई*"। भैय्या संसार झूठा है। "*सुजन परिवार सुत दारा, सभी एक रोजहों न्यारा*"। जब तुम संसार से चलोगे, "*निकल जब प्राण जावेगा, कोई नहिं काम आवेगा*'। भैय्या! "*देखि मत भूल यह देहा, करो तुम राम से नेहा*"। मेरी बात सुनो–"*कटै जग जाल की फाँसी, कहैं गुरुदेव अविनाशी*"।

भैय्या बालक वृन्द ! यह सब संसार का यथार्थ सिद्धान्त तो संसार त्यागी सन्त के ही समागम में निर्णय होता है। यथा–

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः॥

सन्तशिरोमणि नौ योगीश्वरों ने कहा है कि इस लोक में किए हुए भगवान् के चरित्रों को सुनकर और अर्थ, यथार्थ, समझकर भगवान् के नाम लीलादि को संग रहित अर्थात् सांसारिक बंधन स्त्री पुत्रादि त्यागकर अकेला, निर्लज्ज होकर उच्चस्वर से गायन करें।

रामहिं भजहिं तातशिव धाता। नर पामर कर केतिक बाता॥

इत्यादि सत्संग में ही सुना जाता है, इसी से तो "*प्रथम भगति संतन कर संगा*"। कहा गया है सत्संग में विधि-निषेध कर्त्तव्य अकर्त्तव्य श्रवण करना चाहिए। यही श्रवण भक्ति कही गई है। यह विज्ञान का प्रथम सोपान है।

(२) कीर्तन—"*नाम लीला गुणादीनां उच्चैर्भाषा तु कीर्त्तनम्*'। भगवान् के नाम रूपादि लीला गुणों को उच्चस्वर से गान करना, अर्थात् भगवान् की उदारता, अपनी दीनता आदि का गान करना। जैसे जगत्गुरु सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी गान कर रहेहैं।

तूँ दयालु दीन हौं, तूँ दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तूँ पाप पुञ्ज हारी॥

नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान पातकी, नहिं पातक हर तोसो॥
ब्रह्म तू हौं जीव, तूँ है ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा, सब विधि हितु मेरो॥
मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावै॥

आदि गाना कीर्त्तन भक्ति है। यह विज्ञान का दूसरा सोपान है।

(३) स्मरण—"*कथं चिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते*"। विशेष–

येतु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्थ मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

भगवान् से पिता, पुत्र, सेवक सेव्य, गुरु शिष्य, किसी सम्बंध से स्मृति होना और भगवान् का ही ध्यान, पूजा इत्यादि अपने किए हुये सर्व कर्मों को अर्पण करे और अपना सर्वस्व जानकर भगवान् का ही स्मरण करता रहे। इसी को स्मरण भक्ति कहते हैं। यथा– "*प्रातः स्मरामि रघुनाथ पदारविन्दम्*" अथवा "*प्रातः स्मरामि रघुनाथ करारविन्दम्*" अथवा "*प्रातः स्मरामि रघुनाथ मुखारविन्दम्*" इत्यादि। कोई चरण कमल का स्मरण करते हैं, कोई कर कमल का स्मरण करते हैं, कोई मुख कमल का स्मरण करते हैं, कोई नयन कमल का स्मरण करते हैं और कोई सर्वांग का भी स्मरण करते हैं। यथा–

घूँघुरवाली अलक हिय हरि गई ॥ टेक ॥

अति प्यारी, भारी मनहारी, सघन सचिक्कन कारी।
कपोलन ढरि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥

अनियारी, तीखी मतवारी, नयन मयन तलवारी।
कतल हिय करि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥

छविकारी, भारी मनहारी, वदन चन्द्र उजियारी।
व्योम हिय बसि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥

सुकुमारी, सन्तन हितकारी, हस्त कमल धनुधारी।
शीश पर फिर गई ॥ घूँघुर वारी० ॥

द्युतिवारी, पीरी पटवारी, अमल मनोहर भारी।
कमर बिच कसि गई ॥ घूँघुर वारी० ॥

सुखकारी, संसृति दुःखहारी, सकल सुमंगलकारी।
चरण पर बिक गई ॥ घूँघुर वारी० ॥

रुचि वारी, मधुरी गुणकारी, "रामविलास" पियारी।
रूप रस चखि गई ॥ घूँघुर वार० ॥

सौरारी, संतन जिवनारी, "गंगादास" बलिहारी।
काम मद हरि गई ॥ घूँघुर वारी अलक हिय हरि गई ॥

इत्यादि स्मरण भक्ति है। यह विज्ञान का तीसरा सोपान है।

(४) पादसेवन—

ममनाम सदा ग्राही मम सेवा प्रियासदा।
भक्तिस्तस्मै प्रदास्यामि नैव मुक्तिः कदाचन ॥

भगवान् कहते हैं कि जो प्राणी हमारा नाम जपते हुए, सर्वदा सेवा में तत्पर रहते हैं, मैं उनको मुक्ति न देकर, भक्ति ही देता हूँ। और '*सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं*''। सगुण उपासक सेवा करने वाले मोक्ष लेते ही नहीं हैं वे तो हमारी सेवा ही में सुखी रहते हैं। यथा-"*चापत चरण लषनउर लाए*"। "*श्री रघुवीर चरण रत होऊ*"। "*सब तजि करउँ चरणरज सेवा* '। इत्यादि पादसेवन भक्ति कही जाती है। यह विज्ञान का चौथा सोपान है।

(५) **अर्चन**—"*शुद्धिन्यासादि पूर्वांगं कर्मनिर्वाह पूर्वकम्। अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मंत्रेणोपपादनम्*"। अथवा "*कर नित करहिं राम पद पूजा* '। भूत शुद्धि न्यसादि सर्वांग, षोडशोपचार पंचोपचार, दशोपचार, कर्मों सहित गन्धपुष्पादि विविध उपचारों से भगवान् की पूजा करें। पूजा के पश्चात् श्रद्धा भक्ति से पुष्पांजलि चरणों में अर्पण करें। इसी को पाद सेवन भक्ति कहते हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! यही सेवा पूजा अर्चन जीवन के कल्याण के लिए, भगवान् श्रीराम जी स्वयं, जीव शिरोमणि श्री लक्ष्मणजी के प्रति कहे हैं।

श्रीराम उवाच–

मम पूजा विधानस्य नान्तोस्ति रघुनन्दन !।
तथापि वक्ष्ये संक्षेपाद्यथा वदनुपूर्वसः ॥

हे भैय्या लक्ष्मण ! वैसे तो हमारी पूजा का अन्त नहीं है। तथापि मैं संक्षेप में कहता हूँ। मनुष्यों को चाहिए अपने वर्णाश्रम के

अनुसार, यज्ञोपवीत, गुरु मन्त्रदीक्षा ग्रहण करें। गुरु के बताए हुए मार्ग से भक्ति पूर्वक हमारी आराधना करें। विग्रह पूजा करें वा मानसिक पूजा करें, अथवा अग्निहोत्रादि करें। किम्वा शालग्राम की पूजा करें परन्तु प्रथम वेद एवं तंत्रोक्त विधि से प्रातः स्नानादि, शरीर शुद्धि करें। पुनः तिलक स्वरूपादि संस्कार युक्त होकर मन्त्र जपादि तर्पण करें। पुनः विचार पूर्वक भक्ति से संकल्पादि करें। पुनः हमारे समान वा हम से भी अधिक आदर सन्मान से गुरु पूजा करें।

तुमते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥

पुनः हमारी पूजा के हेतु शालग्राम को स्नान करावे, और धातु निर्मित प्रतिमा का मार्जन करे, पुनः गन्ध पुष्पादि से भूषित करे, और पूजा की यावत् सामग्री से विधि पूर्वक पूजा करे, तब पूजा की सिद्धि होती है। दम्भ कपट आदि दोषों को त्यागते हुए "*मोहि कपट छलछिद्र न भावा*" गुरु के बताए हुए मार्ग से भक्ति पूर्वक हमारी पूजा करनी चाहिए। पुनः श्रृङ्गार मुझे बहुत प्रिय है। अर्थात् हमारी प्रतिमा का सुन्दर श्रृङ्गार करे। अथवा अग्नि में मेरा पूजन करना हो तो घृतादि से हवन करें। सूर्य में पूजा करना हो तो प्रतिमा बनाकर अथवा तर्पण आदि से पूजा करें। अधिक तो क्या कहूँ, "*पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति*"। मेरा भक्त मुझे श्रद्धा भक्ति से पत्र पुष्प, फल, जल, कुछ भी अर्पण करता है तो मैं उसे बहुत प्रसन्नता से ग्रहण करता हूँ।

हे भैय्या लक्ष्मण! प्राणी दंभ कपट त्यागकर, श्रद्धा भक्ति से पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, भूषण आदि अपनी शक्ति के

अनुसार, कपूर, केशर, अगर, चन्दन आदि सुन्दर सुगंध पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नाना उपचारों से आरती इत्यादि विस्तार पूर्वक मंत्रानुसार मेरी पूजा करें। पूजा के पश्चात् मेरी प्रसन्नता के लिए, नृत्य, गीतादि स्तुति पाठ करें। और मुझे "*हृदये श्यामलं रूपं सीता लक्ष्मण संयुतम्*" हृदय में स्मरण करते हुए भूमिष्ठ दंडवत करें। हमारे प्रसाद को भक्ति से शिरोधार्य करें। पुनः मेरे चरणों को दोनों हाथों से शिरोधार्य करें। और मन से मुझे स्मरण करके मुख से वारम्बार प्रार्थना करें, कि हे प्रभु! "*रक्षमाम घोर संसार*" विशेष "*अतुलित बल अतुलित प्रभुताई, मैं मतिमंद जान नहिं पाई*" अपराधी हूँ "*निज कृत कर्म जनित फल पायउँ अब प्रभु पाहि शरण तकि आयउँ*"। इस घोर मोहान्धकार संसार सागर कारागार से मेरी रक्षा करो। इस प्रकार कहते हुए मुझे प्रणाम करके, पुनः जिस हृदय स्थित ज्योतिः स्वरूप से आवाहन करे वही ज्योति में स्मरण करके पूज्य इष्ट का विसर्जन करें।

> एवमुक्त प्रकारेण पूजयेद्विधिवद्यदि।
> इहामुत्र च संसिद्धिः प्राप्नोति मदनुग्रहात्॥
> मम भक्तो यदि मामेव पूजां चैवदिने दिने।
> करोति मम सारूप्यं प्राप्नोत्येव न संशयः॥

यदि इस प्रकार विधिवत मेरी पूजा करे, तो "*इह लोके सुखी भूत्वा पर लोके विजयी भवेत्*"। मेरे अनुग्रह का भागी बनकर इह लोक में सुख भोगते हुए, "*अन्त काल रघुपति पुर जाहीं*"। परलोक में जाने की सिद्धि प्राप्त करता है। जो मेरा भक्त इस विधि से पूजा करता है वह निःसन्देह मेरी सारूप्य मुक्ति पाता है। यथा–'*गृद्ध देह तजि धरि*

हरि रूपा, भूषण बहु पट पीत अनूपा ॥ श्यामगात विशाल भुज चारी" जो भक्त मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट पतंग कोई भी हमारा चिन्तवन स्मरण भजन पूजन करता है वह देहान्ते हमारे समान श्याम सुन्दर शरीर पाकर और चतुर्भुज, बहुभूषण पीताम्बर वस्त्र धारण करके दिव्य शरीर से हमारे साकेत वैकुण्ठादि लोकों में जाकर हमारी सेवा करता है–"*यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्*" जहाँ जाकर संसार में पुनरावर्त्ति नहीं होती वही मेरा परम धाम है।

भैय्या बालक वृन्द ! देखो भगवान् ने हमारे कल्याण के लिए कैसा सुन्दर सरल मार्ग अपनी पूजा बतायी है। फिर इतने सस्ते कि एक बुन्द जल जहाँ हमको अर्पण करे, तो भी मैं जीव के प्रति प्रसन्न हो जाता हूँ और इस लोक के नाना दुःखों से मुक्त करके अपने साकेत वैकुण्ठादि लोकों में भेज देता हूँ और अनादि काल से मेरे से विमुख, मेरी सेवा से वञ्चित हुए जीव को पुनः वही सेवा दे देता हूँ। यही मेरी पूजा अर्चा का फल है। इसी को अर्चन भक्ति कहते हैं, यह विज्ञान का पाँचवा सोपान है।

(६) वन्दन—

वन्देऽम्बुजं यव चक्र ध्वजोर्ध्व रेखा,
स्वत्यष्ठकोण पवि चिन्हित दक्षिणांघ्रिम्।
विन्दु त्रिकोण धनुरंकुश मत्स्य शंख,
चन्द्रार्घ गोष्पद घटांकित वाम पादम्॥

अतएव—"*वन्दौं राम चरण सब लायक*"। पुनः "*वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरम्*"। अर्थात् भगवान् के चरणकमलों में यव, अंकुश,

ध्वजा आदि चिह्नों सहित वन्दन नमस्कार करे, ध्यान करे। "वन्देऽहं तमशेष कारण परम्, वन्दे ब्रह्म कुलं कलंक शमनम्, वन्दे कंदावदातं सरसिजनयनम्' ॥ इत्यादि। अथवा—"वन्दउँ अवधपुरी अति पावनि" वन्दउँ कौशल्या दिशि प्राची' "वन्दउँ लक्ष्मण पद जल जाता" वन्दउँ सबके चरण सुहाए" "वन्दउँ पद सरोज सब केरे" वन्दउँ नाम राम रघुवर के"। इत्यादि वन्दन भक्ति कही गई है। यह विज्ञान का छठाँ सोपान है।

(७) **दास्य**—"दास्यं कर्मार्पणं सर्वं कैंकर्यं मम सर्वदा'। सन्मार्जनोपलेपाभ्यां सेवा मंडल वर्त्तनैः'। "गृह सुश्रूषणं मह्यं दासवद्यद मायया"। "नीच टहल गृह कै सब करिहौं"। "नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह" दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य"। अर्थात् भगवान् के मन्दिरादि को लीपना, पोछना, वस्त्रादि को धोना, भगवान् का चन्दन फुलेलादि से मार्जन करना, केशर कस्तूरी कुमकुमादि भगवान् के शरीर में लेप करना, नाना प्रकार वस्त्रालंकार से भूषित करना, स्वामी सेवक भाव से भगवान् के चरणादि की नाना प्रकार से सेवा करना, अपने किए हुए सब कर्मों को भगवान् को अर्पण करना।

भैय्या बालक वृन्द! श्रीराम जी को विवाह के समय एक वयोवृद्धा सेविका नाना प्रकार के सुशोभित सुशोभित सुवासित पुष्पों का हार रोज पिन्हाया करती थी। दुर्भाग वस जब श्रीरामजी श्रीअवध को प्रस्थान किए, तो वह सेविका प्रेमानन्द में मग्न होकर अपने हृदय के भाव को कीर्त्तन रूप में गान करने लगी। यथा—

मैं साथे में जइहौं, राम से लागी लगनियाँ रे ॥ टेक ॥

राम की बारी में कुटिया बनैहौं ।

सींचिहौं राम की फुलवरिया रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

चुनि चुनि फुलवा मैं हरवा बनैहौं ।

पहिनइहौं मैं रामजी के गरवा रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

रामचन्द्र जब जीमना जिमिहैं ।

उठइहौं मैं जूठी पतरिया रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

रामचन्द्र जब पलँगा में सोइहैं ।

मचलिहौं मैं उनकी पगनियाँ रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

घर के नीच काज सब करिहौं ।

देखिहौं मैं राम कइ चरनियाँ रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

राम चरण मैं कबहूँ न छड़िहौं ।

बहरिहौं मैं अवधा डगरिया रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

श्री गुरुदेव जब गोदी खेलइहैं ।

देखि देखि होइहौं सुखीनियाँ रे ॥ मैं साथे में जइहौं० ॥

राम से लागी लगनियाँ रे, मैं साथे में जइहौं ॥

इत्यादि गुणों को दास्य भक्ति कहते हैं । यह विज्ञान का सातवाँ सोपान है ।

(८) सख्य—"*विश्वासो मित्र वृत्तिश्च सख्य द्विविधमीरितम्*" विशेष—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे ॥

दूसरे सखा, "*सब प्रकार करिहौं सेवकाई*" भगवान् में अटल विश्वास और मित्रता का वर्त्ताव करें, इन्हीं दो गुणो को सख्य भक्ति कहते हैं। अर्थात् मित्रता का अर्थ होता है समता, दोनों का सम भाव हो, जैसे श्रीरामजी और सुग्रीव की सख्य भावना थी। श्रीराम जी कहते हैं-हे सखा सुग्रीव ! हमारे बल से तुम निश्चिन्त हो जाओ, तुम्हारा सब कार्य मैं करूँगा। सुग्रीव कहते हैं, हे प्रभो ! मैं आपकी सर्व प्रकार से सेवा करूँगा। दोनों तरफ निष्काम निर्मल प्रेम हो, "*यथा तुलसी राम से, तथा राम तुलसी से*" जैसे श्रीराम जी कहते हैं-

दोहा–वचन कर्म मन कपट तजि, भजन करहिं निष्काम।
तिन्हके हृदय कमल महँ, सदा करउँ विश्राम ॥

सखा भक्त कहते हैं—

दोहा–अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बाण धर राम।
मम हिय गगन इन्दु इव, बसहु सदा निष्काम ॥

सखा सख्य दोनों ही निष्काम हों, इसी को सख्य भक्ति कहते हैं। यह विज्ञान का आठवाँ सोपान है।

(६) आत्मनिवेदन—

इष्टं दत्तं तपो तप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम्॥

तन धन धाम राम हितकारी। सब विधि तुम प्रणतारति हारी॥
मोरे सबै एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर अन्तर्यामी॥
दिशि अरु विदिशि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥

यज्ञ, दान, जप, तप, नाना प्रकार धर्मानुष्ठान, प्रिय, अप्रिय, आत्मिक सदाचार, स्त्री, पुत्र, धन, तन, प्राण, सर्वस्व, भगवान् को अर्पण करते हुए, अपने शरीर की सुध, बुध, सब विस्मरण हो जाय। "*तदैवार्थ मात्र निर्भासं, स्वरूप शून्य इव*"। सर्व श्रीराम ही राम हों, निज रूप का भी ज्ञान शून्य सा हो जाय। यथा–

साधो राम बिना कछु नाहीं।
रामहिं आगे रामहिं पाछे रामहिं बोलै माहीं।
उत्तर रामहिं दच्छिण रामहिं पूरब पश्चिम रामा।
स्वर्ग पताल महीतल रामा राम सकल विश्रामा॥
उठत रामहिं बैठत रामहिं जागत सोवत रामा।
राम बिना कछु और न दरशइ सकल राम के कामा॥
सकल चराचर पूरण रामा निरखइँ शब्द सनेही।
कायम सदा कबहूँ न बिनसै बोलन हारा एही॥

एक राम को भजै निरन्तर एक रामहीं गावै।
कहैं "कबीर" राम के परशे आपा ठौर न पावै ॥
साधो राम बिना कछु नाहीं।
रामहिं आगे रामहिं पाछे रामहिं बोलै माहीं ॥

अर्थात् सर्व राममय ही देखे मैं मेरा, तैं तेरा, कुछ भी न हो शरीर तक भी स्मरण न हो, यही आत्म निवेदन भक्ति है। यह विज्ञान का नौवाँ सोपान है।

भैय्या बालक वृन्द, मित्रो! यही २८ सोपान, नाम वैराग्य से लेकर आत्म निवेदन पर्यन्त, निवृत्ति के हैं। इस प्रकार वर्णाश्रम प्रवृत्ति के ३८ और विरक्ताश्रम निवृत्ति के २८ दोनों मिलकर ६६ सीढ़ी मनुष्य शरीरधारी, जीव को चढ़ना होता है। जो शरीर—

नर समान नहिं कौनिहु देही। जीव चराचर याचत जेही ॥
स्वर्ग नरक अपवर्ग निसेनी। ज्ञान विराग भक्ति सुख देनी ॥

ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सब सुख देने वाली, एवं स्वर्ग वैकुण्ठादि लोकों में तथा नरक भवकूप पाताल में भी ऊपर नीचे चढ़ने उतरने की सीढ़ी है। परन्तु मनुष्य का पुरुषार्थ यही है कि अपनी उन्नति करे, ऊपर ही उठना श्रेयष्कर है और नीचे गिरना कुत्सित है। परन्तु कर्म की ही प्रधानता है। *"कर्म प्रधान विश्व करि राखा"*। उच्च कर्म करेंगे स्वर्ग वैकुण्ठादि लोकों में जाँयगे। नीच कर्म करेंगे नरक (भवकूप) में जायँगे। नर शरीर ही नीचे ऊपर दोनों तरफ जाने की सीढ़ी है।

"संत संग अपवर्ग कर, कामी भवकर पंथ" संतों का मार्ग वैकुण्ठ का है। वे उच्च कर्म करके ऊपर वैकुण्ठ चले जा रहे हैं। कामी कामिनी के संग मैथुनादि नीच कर्म करके नीचे भवकूप रूपी योनि कूप गर्भ यातना में जा रहे हैं। असंतों का मार्ग भवकूप में नीचे जाने का है।

भैय्या बालक वृन्द ! मनुष्य शरीर *"साधन धाम मोक्ष कर द्वारा"* मनुष्य के ही शरीर से साधन बनता है। जीव मनुष्य शरीर पाकर भी यदि भक्ति मुक्ति नहीं पा सका *"सो परत्र दुःख पावइ, शिर धुनि धुनि पछिताइ"*। फिर तो पूर्ववत् कीट पतंग पशु पक्षी में जहाँ था, वहाँ ही चला गया और अब वहाँ शिर पीट-पीट कर पश्चात्ताप करना छोड़कर और कर्त्तव्य ही क्या कर सकता है।

भैय्या बालक वृन्द ! आप सब तो पढ़े लिखे विद्वान् हैं स्वयं भी शास्त्र पुराण पढ़कर जान सकते हैं। देखिए जीव और ईश्वर का स्वरूप, *"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"* ब्रह्म वैवर्त्त पुराण में कहा है कि–*"जीवात्मा परमात्मा च"*।

जीवो मत्प्रतिबिम्बश्च इत्येवं सर्व सम्मतम्।
प्रकृति मद्विकारश्च साप्यहं प्रकृतिः स्वयम्॥
यथा दुग्धे च धावल्यं न तयोर्भेद एव च।
यथा जले तथा शैतं यथा वह्नौ च दाहिका॥
यथाऽऽकाशे तथा शब्दे भूमौ गन्ध यथावृत।
यथा शोभा चन्द्रमसि यथा दिनकरे प्रभा॥

वायुश्च भूमिराकाशो जलं तेजश्च पंचकम् ।
उक्तः श्रुतिगणैरेतैः पञ्चभूतेश्च नित्यशः ॥
सर्वेषां देहिनां तात ! देहश्च पञ्च भौतिकम् ।
मिथ्या भ्रमःकृतमश्च स्वप्नवन्मायायाऽन्वितः ॥
देहं गृह्णाति सर्वेषां पंचभूतानि नित्यशः ।
माया संकेत रूपं तदभिज्ञानं भ्रमात्मकम् ॥
को वा कस्य सुतस्तात का स्त्री कस्य पतिस्तु वा ।
कर्मणा भ्रमणं शश्वत्सर्वेषां भूरि जन्मनि ॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते ।
सुख दुःख भयं शोकं कर्मणा च प्रपद्यते ॥
केषां जन्म च स्वर्गेषु केषां वा ब्रह्मणे गृहे ।
केषां विप्रेषु क्षत्रेषु केषां वा वैश्यशूद्रयोः ॥
अति नीचेषु केषां वा केषां कृमिषु विट्षु च ।
पशु पक्षीषु केषां व केषां वा क्षुद्रजन्तुषु ॥
पुनः पुनर्भ्रमत्येव सर्वे तात ! स्वकर्मणा ।
करोति कर्म निर्मूलं मद्भक्ता मत्प्रियः सदा ॥

भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नाशा ॥

भैय्या बालक वृन्द ! भगवान् कह रहे हैं कि हमारे प्रिय भक्त

ही एक भक्ति बल से संचित, क्रियमान और प्रारब्ध, कर्मों को समूल नाश कर देते हैं।

मोहिं भक्त प्रिय संतत, अस विचारि सुनु काग।
काय वचन मन मम चरण, करेहु अचल अनुराग॥

हे काग! हे प्राणी वृन्द! भक्त हमको सदा ही प्रिय हैं मन वचन कर्म से हमारे चरण कमलों में सदा अचल अनुराग करके सदा हमारा भजन सेवा करना। जीव मेरा ही प्रतिबिम्ब है। "*नर नारायण सरिस सुभ्राता*"। नर नारायण की तरह अंशी रूप से जीव और मैं एक ही वस्तु हूँ।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥
सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा। वारि वीचि इव गावहिं वेदा॥

जल और जल तरंग की तरह अविनाशी जीव हमारा ही अंश है हमारी तरह जीव भी निर्मल चैतन्य स्वभाव से ही सुख स्वरूप है। जीव और मेरे में कुछ भी भेद नहीं है। प्रकृति माया भी मेरा ही विकार है। वह भी ब्रह्म रूपिणी है। "*गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न*"। वह भी वाणी और अर्थ एवं जल और तरंग की तरह मेरा ही स्वरूप है। ब्रह्म, जीव और माया, कर्ता क्रिया, कर्म की तरह अर्थात् मैं ब्रह्मकर्त्ता हूँ और प्रकृति (माया) क्रिया है, जीव कर्म है। जैसे माता, पिता और पुत्र, अर्थात् यह माया ब्रह्म जीव एक वस्तु हैं। परन्तु "*कर्माधीनमिदं सर्वम्*"। प्राणी मात्र अपने कर्मपाश में बँधा हुआ है। "*काल कर्म गुण स्वभाव सबके शीश तपत*"। यह जीव (प्राणी) मात्र सदा "*सुर नर नाग*"। सभी "*बँधे कर्म की डोरी*"। में बँधे हुए नाना नरक यातना भोगते हुए भी, निर्भयता पूर्वक—

लोभै ओढ़न लोभै डासन। शिश्नोदर पर यमपुर त्राशन॥

काम क्रोध लोभादि में आसक्त परधन, परदारा, अपहरण अपनी ही इन्द्रियों (पेट) के उपाय में लगे रहते, नाना दुराचार कर्म वेदशास्त्र से प्रतिकूल करते हैं। "*सो परत्र दुःख पावै*"। बाद में हमारी क्या ताड़ना होगी, ऐसा यमपुर का भी भय नहीं करते। इस प्रकार हम जीवों की दुर्बुद्धि है।

भैय्या बालक वृन्द ! श्रीमद्भागवत् में भगवान् श्री कपिलदेव, देवहूती के प्रति संसारी विषयाशक्त जीवों की इस लोक और यमलोक में होने वाली यातनाएँ कह रहे हैं। अब हम सब बारम्बार श्रीमद्भागवत् रामायण, गीता, पढ़ रहे हैं समझ रहे हैं फिर भी मानते नहीं हैं।

श्री कपिल उवाच—

तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम्।
कालयमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः॥

(श्रीमद्भागवत–३।३०।१)

यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे।
तं तं धुनोति भगवान्पुमाञ्छोचति यत्कृते॥ (३।३०।२)

यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः।
ध्रुवाणि मन्यते मोहाद् गृहक्षेत्रवसूनिच॥ (३।३०।३)

इत्यादि कहते हुए

जीवतश्चान्त्राम्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने।
सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दशद्भिश्चात्मवैशसम्॥ (३।३०।२६)

कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्यो भिदापनम्।
पातनं गिरिशृंगेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः॥ (३।३०।२७)

यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौरवाद्याश्च यातनाः।
भुंङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः॥ (३।३०।२८)

अत्रैव नरकःस्वर्ग इति मातः प्रचक्षते।
या यातना वै नारक्यस्ता इहाप्युपलक्षिताः॥ (३।३०।२६)

एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरम्भर एव वा।
विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम्॥ (३।३०।३०)

एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम्।
कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्भृतम्॥ (३।३०।३१

दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान्।
भुंक्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः॥ (३।३०।३२)

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः।
याति जीवोऽन्धतामिस्त्रं चरमं तमसः पदम्॥ (३।३०।३३)

अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः।
क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः॥ (३।३०।३४)

भैय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार श्रीमद्भागवत् में व्यास बता रहे हैं। यह जीव का दुष्कर्म और उसके फल स्वरूप नरक यातना, जिसको पढ़ते अथवा सुनते ही मन कंपायमान् हो जाता है और वह दंड तो बहुत भारी है। परन्तु जीव जान-बूझकर फिर भी दुष्कर्म ही करता है। "*जानि गरल जे संग्रह करहीं। कहहु उमा ते काहे न मरहीं*" जान बूझकर यदि पाप कर्म करता है तो दंड क्यों नहीं पावेगा।

भैय्या सज्जन वृन्द ! मित्र गणो। "*राम भजे हित होइ तुम्हारा*" भैय्या बालक गण !

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे॥
नाहिं तो परिहौ भव बेगार महँ, छूटत अति कठिनाई रे॥

राम भजन करो नहीं तो तुम्हारी सारी चातुरी भूल जायगी और भव सागर का कीट बनना पड़ेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। "*अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्*" भैय्या मित्र गण !

तव कि चलहि अस गाल तुम्हारा, अस विचारि भजु राम उदारा॥

मनुष्य "*काल वेगं न पश्यति*" काल का शिकार होने पर भी वह काल के भयंकर प्रभाव को नहीं देखता।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काग कलेवा॥

सारा संसार प्राणी मात्र काल का ग्रास हो रहा है। भगवान् स्वयं कह रहे हैं। कि—

काल रूप तिन कहँ मैं ताता। शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता॥

प्राणी मात्र को शुभाशुभ फल भोगाने के लिए मैं ही काल हूँ, इस प्रकार जानते बूझते हुए भी "*शिश्नोदर पर यमपुर त्राशन*" अपनी इन्द्रिय सुख एवं पेट भरण पोषण के लिए, नाना प्रकार न्यायान्याय तथा कठिन परिश्रम से अनेक वस्तु सुख के लिए जुटाता है। परन्तु काल उसको ध्वंस कर देता है। और वह शोकातुर होकर बैठ जाता है। मनुष्य अज्ञानता वश देह सम्बन्धी पशु स्त्री पुत्रादि को सत्य मानता है। शूकर कूकर योनियों में जन्म होने पर भी अपने को सुखी समझता है। स्त्री पुत्रादि के भरण पोषण के लिए रात दिन चिन्ता ग्रस्त होकर नाना प्रकार दुष्कर्म करता है। स्त्री की माया में फँसकर नाना दुःखों को भोगते हुए भी उसी में सुख मानता है। फल स्वरूप दुर्गति पाता है। यावज्जीवन नाना प्रकार के पाप कर्म करते हुए काल के गाल में चले गए, और असंख्य काल तक कुम्भीपाक रौरवादि नरक भोगते हुए पुनः वही योनि यातना यम यातना सहन करते हुए "*भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निशि काल कर्म गुणनि भरे*"।

भैय्या बालक वृन्द ! आप सब पहले भी बहुत शास्त्र पुराण, बारम्बार श्रीमद्भगवतगीता रामायण पढ़े होंगे सुने होंगे, समझे होंगे, समझाए होंगे फिर भी "*भजेहु नहिं करुणामयम्*" उसका फल स्वरूप "*रामविमुख अस हाल तुम्हारा*" वही माता के गर्भ की यातना भोगते हुए संसारसागर कारागार में आए हुएहैं। अबके बाजी जैसे न हारैं। भगवान् का भजन करते हुए प्रार्थना करें। '*मन की जानन हार सुदेवा। भव सागर तारहु यहि खेवा*' ऐसा भजन करें कि यम का खाता रद्द हो जाय और भव सागर से पार हो जायें।

हाँ मित्रवर ! अब व्यास जी की बात सुनिए, जब इस जीव को भयंकर यमदूत बलात्कार ताड़ना दे देकर बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं। रास्ता में अन्य जीव इसको नोच-नोचकर खाते रहते हैं और भूख से व्याकुल हुए गरम रेती में चल नहीं सकते, तब यमदूत नाना प्रकार से ताड़ना करते हैं कष्ट से चलते बहुत कष्ट से वैतरणी तप्त बालुका आदि पार होते हुए यमालय में जाते हैं। फिर जीव को नाना प्रकार ताड़ना दी जाती है, जो आप श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कंध के २६ वें ऽध्याय में देखें कि अति कठिन २८ घोर रौरवादि नरक यातना बताई गई हैं, उसको भोगता है। और उसी का मांस उसको काट काटकर खिलाया जाता है। इस प्रकार अंधतामिस्रादि नरक यातना भोगता है। भैया "*जो न तरै भव सागरहिं, नर, समाज अस पाइ। सो कृत निन्दक मन्द मति, आतम हन गति जाइ*"॥ भैय्या प्राणियो ! ऊपर कही हुई ताड़नाओं को तो आप समझ लिए होंगे। यथा-"*जो शठगुरु सन ईर्षा करहीं, रौरव नरक कोटियुग परहीं*"। अथवा-

पति वंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प शत परई॥

भैय्या ! स्त्री हो या पुरुष हो, समझने की बात है कोटि युग, अथवा शत कल्प क्या अभी शेष हो जायगा। अर्थात् इतने इतने दिन, कोटि कोटि युग, शत कल्प, पर्यन्त यम लोक में नाना नरक यातना भोगता है तब भगवान् कहते हैं।

श्री भगवानुवाच

कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये।
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः॥

(श्रीमद्भागवत-३।३१।१)

अर्थात् दैव प्रेरणा से देह पाने के लिए जीव पुरुष के लिंग द्वारा अधोपतन होकर वीर्य रूप से भवकूप रूपी स्त्री के योनि मार्ग से गर्भोदर में प्रवेश करता है ।

भवकूप अगाध परे नर ते । पद पंकज प्रेम न जे करते ॥

भैया ! श्रीरामजी के चरणो में प्रेम न करने का फल यही मिलता है, भगवान् कहते हैं । मानस तो आप पढ़े ही होंगे ।

काल रूप मैं तिन कहँ भ्राता । शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥

जो जानबूझकर यदि आप भवकूप में पड़ोगे तो कोई क्या करेगा । '*पतितं भीम भवार्णवोदरे, अगति*' (*आलबन्दार*) ।

कललंत्वेक रात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम् ।
दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥

(श्रीमद्भागवत–३।३१।२)

एक रात्रि में माता का रज और पिता का वीर्य मिश्रित होता है । पाँच रात्रि में वर्तुलाकार (गोला) होता है । दश दिन में वेर के समान और कठोर हो जाता है । पुनः उस मलमूत्र युक्त योनि के भीतर माँस का पिंडाकार वा अंडाकार हो जाता है ।

मासेन तु शिरो द्वाभ्याँ बाह्वङ्घ्याद्यङ्गविग्रहः ।
नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः॥

(श्रीमद्भागवत ३।३१।३)

एक मास में शिर, और दो महीना में हाथ पैर आदि शरीर का

विभाग होता है। तीसरे महीने में नख, लोम, अस्थि, चर्म, लिंग, और छिद्र होते हैं।

चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभिः क्षुत्तृडुद्भवः।
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥

(श्रीमद्भागवत-३।३१।४)

चौथे मास में सप्तधातु और पाँचवे मास से प्यास आदि उद्भव होते हैं। छठे मास में जरायु (माँस) झिल्ली में लपेटा जाता है। और क्रमशः दाहिने कोख में चलाचल होने लगता है।

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसम्मते ।
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥

(श्रीमद्भागवत-३।३१।५)

पुनः माता के खाए पिए हुए रस पूय को खाकर धातुओं की वृद्धि होते हुए अनेक कीट जहाँ भरे हैं ऐसे विष्ठा मूत्र से सड़े हुए दुर्गन्धमय गर्भाशय रूपी गढ्ढे में सोता है। "*पुनरपि जननी जठरे शयनम्*" पड़ा रहता है।

कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम्।
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥

(श्रीमद्भागवत-३।३।१।६)

उस समय शरीर अति कोमल, और वहाँ पर रहने वाले क्षुधित कृमि शरीर को बारम्बार काटते रहते हैं और क्षण क्षण में नाना पीड़ाओं से क्षुभित मूर्छित करते हैं।

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ।
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्त्थित वेदनः ॥
(श्रीमद्भागवत-३ ३१।७)

भैय्या ! प्राणी, माता के बारम्बार नाना प्रकार स्वादिष्ट लाल मिर्च का अचार अति कडुवा तीता, गरम गरम, बहुत नमकीन पापड़ादि, रुक्ष मसालेदार चना भाजा आदि, और नीबू आमादि खट्टा आचार रही इमली नाना प्रकार के खट्टरस इत्यादि खाए हुए पदार्थों के कारण गर्भस्थ जीव के सर्वांग में नाना प्रकार वेदना और ज्वाला उठती है। अर्थात् कीटों के काटे हुए घावों पर जलन उठती है

उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ।
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥
(श्रीमद्भागवत-३।३१।८)

जरायु झिल्ली में बँधा हुआ (कपड़े की गाँठ जैसा) अथवा (खरिया में बँधी हुई घास की गाँठ जैसी मजबूत) और बाहर से माता की अँतड़ियों का आवरण अति संकीर्ण स्थान में हाथ-पैर मजबूत बँधे रहते हैं, पीठ के भागमें घुसाई हुई मुट्ठी टेढ़ी रहतीहै और शिर पेट में घुसा रहता है।

अकल्पः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ।
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥
(श्रीमद्भागवत-३।३१।९)

लोहा के मजबूत पिंजरे में बँधे हुए पक्षी के समान इतना संकीर्ण गर्भाशय है कि शरीर को किधर भी हिला डुला नहीं सकता इतना तक कि हाथ पाँव हिलाने में भी असमर्थ रहता है वहाँ समय समय पर भगवान् की प्रेरणा से अपने किए हुए पाप कर्मों के फल को मैं दुःख रूप गर्भ यातना में वा योनियातना को भोग रहा हूँ ऐसा समझने के लिए करोड़ों जन्मों का कृतकर्म स्मरण आने लगता है। तब वह दीर्घ श्वाँस छोड़ते हुए त्राहि त्राहि करता है। "अवश्मेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" अब वहाँ सुनता भी कौन है और सुख शान्ति कैसे होगी।

आरभ्य सप्तमान्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः।
नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः॥

(श्री मद्भागवत्-३।३१।१०)

सातवें मास में ज्ञान न होने से भी प्रसूति वायु इसे ऐसे कंपायमान् करती रहती है, जैसे उदर में रहने वाले अन्यकृमि, यह एक जगह ठहर नहीं पाता।

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः।
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः॥

(श्री मद्भागवत ३।३१।११)

देहात्मदर्शी यह प्राणी सातवें मास में बँधा हुआ भी सप्त धातुओं से वेष्ठित हुए गर्भवास में भगवान् को डरता हुआ व्याकुल वाणी से प्रार्थना करता है।

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽत्त नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम्
सोऽहं व्रजामि शरणंह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥
(श्री मद्भागवत-३।१३।१२)

भैय्या प्राणीजन ! फिर वह गर्भस्थ जीव गर्भयातना से आरत होकर भगवान् से कहता है कि जन्मान्तर अपराधों के कारण जो भगवान् हमें यह दुर्दशा में डाले हैं, जो भगवान् संसार रक्षा के लिए नाना अवतार धारण करते हैं ऐसे अभय पद देने वाले भगवान् के चरण कमलों की मैं शरण लेता हूँ मेरी रक्षा करो ।

यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम्
आस्ते विशुद्धमविकारमखंडबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥
(श्री मद्भागवत्-३।३१।१३)

हे प्रभु ! इस माता के गर्भ में बद्ध, मनोमय माया का आश्रय कर कर्मों में आवृत्त बद्ध हुआ मैं सच्चित आनन्द, विशुद्ध, अखंड, ज्ञान स्वरूप अविकारी भगवान् को नमस्कार करता हूँ,मेरी रक्षा करो ।

यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरेच्छन्नोयथेन्द्रियगुणार्थ चिदात्मकोऽहम्
तेनाविकुंठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृति पूरुषयोः पुमांसम् ॥
(श्री मद्भागवत ३।३१।१४)

यथार्थ में शरीर रहित होने पर भी इस पंचमहाभूतात्म रचित शरीर में मिथ्या भूत इन्द्रिय गुण, युक्त चिदाभासात्मक मैं शरीर से

जिसकी महिमा कुन्ठित नहीं होती, ऐसे सर्वज्ञ, प्रकृति पुरुष के नियंता परम पुरुष भगवान् को नमस्कार करता हूँ।

यन्मायथोरुगुणकर्मनिबंधनेस्मिन्सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण
नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥

(श्रीमद्भागवत ३।३१।१५)

अहा! जिसकी माया से गुणनिमित्तक गुरुतर कर्म रूपी बंधन जीव, इस संसार मार्ग में भ्रमण करते हुए अति कष्ट से स्मृति हीन हो जाता है, उस महान् ईश्वर के अनुग्रह बिना फिर अपने ज्ञान स्वरूप को कैसे पा सकता है, अर्थात् अन्य उपाय नहीं है।

ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेश्वनुवर्त्तितांशः।
तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥

(श्रीमद्भागवत-३।३१।१६)

जो भगवान्, स्थावर, जंगम, सब में अंतर्यामी रूप से विराजमान हैं। उन्हीं प्रभु के विना मुझे यह त्रिकाल ज्ञान को कौन दे सकता है। अर्थात् वही प्रभु हमको यह भूतपूर्व ज्ञान दिये हैं।

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनासृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः।
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन्स्वमासान्निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन्कदानु

(श्रीमद्भागवत-३।३१।१७)

हे प्रभु! दूसरे की देह, विष्ठा मूत्र में पड़े हुए जठराग्नि से जल रहा हूँ और यहाँ से निकलने की इच्छा से महीना गिन रहा हूँ। इस दीन को इस गर्भ यातना से कब निकालोगे।

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितःपुरुदयेन भवादृशेन ।
स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः कोनाम तत्प्रति विनांञ्जलिमस्य कुर्यात्
(श्रीमद्भागवत-३।३१।१८)

हे ईश्वर ! इस गर्भस्थान में दश मास के बाद यह त्रिकाल का दिव्य ज्ञान आपका दिया है । आप निरूपम, दया सागर हैं, हे दीनानाथ ! आप अपने उपकार से ही संतुष्ट हैं । आपको केवल नमस्कार छोड़कर आपके लिए उपकार का जीव प्रत्युपकार क्या कर सकता है।

पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ।
यत्सृष्टयाऽऽसं तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्यमिव प्रतीतम्
(श्री मद्भागवत ३।३०।१९)

हे प्रभु ! जिसको पशुओं का शरीर का शरीर मिला है । ऐसा सप्तावरण युक्त यह जीव, अपने शरीर में केवल सुख दुःख ही देख सकता है । किन्तु जिसकी कृपा से प्राप्त विवेक, ज्ञान से मेरा यह शरीर शम दमादि योग्य बना है । उन पुराण पुरुषोत्तम को मैं बाहर और अन्दर से प्रत्यक्ष देख रहा हूँ । मैं ऐसा विश्वास करता हूँ ।

सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे
यत्रोपयातमुपसर्पति देवमाया मिथ्यामतिर्यदनु संसृति चक्रमेतत् ॥
(श्रीमद्भागवत ३।३१।२०)

हे प्रभु ! अतिशय दुखमय यह गर्भस्थान होने पर भी मैं इस गर्भ से भी अधिक अन्धकूप जगत् उसमें नहीं जाना चाहता हूँ । क्योंकि

बाहर संसार में आपकी प्रचंड माया व्याप्त है वह जीव को घेर लेती है। और साथ ही उसमें अहमत्व, (संसारी) बुद्धि आ जाती है।

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदाऽऽत्म नैव
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरंध्रं मा मे भविष्य दुपसादित विष्णुपादः
श्रीमद्भागवत ३।३१।२१)

हे भगवन् ! मैं आपके चरणकमलों का आश्रय लेकर इस गर्भ यातना में भी व्याकुल नहीं हूँ। सुहृद् के समान आत्मा का संसार से उद्धार करूँगा, जिससे कि पुनः गर्भयातना न हो। यहीं पर आपकी भक्ति करूँगा।

श्री कपिल उवाच—

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः।
सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ (३।३१।२२)

इस प्रकार जीव गर्भयातना में विचार करते और प्रार्थना करते हुए पुनः प्रसूतिवायु शीघ्रता पूर्वक दशमास में गर्भ से बाहर निकाल देती है।

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाकिशर आतुरः।
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः॥(३।३१।२३)

नीचे गिरने से श्वाँस रुक जाती है और बड़े कष्ट से शरीर शून्य (मुर्दा) की तरह सिर नीचे किए गिर पड़ता है।

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते।
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः॥ (३।३१।२४)

भूमि पर मूत्र रक्त में गिरा हुआ विष्ठा के कृमि के समान चेष्टा करता है अर्थात् जैसे विष्ठा में पड़े हुए कीट विष्ठा में लिपटे हुए लोम-विलोम उलट पलट होते रहते हैं वही दशा जन्मकाल में यह जीव की होती है। इस दुर्दशा को प्राप्त होकर ज्ञान नष्ट हो जाने से रोता है।

परच्छंदं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः।
अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः॥ (३।३१।२५)

परन्तु जीव का अभिप्राय न जानकर नाना विचार से जीव की इच्छा से प्रतिकूल व्यवहार करते हैं।

शायितोऽशुचि पर्यंके जन्तुः स्वेदजदूषिते।
नेशः कंडूयनेऽङ्गानामासनोत्थान चेष्टने॥ (३।३१।२६)

पुनः दुर्गन्धमय अपवित्र खटिया पर जिसमें स्वेदज खटमल आदि भरे रहते हैं ऐसी शैय्या पर सुलाते हैं। असमर्थ शिशु, कीड़ों के डंसन करते हुए भी अपने शरीर को खजुला नहीं सकता, और उठ बैठ भी नहीं सकता है अर्थात् गर्भयातना के पश्चात् यह बाल यातना भोगता है।

तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः।
रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा॥ (३।३१।२७)

गर्भ में उत्पन्न हुआ इसका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और शरीर के कोमल चर्म में मच्छर आदि काटते हैं जैसे छोटे कृमि को बड़े कृमि खाते हैं वैसे ही इसको कृमि काट रहे हैं असमर्थ इन दुःखों को भोगता है।

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगंडमेव च।
अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः॥(३।३१।२८)

इस प्रकार शैशव तथा पौगंड के दुःख को भोगता है। जब इसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती तब अज्ञानतावश क्रोधित होता है। अन्त में पश्चात्ताप करता है।

सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना।
करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः॥(३।(३।३१।२६)

भैय्या बालक वृन्द! आप तो पढ़े लिखे हैं श्रीमद्भागवत पढ़ा करें और संत संग में बैठकर उसके यथार्थ अर्थ को समझा करें, और अब फिर यह गर्भ यातना न भोगनी पड़े, इसका विचार करें, क्योंकि कहा गया है। "*भूमि परत भा ढावर पानी, जिमि जीवहिं माया लपटानी*" जैसे आकाश से तो जल पवित्र बरसता है परन्तु पृथ्वी पर स्पर्श करते ही उसमें मृतिका युक्त होकर मलीन हो जाता है। ऐसा ही पिता का पवित्र वीर्य ब्रह्म, निर्मल होते हुए भी, माता के गर्भ में पतन होते ही माता की रज (मृतिका) वीर्य सेसंयुक्त हो जाती है। "*विधि प्रपंच गुण अवगुण साना*" माटी में जल की तरह सन जाता है और मलीन हो जाता है। पहले ब्रह्म अवस्था (वीर्य) में इसका गुण था अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, वैराग्य, परन्तु जब माया (माता की रज) इसके साथ युक्त हो गई, इसका पूर्व गुण विकृत होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर, रूप हो गया। "*को न कुसंगति पाई नशाई*" माया रूपी कुसंगत में पड़कर ब्रह्म ने जीव गुण को धारण कर लिया। "*संसर्गजा दोष गुणाभवन्ति*"।

भैय्या बालक वृन्द! सत्संग करो हाँ अब जीव में काम क्रोधादि का कारण व्यास के शब्दों में सुनिए। देह के साथ ही

बढ़े हुए अभिमान काम क्रोधादि ग्रहणकर पुनः आत्मा विनाश के हेतु कामियों के संग कामी हो जाता है।

भूतैः पंचभिरारब्धेदेहे देह्यबुधोऽसकृत्।
अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ (३।३१।३०)

पुनः उसी शरीर भरण पोषण के लिए नाना दुष्कर्म करता है जिसके कारण मोह बद्ध होकर संसार में पतन होता है और बारम्बार अज्ञात कर्मों के कारण कष्ट भोगने वाला शरीर पाता है। अर्थात् शूकर कूकर शरीर पाता है।

तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम्।
योऽनुयाति ददत्क्लेशमविद्याकर्मबंधनः ॥ (३।३०।३१)

वही कर्म करता है जिससे संसार बन्धन हो। और बारम्बार नाना प्रकार दुःख भोगकर नीच योनियों में जन्म पाता है।

यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः।
आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ (३।३१।३२)

उदर पोषण हेतु नीचों की संगति और उन्हीं की चाल चलन से यह जीव पहले के समान ही यातना शरीर में प्रवेश करके दुःख को भोगता है। *"संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति"*।

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्संगाद्याति संक्षयम् ॥ (३।३१।३३)

तेष्वशान्तेषु मूढ़ेषु खंडितात्मस्वसाधुषु ।
संगं न कुर्याच्छोच्येषु योपित्क्रीड़ामृगेषुच ।। (३।३१।३४)

जिनके संग से सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, यश, क्षमा, दम, और अपना कल्याण मार्ग नष्ट हो, ऐसे अशान्त, मूर्ख, देहाभिमानी, शोचनीय, और स्त्रियों के वशीभूत कामियों का संग नहीं करना चाहिए। फिर भी उन्हीं का साथ करता है।

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बंधश्चान्य प्रसंगतः ।
योपित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसंगतः ।। (३।३१।३५)

दूसरे किसी के संग में ऐसी दुर्बुद्धि नहीं होती, जैसी स्त्री तथा स्त्रीगामियों के संग से होती है।

प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्पितः ।
रोहिद्भूतां सोऽन्वधावदृक्ष रूपी हतत्रपः ।। (३।३१।३६)

ब्रह्मा, निज कन्या के रूप को देखकर मुग्ध हो गए। मृगी रूप धारिणी उस कन्या के पीछे मृग रूप होकर दौड़े।

तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु को न्वखंडितधीः पुमान् ।
ऋषिनारायणमृते योपिन्मय्येह मायया ।। (३।३१।३७)

एक मात्र भगवान् नारायण के अतिरिक्त और कवन है जो स्त्री की माया से मोहित न हो—*मृग नयनी के नयनशर को अस लाग न जाहि*"। एवं "*नारि विश्व माया प्रबल*" संसार में स्त्री की माया बहुत भारी है।

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ।
या करोति पदाक्रांतान् भ्रू विजृम्भेण केवलम् ।। (३।३१।३८)

भगवान् की माया के प्रभाव को देखो, वह बड़े-बड़े ब्रह्मचर्य-धारी वीरों को केवल अपने नेत्र के कटाक्ष से ही क्षण मात्र में पराजित करती है ।

छोटी मोटी कामिनी, सबही विष की बेल ।
शत्रू मारै अस्त्र से, ये मारें हँस खेल ।।

संसार में प्राणी मात्र के संग में विचरण करने वाली भगवान् की स्त्री रूपी माया बड़ी प्रबल है ।

सँगं न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति यानिरयद्वारमस्य(३।३१।३९)

जो जीव भक्ति योग ज्ञान योग अथवा कर्म योग से उत्तीर्ण होना चाहे तो स्त्रीं संग न करे । भगवान् की सेवा में जिन्होंने आत्म-स्वरूप का लाभ लिया है उसके लिए योगीजन स्त्री को संसार सागर में पतन होने का द्वार वा नरक का द्वार कहते हैं ।

योपयाति शनैर्माया योषिदेव विनिर्मिता ।
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम् ।। (३।३१।४०)

देव निर्मित यह स्त्री रूपी माया हाव भाव प्रेम से सेवा इत्यादि के निमित्त से धीरे-धीरे पुरुष के पास आती है । घास से ढके हुए कूप के समान इस माया रूपी स्त्री को अपनी मृत्यु के समान जानना चाहिये । अर्थात् स्त्री अपने वस्त्र के नीचे ढके हुए भग रूपी भवकूप

को छिपाए रहती है। प्राणी को वश करके उस भवकूप रूपी भगकूप (गर्भ स्थान) में आत्म सात करती है। फिर तो जीव ऊपर कही हुई गर्भ यातना को ही भोगता है।

यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम्।
स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम् ॥(३।३१।४१)

अन्तकाल में पुरुष स्त्री के ध्यान से ही स्वयं स्त्री होकर जन्म पाता है। स्त्री जो धन, पुत्र, घर, देने वाले को पति समझती है वह पुरुष के समान आचरण करने वाली माया ही स्त्री रूप में मिली है। जो सदा स्त्री में आसक्त रहते हैं। वही मृत्यु के बाद स्त्री होते हैं।

तामात्मनो विजानीयात्पत्यपत्यगृहात्मकम्।
दैवोप सादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥ (३।३१।४२)

उसको पति पुत्र गृह रूप दैव से प्राप्त अपनी मृत्यु ही समझना चाहिए, जैसे व्याध का गायन हरिण के लिए मृत्यु रूप ही होता है।

देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्।
भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान् ॥ (३।३१।४३)

जीव रूपान्तर होकर एक लोक से दूसरे लोक में जाता है और अपने किए हुए कर्मों को भोगता है। फिर भी निरन्तर वही कर्म करता रहता है।

जीवो ह्यस्यानुगो देहो भूतेन्द्रिय मनोमयः।
तन्निरोधोऽस्य मरणमाविर्भावस्तु सम्भवः ॥ (३।३१।४४)

आत्माऽनुवर्त्ती देह ही, भूत इन्द्रिय मनोमय भोग की देह सर्व

प्रकार असमर्थ हो जाती है तब वही जीव का मरण कहाता है। पुनः आविर्भाव, वही जन्म कहाता है।

द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षायोग्यता यदा।
तत्पंचत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम् ॥ (३।३१।४५)

द्रव्योपलब्धि का जो स्थान है वह जब रूपादि में लीन हो जाता है तभी चक्षुरादि इन्द्रिय भी लीन हो जाती हैं स्थूल देह विकल होने से लिङ्ग देह भी असमर्थ हो जाती है वही जीवका मरण है।

यथाक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा।
तदैव चक्षुषो द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यतानयोः ॥ (३।३१।४६)

जीव का वस्तुतः जन्म मरण नहीं होता जन्म मरण का भय, न दीनता, जीव के लिए संयम ही करना चाहिए। धीर पुरुष जीव की गति जानकर संग रहित होकर संसार में विचरण करते हैं।

तस्मान्नकार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः।
बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्त संगश्चरेदिह ॥ (३।३१।४७)

ज्ञान वैराग्य युक्त यथार्थ में दर्शन बुद्धि से इस माया मय संसार में देहाशक्ति छोड़कर विचरता है।

सम्यक् दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया।
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम् ॥ (३।३१।४८)

किसी कार्य का भय नहीं न किसी प्रकार की कार्पण्यता ही करते हैं,

जीव की गति जानकर शुक सनकादिक की तरह संग रहित होकर संसार में सुख से विचरते हैं।

भैय्या प्राणी वृन्द ! इस प्रकार यह जीव अपने किए हुए कर्म को भोगते हुए काल की प्रेरणा से सदा सर्वदा अनादि काल से माया के आधीन शाशित होते हुए दंड भोगते हुए शूकर, पशु, पक्षी, मसा, मच्छर, कीट, पतंग तथा पितृ आदि लोकों में कभी इन्द्रादि लोकों में भ्रमण कर रहा है। इस दुःख सागर से पार जाने के लिये एक मात्र भगवान् के चरण ही नौका हैं और उनकी शरणागति ही उपाय है, और भगवान् की भक्ति ही आधार है एवं प्रभु का नाम ही सहायक वा रक्षक है।

जगज्जैत्रेक मंत्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्,
भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा, संसृतिमूल अविद्या नाशा।
यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्॥

भैय्या प्राणी ! वही भगवान् के नाम बल से भक्ति महारानी का आश्रय लेकर प्रभु के चरण कमलों की शरण लीजिए *"राम भजे हित होय तुम्हारा"*।

भैय्या प्राणियों, यह तो श्रीमद्भागवत की आज्ञा और जीव की ताड़ना दुःख को सुने, इसको पढ़ो समझो और करो, अब आगे देखिये, अध्यात्मरामायण का एक दृष्टान्त कह रहा हूँ। जो किष्किन्धा कांड में पक्षिराज संपाती के प्रति चन्द्रमा नामक मुनि कहे हैं।

वानरों ने पूँछा संपाती तुम्हारे पक्ष क्यों नष्ट हुए हैं तो संपाती ने अपना वृत्तान्त कहा और कहा कि चन्द्रमा नामक मुनि द्वारा हमें ज्ञान का उपदेश मिलने से हमारा देहाभिमान नष्ट हो गया, चन्द्रमा नामक मुनि क्या कहे सो सुनो।

शृणु वत्स वचो मेऽद्य, श्रुत्वा कुरु यथेप्सितम्।
देहमूलमिदं दुःखं, देहः कर्मसमुद्भवः ॥१२॥

हे वत्स! अभी मेरी बात सुनो फिर तुमको जो इच्छा हो सो करना, हे संपाती! दुःख की जड़ है देह, और देह की उत्पत्ति कर्म से होती है॥ १२ ॥ कर्म पुरुष की अहंकार बुद्धि से होता है और अहंकार अज्ञान से होता है॥ १३ ॥ सो अहंकार तपाए हुए लोहे के गोले की तरह सदा चिदाभास युक्त रहता है। अर्थात् लोहा में अग्नि नहीं है परन्तु अग्नि में तपे होने के कारण अग्नि के समान ही दीखता है। ऐसे ही अहंकार एवं देह से ऐसा सम्बन्ध है कि भिन्न होकर भी अभिन्न है। "*जीव धर्म अहमिति अभिमाना*" एक गुण धारण कर लिया है इसी से देह भी चैतन्य सी दीखती है॥ १४॥

इस चेतन आत्मा को अहंकार से, मैं देह हूँ, ऐसी बुद्धि होती है और उसी बुद्धि के कारण संसार होता है। वही नाना प्रकार सुख दुःख उत्पन्न करता है॥ १५॥ आत्मा तो सदा निर्विकार है परन्तु सदा मिलना और पृथक् रहना ऐसा मिथ्या सम्बन्ध होने से मैं देह हूँ, मैं कर्त्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है॥ १६॥

इसलिए जीव जो नित्य पुण्य तथा पाप कर्मों को करता है उन कर्मों के फल से जो सुख दुःखादि फल होते हैं, उसमें परवश

होकर बन्धन युक्त होता है और नीचे ऊँचे भ्रमण करता है। अर्थात् अच्छा कर्म किया तो स्वर्ग में गया, बुरा कर्म करने से अधोगति (नीच योनि) शूकर, कूकर की गति मिलती है ॥ १७ ॥ यह जीव ऐसा विचार करता है कि मैंने बहुत पुण्य यज्ञ, दान किये हैं इसलिए मैं स्वर्ग में जाकर स्वर्ग के सुख को अवश्य भोगूँगा ॥ १८ ॥

परन्तु जीवात्मा को अपनी मिथ्या बुद्धि से स्वर्ग में अनेक काल सुख भोगकर फिर 'क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोकं विशन्ति' पुण्य शेष होने पर इच्छा न होने-पर भी नीचे गिरा दिया जाता है ॥ १६ ॥ पुनः सूक्ष्म शरीर से जीव चन्द्रलोक में आता है वहाँ से चन्द्रमा की किरणों के द्वारा कोहरे (ओस) में आता है। ओस रूप में पृथिवी पर गिरकर अन्नादि में आता है। ओस अन्न में बहुत काल रहकर ॥ २० ॥ पुनः अन्न का चव्य, चोष्य, लेह्य, पेय चार प्रकार का भोजन बनता है उसे पुरुष भोजन करता है। जिससे वीर्य होता है, फिर ऋतुकाल में स्त्री के संग रति करने से वही वीर्य लिंग के मार्ग से स्त्री की योनि द्वारा गर्भस्थान में पड़ता है ॥ २१ ॥

योनिरक्तेन संयुक्तं जरायुपरिवेष्टितम्।
दिनेनैकेन कललं भूत्वा रूढ़तमम्प्लुयात् ॥२२॥

पुनः स्त्री की योनि के रुधिर से मिलकर जेर में (रज) लिपटता है। प्रथम दिन एकत्र मिश्रित होकर कुछ दृढ़ हो जाता है ॥ २२ ॥ पाँच रात्रि में बुद्बुदाकार (अंडा) सात रात्रि में माँस का पिंड सा हो जाता है ॥ २३ ॥ पुनः पन्द्रह दिन में कुछ बड़ा सा पिंड बनकर रक्त से भर जाता है। पच्चीस रात्रि में उसमें एक अंकुर-सा उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥ एक महीना में क्रम क्रम से गर्दन, शिर, कन्धा, पीठ

की रीढ और पेट ये पाँच अंग बनते हैं ॥ २५ ॥ दूसरे महीने में हाथ, पाँव, पशली, कमर और घोंटू, बनते हैं ॥ २६ ॥ तीसरे महीने में क्रम से सब अंगों के जोड़ और अँगुलियाँ बनती हैं ॥ २७ ॥ चौथे मास में मसूढ़े, नख और मूत्र स्थान बनते हैं ॥ २८ ॥ छठे मास में कान, गुदा, मूत्र स्थान, नाभि, बनकर इनमें छिद्र बन जाते हैं ॥ २९ ॥ सातवें मास में रोम और शिर के बाल होते हैं। आठवें मास में सब अंग पृथक् पृथक् बन जाते हैं ॥ ३० ॥

इस प्रकार जीव स्त्री के गर्भ में बढ़ता है और नवमें मास में जीव को सब इन्द्रियों का ज्ञान हो जाता है ॥ ३१ ॥ गर्भस्थ जीव की नाभी से युक्त नाल में रबड़ की नली की तरह एक बारीक छिद्र होता है उसके द्वारा माता के खाए हुए रस से वह गर्भस्थ जीव का पिण्ड पुष्ट होता है, कर्म परवश मरता नहीं है ॥ ३२ ॥

स्मृत्या सर्वाणि जन्मानि पूर्व कर्माणि सर्वशः।
जठरा जलतप्तोऽयमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

नवमें मास में जब जीव को ज्ञान होता है तो अनेक जन्मों का और अपने दुष्कर्मों का स्मरण करता है ॥ ३३ ॥ मैंने पूर्व में हजारों लक्षों योनियों में जन्म लेकर करोड़ों स्त्री पुत्रादि के मोह सम्बन्ध का और करोड़ों पशु और बान्धवों का अनुभव किया॥३४॥ "*कबहुँ न मिल भर उदर अहारा*" नाना उपाय करके और नाना न्याय अन्याय से धन उपार्जन करके कुटुम्बियों का भरण पोषण किया परन्तु मैं अभागा भगवान् का नाम तो कभी स्वप्न में भी नहीं स्मरण किया ॥ ३५ ॥

इदानीं तत्फलं भुंजे गर्भ दुःखं महत्तरम्।
अशाश्वते शाश्वतवद् देहे तृष्णासमन्वितः॥ ३६ ॥

यह बड़ा भारी गर्भ का दुःख उन्हीं कर्मों का फल है, जो अभी मैं भोग रहा हूँ और अनित्य देह में नित्य के समान तृष्णा कर रहा हूँ ॥ ३६ ॥ मैंने कुकृत्य तो बहुत किए परन्तु अपने कल्याण के हेतु कर्त्तव्य कुछ भी नहीं किये, इसी से कर्माधीन नाना प्रकार के दुःख भोग रहा हूँ ॥ ३७ ॥

सो परत्र दुःख पावै शिर धुनि धुनि पछिताइ

यह नरक कुण्ड गर्भ से मेरी कब मुक्ति होगी, अब यदि किसी प्रकार यह गर्भयातना से उत्तीर्ण होऊँ तो मैं नित्य सर्वदा भगवान् का ही पूजन स्मरण भजन करूँगा अन्यान्य संसारी स्त्री पुत्रादि विषय से कुछ सम्बन्ध नहीं करूँगा ॥ ३८ ॥ इत्यादि विचार करते हुए योनियंत्र से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःख से दशवें मास में प्रसव वायु इसको ठेलकर ऐसे निकालती है जैसे नरककुण्ड में डूबा हुआ पापी निकाला जाता है ॥ ३९ ॥

पूति व्रणान्निपतितः कृमिरेष इवापरः ।
ततो बाल्यादिदुःखानि सर्व एवं विभुंजते ।४०॥

जैसे पीव से भरे हुए व्रण (फोड़ा) से कृमि निकलते हों, ऐसे ही गर्भ से जीव निकलता है । पुनः गर्भ यातना के पश्चात् बाल यातना को भोगता है ॥ ४० ॥

त्वया चैवानुभूतानि सर्वत्र विदितानिच ।

यह सब तुम्हारा भोगा हुआ है और सब मालूम है इसलिए और आगे का यौवनकाल का इतिहास कहना आवश्यक नहीं है ।

"*यौवन ज्वर केहि नहि बलकावा*" अर्थात् यौवन काल का अहंकार ही प्राणी को नाना पाप कर्म में प्रवृत्त करता है।

भैय्या प्राणी वृन्द ! यह "*पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्*" (गर्भ यातना) से कैसे उत्तीर्ण होगा, देखिए बाली नामक बानर श्रीरामजी के द्वारा मारे जाने के बाद तारा को पति स्नेह से क्रन्दन करते हुए देखकर भगवान् श्रीरामचन्द्र "*दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया*" जब देहाभिमान नष्ट होकर आत्मज्ञान हो गया तो पति के मोह को त्याग दिया और "*लीन्हेसि परम भक्ति वर माँगी*" जिस भक्ति के प्रभाव से अनादि काल से बँधा जीव संसार सागर से उत्तीर्ण होता है।

भैय्या प्राणी ! यह सब संसार स्वार्थी कुटुम्बियों की आशा भरोसा त्यागकर जीव के लिए परम कल्याण कारिणी भक्ति महारागी की खोज करो। "*राम भक्ति चिन्तामणि चारू*" भैय्या प्राणियों—

चतुर शिरोमणि ते जगमाहीं, जे मणि लागि सुयतन कराहीं ॥

वे ही चतुर शिरोमणि हैं जो राम भक्ति रूपी मणि प्राप्त करने का उपाय कर रहे हैं। देखिए तारा के प्रति श्रीरामजी ने श्रीमुख से क्या उपदेश किया है सुनो।

श्रीराम उवाच–

अहङ्कारादि सम्बन्धो यावद्देहेन्द्रियैः सह ।
संसारस्तावदेव स्यादात्मनस्त्वविवेकिनः ॥१८॥

हे तारा ! यह संसार जो अहंकार अज्ञान से होता है झूठा है, परन्तु यह अपने आप नहीं छूटता, जैसे सोते समय नाना प्रकार

स्वप्न होते हैं। जब तक जीव सोया है तब तक वे स्वप्न सत्य ही दीखते हैं और जाग जाने से मिथ्या हो जाते हैं।

इसी प्रकार अज्ञान अवस्था में यह पुत्र धन, पति, पत्नी आदि सभी सत्य प्रतीत होते हैं परन्तु संसार नश्वर है '*ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*' ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है यह ज्ञान हो जाने से सर्व मिथ्या हो जाता है। अनादि काल से अविद्या के कारण और उसके कार्य अहंकार से यह संसार झूठा होने से भी राग द्वेष आदि को उत्पन्न करता है ॥ २० ॥ मन ही संसार है और मन ही बन्धन का कारण है। यह जीव का मन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जीव और मन दोनों मिलकर सुख दुःखादि को भोगते हैं॥ २१ ॥ जैसे स्फटिक मणि निर्मल और श्वेत होती है उसमें वस्तुतः कोई रंग नहीं है परन्तु लाखादि कोई रंगीन वस्तु पास रहने से उसकी छाया पड़ने से वह मणि में वही रंग दीखने लगता है॥ २२ ॥ ऐसे ही बुद्धि और इन्द्रिय आदि का सम्बन्ध होने से आत्मा भी तदाकार हो जाता है और संसारी प्रतीत होता है। मन जड़ है उसमें बिना आत्मा के ज्ञान नहीं होता, इसी से आत्मा मन ग्रहण करके अज्ञानी हो गया है और मन के साथ मन से मनन किये हुई विषयों को भोगता है इसी से राग द्वेषादि मन के गुणों से बन्धन होकर पराधीन होता है और संसार में लिप्त होता है। फिर नाना प्रकार सत् असत कर्मों को रचता है और उसमें बन्धन होता है॥ २३-२४ ॥ उन कर्मों के तीन भेद हैं एक शुक्ल अर्थात् अहिंसा, जप, ध्यानादि, दूसरा रक्त, अर्थात् हिंसा युक्त यज्ञादि। तीसरा कृष्ण, अर्थात् पाप कर्मादि, इन्हीं कर्मों के वशीभूत जीव अनादिकाल से अनन्त काल तक नीचे ऊपर प्रलय काल पर्यन्त भ्रमण किया करता है॥ २५ ॥ प्रलय काल में जीव वासना और

नाना कर्मों सहित अन्तःकरण आदि में मिलकर अनादि अविद्या में लीन हो जाता है ॥ २६ ॥

पुनः सृष्टि काल में जीव पूर्व वासना के अनुसार ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार जीव घटी यन्त्र (रहट) की तरह घूमता रहता है। *"फिरत सदा माया के प्रेरे"* ॥ २७ ॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! इस प्रकार अनादि का बँधा हुआ जीव, यदि किसी प्रकार दैव योग (घुणाक्षर न्याय) से अथवा यवन को हराम कहने की तरह, किम्वा अजामिल को पुत्र स्नेह से नारायण को बोलाने की तरह पूर्व सुकृत पुण्य उदय हो क्योंकि—

पुण्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सत संगति संसृति कर अंता॥

अति शान्त, सरल स्वभाव भगवान् के भक्तों सन्तों की संगति हो। तब जीव को भगवान् के ऐश्वर्य सहित उदार गुणों को जानने की बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ २८ ॥ और मेरी कथा सुनने में श्रद्धा होती है जो संसारासक्त प्राणी को अति दुर्लभ है। फिर तो अनायास ही भगवान् के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है ॥ २६ ॥ फिर गुरु की शरण लेकर गुरु की कृपा से अपने आत्मतत्त्व का शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है और अनुभव होने लगता है। फिर उससे देह, इन्द्रिय मन और अहंकार, इनसे भिन्न सत्य आनन्द और रागद्वेष रति, द्वैत रहित, आत्मा को जानकर शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥ ३०।३१ ॥ इस तरह जो प्राणी भगवान् के कहे हुए मार्ग को सदा सर्वदा विचारता रहेगा वह प्राणी संसारी दुख में कभी भी व्याप्त नहीं होगा ॥ ३२ ॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! देखो भगवान् के कहे हुए ज्ञान को तुम भी निर्मल बुद्धि से विचार करके उसी मार्गसे चलो,संसार दुःख से मुक्त हो

जावोगे। कर्म बन्धन से छूट जावोगे। हम सबका भी पूर्व का बड़ा भाग्य है जो पुण्य क्षेत्र भारत वर्ष, काशी, अयोध्या, प्रयाग सन्निकट-वर्त्ती देशों में जन्म मिला है। जहाँ बड़े-बड़े महान्-महान् सन्तों के समुदाय सदा सर्वदा विराजमान रहते हैं, उनका सतसंग करके हम सबके जीवन का कल्याण निश्चय होगा। *"सत संगति दुर्लभ संसारा"* सो हमको सदा सुलभ है। इतना सुपास होने पर भी यदि अपना कल्याण नहीं करोगे तो *"सो परत्र दुःख पावै"* ऊपर कहा हुआ वही गर्भयातना का दुःख सामने आ रहा है *"शिर धुनि धुनि पछिताई"* फिर तो शिर पीट-पीट कर रोना और पश्चात्ताप के सिवाय कोई कर्त्तव्य न रहेगा।

भैय्या प्राणी गण! भगवान् तुम्हें क्या बता रहे हैं।

श्रवणादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मनमाहीं॥

दृढ़तापूर्वक भगवान् की बताई हुई नवधा भक्ति से भगवान् की सेवा और मन बुद्धि लगाकर भगवान् की कथा सुनने से तुम भी भगवान् के भक्त बन जाओगे तो तुम्हारे जन्मान्तरों के किए हुए सब पापों को भगवान् नाश कर देंगे। और भी भगवान् कहते हैं।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज!।
साधुभिर्ग्रस्त हृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः॥

हे भक्तजन! मैं सदा स्वतन्त्र होने पर भी भक्ताधीन रहता हूँ। मैं साधु संत भक्तों को छोड़कर कुछ नहीं चाहता हूँ।

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान्वित्तमिमंपरम्।
हित्वा मां शरणां याताः कथं तांस्त्यक्त मुत्सहे॥

जो बड़भागी जन, स्त्री, धन, पुत्र, प्राण तक मेरे लिये अर्पण करके मेरी शरण हो गए हैं मैं उनको कैसे त्याग सकता हूँ। वा उनसे कैसे अलग रह सकता हूँ।

तेहि ते तुम मोहि अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे

भक्तवर्य ! यदि आप मेरे हित के लिए अपना गृह कुटुम्ब सब सांसारिक सुखों को तिलांजलि दे दिए तो मैं भी यह सत्य कहता हूँ।

अनुज राज सम्पति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही।
सब मम प्रिय नहिं तुमहि समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना॥

भैय्या भक्त वर्य ! मैं भी–"*दारागारपुत्राप्तान् प्राणान्*" सर्वस्व तुम्हारे ही लिए अर्पण किया हूँ। "*जन कहँ नहिं अदेय कछु मोरे*" ऐसा कोई पदार्थ हमारा नहीं जो तुम्हें अप्राप्य हो। हमारा सर्वस्व भक्तों का ही है।

भैय्या प्राणी वृन्द ! प्रभु की यह उदारता को जानते हुए भी–

उमा राम स्वभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

प्रभु की इस प्रकार उदारता दयालुता को जानते बूझते हुए भी जो प्राणी निष्ठुर हृदय हतभागी, अपने जीवन को प्रभु के चरणों में बलिदान नहीं कर देते हैं। "*कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती*" है और–

जिन हरि भक्ति हृदय नहिं आनी। जीवत शव समान ते प्राणी॥

वह जीते हुए भी मरे के समान है, जो प्रभु की भक्ति महाराणी को अपने हृदय कमल में स्थान न दिये है, अर्थात् प्रभु के चरण कमलों से विमुख, भक्तिहीन है। "*भवकूप अगाध परे नर ते*"

वही अगाध भवकूप माता की योनि यन्त्र गर्भ यातना में डाले जायँगे और गर्भ यातना के दुःख को भोगते हैं नाना शूकर कूकर आदि योनि का दुःख पाते हैं।

भैय्या प्राणी गण ! प्रभु हमारे क्या सुपास न किये हैं, हमको वारम्वार आदेश कर रहे हैं कि जीव गण ! हमारी भक्ति करो, हमारी पूजा करो, सेवा करो, हमसे प्रेम करो—

कहहु भक्ति पथ कौन प्रायासा। योग न मख जप तप उपवासा॥

केवल *"सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई"*

स्वभाव सरल, मन की कुटिलता दूर कर दो और जिस समय जो प्राप्त हो उसी में सन्तोष रखो। वस—

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा॥

सज्जनों का संग करो, उनसे प्रेम करो, विषय और स्वर्ग वैकुण्ठादि तृण के समान समझो,हमारे भक्तों के लिए स्वर्ग वैकुण्ठादि तृण के समान हैं। इस प्रकार भगवान् कह रहे हैं।

भैय्या प्राणी वृन्द ! परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजी माता कौशल्या को भक्ति का उपदेश दे रहे हैं। अध्यात्म रामायणे, उत्तर कांडे सर्ग ७ श्लोक ५५, माता प्रश्न करती हैं श्रीरामजी उत्तर देते हैं सो मन लगाकर सुनो-

परमात्मा परानन्दः पूर्णः पुरुष ईश्वरः।
जातोऽसि मे गर्भगृहे मम पुण्यातिरेकतः॥५५॥

भैय्या रामभद्र ! तुम सबके अन्तर्यामी परमानन्द स्वरूप पूर्ण पुरुष ईश्वर हो, मेरे बड़े पुण्य के प्रताप से, मेरे गर्भ से अवतीर्ण हुए

हो ॥ ५५ ॥ हे राम ! आज वृद्धावस्था में मुझे तुमसे कुछ प्रश्न करने का अवसर मिला है । अभी तक संसार बन्धनरूपी मेरा अज्ञान दूर नहीं हुआ है ॥ ५६ ॥ भैय्या ! अब आप मुझे संक्षेप से ऐसा उपदेश दें, जिससे मैं भी संसार बन्धन से छूट जाऊँ ॥ ५७ ॥

श्रीराम उवाच-

मार्गास्त्रयो मया प्रोक्ताः,पुरा मोक्षाप्तिसाधकाः।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च शाश्वतः॥५८॥

हे माता, मैंने पहले ही कर्मयोग ज्ञानयोग, और भक्तियोग, यह तीन मार्ग मोक्ष प्राप्ति के साधन वर्णन किये हैं ॥५६॥ परन्तु भक्ति भिन्न-भिन्न तीन गुण होने से तीन प्रकार की है । जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी वैसे ही भक्ति भी होती है ॥ ६० ॥ जो प्राणी हिंसा, दंभ, धनादि अहंकारी, परसंतापी, शत्रु मित्रादि गण युक्त, क्रोधी है । इस प्रकार गुणों से युक्त जो भक्ति करते हैं वे तामसी भक्त हैं ॥ ६१ ॥ जो जन स्वर्ग राज्यादि वा इन्द्रिय विलासिता अथवा धनादि यश, इत्यादि कामना से भक्ति करते हैं । वह राजसी भक्ति है, और जो पुरुष स्वभाव से ही भगवान् की भक्ति करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, और जो कुछ कर्म भजन, पूजा, पाठ, होम, यज्ञ, तर्पण दानादि करते हैं, दास्य भाव से हमारी सेवा करते हैं इन गुणों से युक्त प्राणी सात्विक भक्त हैं ॥ ६३ ॥

मद्गुणाश्रवणादेव मैय्यनन्तगुणालये ।
अविच्छिन्ना मनोवृत्तिर्यथा गंगाम्बुनोऽम्बुधौ॥६४॥
तदेव भक्तियोगस्य लक्षणं निर्गुणस्य हि ॥

हे माता ! मेरे गुणादि लीलाओं को सुनकर और मुझे अनन्त गुण समूह जानकर जीव की मनवृत्ति मुझमें ऐसी लगती है जैसे नदियों का प्रवाह समुद्र में गति करता है अर्थात् उसका मन हमारे गुणों के सहारे मेरे में पहुँच जाता है। यही भक्ति योग का प्रथम लक्षण है। फिर तो—

अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिर्मयि जायते ॥६५॥
सा मे सालोक्यसामीप्यसार्ष्टिसायुज्यमेव वा ।
ददात्यपि न गृह्णन्ति भक्ता ममसेवनं विना ॥६६॥
स एवात्यन्तिको योगो भक्ति मार्गस्य भामिनी।

वह प्राणी किसी प्रकार फल की कामना न करके उसको मेरी अहैतुकी अर्थात् निष्काम भक्ति मिल जाती है। वह भक्ति प्राणियों को सामीप्य, सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य, चार फल को देने वाली है परन्तु हमारे परम भक्त हमारी सेवा बिना वह मुक्ति देने से भी ग्रहण नहीं करते, फिर तो वे—

मम नाम सदाग्राही ममसेवा प्रियः सदा ।
भक्तिस्तस्मै प्रदास्यामि नतु मुक्ति कदाचन॥

नाम को सदा जपा करते हैं और मेरी सेवा में ही सदा प्रियत्व मानते हैं। ऐसे प्रिय भक्तों को मैं अपनी परा भक्ति ही देता हूँ मुक्ति कभी नहीं देता। "*सगुण उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कह राम भक्ति निज देहीं*"॥ यथा—

बहुत कीन्ह प्रभु लखण सिय, नहिं कछु केवट लेइ॥
बिदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति बिमल वर देइ॥

सेवा करने वाले प्रेमी भक्त अपने को सदा बड़भागी समझते हैं। यथा—

हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी॥

इसलिए वे भक्त हमारे परम प्यारे होते हैं जो हमारी भक्ति सहित अर्थात् प्रेम पूर्वक सदा सेवा करते हैं। इन्हीं गुणों के योग से अथवा भक्ति के योग से प्राणी तीनों गुणों के अतिरिक्त मेरे भाव को प्राप्त होता है॥ ६६-६७॥ अब "*भक्ति के साधन कहौं बखानी। सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्राणी*" जैसे कहा गया है।

प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीती। निज निज धर्म निरत श्रुति रीती॥

अर्थात् भक्ति योग से जीव तीनों गुणो को पार होकर मेरा भावुक होता है यथा अपने जातित्व धर्म को पालन करने से, उत्तम कर्म योग से, मेरी सगुण मूर्ति के दर्शन से, स्तुति आदि षोडशोपचार पूजा से, मेरे स्मरण और प्रणाम से, सब प्राणियों में मेरी भावना से, मेरे भक्तों के सतसंग से, असत्य वस्तु के त्याग से, महात्मा पुरुषों के सन्मान से, दीनों पर दया करने से॥ ६९॥ अपने समान प्राणियों में मित्रता करने से, यम नियम का सेवन करने से वेदान्त-वाक्यों का श्रवण करने से, मेरे नामों का कीर्त्तन करने से, संतों के सतसंग से, कोमल स्वभाव से, अहंकार के त्याग से, हमारे भगवत् धर्मों में इच्छा रखने से, इत्यादि। "*षट्दम शील विरति बहु कर्मा*" करके शुद्ध अंतःकरण काम क्रोधादि रहित "*निर्मल मन जन सो मोहि पावा*" मेरे गुणों को सुनकर तत्काल ही प्राणी मुझे किस प्रकार पाता है। जैसे वायु के वेग से सुगंध आप ही आकर नाक में प्रवेश

कर जाती है। वैसे ही मैं अपने भक्तों को आप ही आकर मिल जाता हूँ ॥ ७०-७१-७२ ॥

यथा वायुवशाद्गन्धः स्वाश्रयाद्घ्राणमाविशेत्।
योगाभ्यासरतं चित्तमेवमात्मानमाविशेत् ॥७३॥

ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि योगाभ्यास में लगा हुआ चित्त आत्माकार हो जाता है, और सब प्राणियों में मैं ही आत्मरूप से व्यवस्थित हूँ, ऐसा विचार कर '*सियाराम मय सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि जुग बानी*" ॥ और "*सबहिं मानप्रद आपु अमानी*" होते हैं वही भक्त हमको प्राण के समान प्यारे होते हैं।

सर्वेषु प्राणिजातेषु ह्यहमात्मा व्यवस्थितः।
तमज्ञात्वा विमूढात्मा कुरुते केवलं बहिः ॥७४॥

देहाभिमानी, मूढ़ात्मा, प्राणियों में द्वेष रहते हुए जो नाना उपचारों से पूजा करते हैं, वह केवल बाहर देखौवा, एवं विडम्बना मात्र है। उससे मैं संतुष्ट नहीं होता ॥ ७४ ॥ जो प्राणीमात्र का अपमान करते हुए मेरी पूजा करता है, वह पूजा न करने के समान है ॥ ७५ ॥ जब तक सब प्राणियों को अपने समान मुझे नहीं देखता तब तक अपने अपने वर्णाश्रम में रहकर मेरा वा मेरी प्रतिमा आदि की पूजा करे, जब सब प्रकार ज्ञान दृढ़ हो जाय और सब प्राणियों में मेरा भावना हो तब विरक्ताश्रम में आकर सब प्राणियों को मेरा ही स्वरूप जानकर मेरी पूजा करें ॥ ७६ ॥

क्रियोत्पन्नैर्नैकभेदैर्द्रव्यैर्मे नाम्ब तोषणम् ॥
यस्तु भेदं प्रकुरुते स्वात्मनश्च परस्य च।
भिन्नदृष्टेर्भयं मृत्युस्तस्य कुर्यान्न संशयः ॥७७॥

जो प्राणी अपने आत्मा से परमात्मा को भिन्न देखता है, ऐसे भेद दृष्टि वाले प्राणी को मैं मृत्यु रूप ही हूँ । इसमें सन्देह नहीं, "*काल रूप तिनकहँ मैं भ्राता*" भिन्न-भिन्न प्राणियों में मैं ही परमात्मा रूप से स्थित हूँ । "*जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं*" ऐसा जानकर सब प्राणियों में मित्रता और अभेद दृष्टि से सन्मान करते हुए "*सबके प्रिय सबके हितकारी*" होकर मेरी पूजा अर्चा करना चाहिए । तब पूजा सिद्ध होगी ।

चेतसैवानिशं सर्वभूतानि प्रणमेत्सुधीः ।
ज्ञात्वा मां चेतनं शुद्धं जीवरूपेण संस्थितम् ॥७९॥

और शुद्ध चैतन्य रूप से मैं ही जीव होकर सब प्राणियों में स्थित हूँ । ऐसा जानकर सब प्राणियों को सन्मान आदर और प्रणाम करना चाहिए ।

तस्मात्कदाचिन्नेक्षेत भेदमीश्वरजीवयोः ।

इसलिए जीव और ईश्वर में कभी भी भेद दृष्टि नहीं करना चाहिए । प्राणी मात्र को अपनी ही आत्मा जानें । वही हमारा परम भक्त है । आप तो हमारी माता हैं मैं आपका प्यारा पुत्र हूँ । आपने जो वात्सल्य स्नेह से हमारी सेवा की है इसलिए आप तो जीवन मुक्त हैं । श्रीराम जी इस प्रकार माता को भक्ति का उपदेश दिए ।

भैय्या बालक वृन्द ! माता कौशल्या तो जीवन मुक्त हैं ही । भगवान् भी हम सबों के कल्याण के लिए ही अति सुगम भक्ति योग का उपदेश दे रहे हैं । हम सबों का जो देहाभिमान है । मैं ब्राह्मण, कुलीन, धनवान, रूपवान, सुदेश वाला, सुजाती, ज्ञानी, विद्वान्

अच्छे वर्णवाला हूँ । इत्यादि अभिमान त्यागते हुए हम भगवान् की आज्ञानुसार प्राणीमात्र को अपना ही आत्मा समझें ।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुशासन मानै जोई ॥

सबसे प्रेम करो, श्रद्धा करो, प्राणीमात्र में ईश्वर भावना करके सबकी सेवा करो, तभी भगवान् प्रसन्न होते हैं और तभी हम सबों को भक्ति मुक्ति देते हैं ।

भैय्या बालक वृन्द ! आज तक जो कुछ भूल हुई सो हुई । "*गतं न शोचामि*" अथवा "*गतस्य शोचनं नास्ति*' वा "*गई सो गई अब राखु रही को*" अब आज से ही प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करके "*अज्ञासम न सुसाहेब सेवा*" देखिये परम समर्थ देवदेवेश महादेव भी तो यही कहे हैं । "*शिरधरि आयसु करिय तुम्हारा । परम धर्म यह नाथ हमारा*" और भी देखिये गुरु वशिष्ठजी '*बड़ वशिष्ठ सम को जगमाहीं*' वह भी भरतलाल को यही समझा रहे हैं ।

विधिहरि हर शशि रवि दिशिपाला । माया जीव कर्म अरु काला ॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई । योग सिद्धि निगमागम गाई ॥
करि विचार जिय देखहु नीके । राम रजाइ शीश सबही के ॥

ब्रह्मा से कीट पर्यन्त राजा-रंक यती-सती सभी प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके उनका भक्ति सेवा करते हैं । यदि जीव प्रभु की आज्ञा से प्रतिकूल होता है तो क्षण मात्र में ही ब्रह्मा होने पर भी मसा से हीन योनियों में डाल दिया जाता है ।

मसकहिं करहिं विरंचि प्रभु, अजहिं मसक ते हीन । अस समर्थ रघुनायकहि

सर्व समर्थ भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके सभी उनका भजन करते हैं। "*रामहिं भजहिं तात शिवधाता, नर पामर कर केतिक बाता*"। जब ब्रह्मा विष्णु महेश ही प्रभु की सेवा भजन करते हैं तो हम सब मनुष्य नीच गति वालों की क्या गणना है।

भैय्या बालक वृन्द! अब हम सब से जो भूल हुई सो हुई। "*रहत न प्रभुचित चूक किए की*" परन्तु आज ही से जितने दिन जीवन है, भगवान् के चरणों में लगाना चाहिए और क्षमा माँगना चाहिए कि हे प्रभु! "*त्राहि मां पापिनं घोरं रक्ष मां करुणाकर!*" हे करुणाकर! मैं घोर पापी आपकी शरण हूँ मेरी रक्षा करिए तो "*आरत बचन सुनत प्रभु अभय करेंगे तोहि*" तुम्हारी दीन पुकार सुनते ही प्रभु आशीर्वाद देंगे "*अभयं सर्व भूतेभ्यो*" भय कोई मत करो।

भैय्या मित्र गण! "*अति कोमल रघुबीर स्वभाऊ*" प्रभु बड़े दयालु हैं अति कोमल स्वभाव है। "*वेगि पाइहैं पीर पराई*" पर पीड़ा देखते ही द्रवीभूत हो जाते हैं। हम सबों के दुःख का क्या नहीं निवारण करेंगे। हमारे अपराधों को क्या नहीं क्षमा करेंगे, प्रभु तो बारम्बार हम सबों को कह रहे हैं।

कोटि विप्र वध लागहिं जाही। आए शरण तजौं नहिं ताही॥

तो क्या हमारे लिए अपनी प्रतिज्ञा को उल्टा देंगे। "*रामोद्विर्नाभिभाषते*" राम झूठा कभी बोलते ही नहीं। "*जो सभीत आवै शरनाई। राखउँ ताहि प्राण की नाई*" जब हम शरण होंगे तभी तो हमारी रक्षा करेंगे। हम सबों को चाहिए कि संसार के नाना विषयों

को त्यागकर प्रभु की शरण हों, और सेवा करके भगवान् को संतोष कराके अपना स्थान अपनी सेवा प्राप्त करें।

भैय्या बालक गण! हम सब जीव मात्र ही सदा एकान्तवृत्ति साकेत वैकुण्ठादि लोकों में सेवाकारी दास हैं।

हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी॥

परन्तु न जाने हम सबों का कौन सा अदृष्ट उदय हुआ, अथवा भगवान् की ही कोई ऐसी इच्छा हुई, या किस दैव संयोग से ऐसा हुआ कि जिस कारण से आज हम सब जीव, पराधीन संसार-सागर कारागार में डाले गए हैं और नाना योनियों की यातना भोगते हुए यमयातना भोग रहे हैं। अनादि काल से भगवान् से विमुख होकर चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण कर रहे हैं।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रगणों! अब प्रभु कृपा करके वही देव दुर्लभ दिव्य शरीर मनुष्य का हम सबों को दिए हैं जो "*नर तनु भव वारिधि कहँ बेरो*" संसार सागर से पार जाने को नौका रूपी है, वही आज हमको प्राप्त है। यदि अपने अज्ञानवश, यह बाजी हार जायेंगे तो भैय्या, फिर वही लख चौराशी के चक्र में पड़ना होगा। इसलिए बारम्बार हम सबों प्राणी मात्र को आदेश दिया जा रहा है। सब शास्त्र पुराण एक मत होकर कह रहे हैं। "*राम भजिय सब काम बिहाई*" यदि शास्त्र पुराणों को सत्य माना जाता है तो अपना कर्तव्य शास्त्र की आज्ञा पालन करना आवश्यक है।

जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निन्दक मंदमति आतमहन गति जाइ॥

एवं, "*सो परत्र दुख पावै*" और "*शिर धुनि-धुनि पछिताइ*"। फिर भी "*कालहिं कर्महिं ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ*"। यह कितनी बड़ी अज्ञानता है।

भैय्या ! काल का वा कर्म का अथवा ईश्वर का क्या दोष है। अपने तो आलस्य तन्द्रा, विषयविलासिता में जीवन बिताया।

बालापन हंस खेल के खाया, जवानी नींद भरि सोया।
जब बुढ़ापा आय नियरानो, काल को देखि के रोया।

अब सिवाय पश्चात्ताप के और क्या होगा बाल्यकाल में तो खेल कूद में समय बिताया। और युवाकाल में शूकर कूकर की तरह युवतियों के साथ विषय विलास में समय नष्ट किया। अब "*बूढ़ भए तनु काँपन लागे, बेटा न नाती पतोहिया*"। बेटा नाती बहू कोई बात तक नहीं बूझता, वृद्धावस्था के कारण सब इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। हाथ पाँव में कंप होने लगा। अब तो वही, "*शिर धुनि धुनि पछिताइ*" और कर ही क्या सकता है। फिर तो, '*यमपुर पन्थ शोच जिमि पापी*'।

भैय्या बालक वृन्द ! ऐसा नहीं होना चाहिए। "*अपनी करणी पार उतरणी*" कर्त्तव्य तो अपने ही को करना होगा।

तुलसी यह तनु खेत है, बीज पुण्य अरु पाप।
जो बोवै सोई लहै, क्या बेटा क्या बाप॥

बाप अपना भोगेगा, बेटा अपना कर्म भोगेगा। "*कस्य माता पिता बन्धुः*" कौन का माता, पिता, भाई, बन्धु हैं। केवल भगवान् ही सबके सर्वस्व बन्धु हैं। उन्हीं की कृपा का अवलम्ब लेकर, और

उन्हीं के चरणों की नौका के सहारे, '*यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्* '। अर्थात् वही प्रभु के चरणों की सेवा का अवलम्बन लेकर, उनके नाम बल से–

सियराम स्वरूप अगाध अनूप विलोचन मीनन को जल है।
श्रुति रामकथा मुख राम को नाम हिये पुनि रामहिं को थल है॥
मति रामहि सों गति रामहि सों रति राम सों रामहिं को बल है।
सबकी न कहै तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फल है॥

सब प्रकार से भगवान् की ही शरण लेना, जीवन का इतना ही फल है। भगवान् तो हम सबों को बारम्बार यही कह रहे हैं कि प्राणीगण!

सबकी ममता ताग बटोरी। मम पद बाँध मनहिं बँट डोरी॥

अथवा "*सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज* ' तो भैय्या! भगवान् का कौन दोष है। वा काल थोड़े ही कहता है कि कुआँ में कूद पड़ो। काल तो महाकराल कलिकाल होते हुए भी कवि लोग कह रहे हैं कि—

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विश्वास।
गाइ राम गुण गण विमल, भव तर बिनहिं प्रयास॥

कलियुग समान तो अच्छा कोई युग ही नहीं है। मनुष्य का दृढ़ विश्वास चाहिए। बिना जप, योग, तप के, बिना परिश्रम के ही, केवल भगवान् का गुणानुवाद, रामायण, गीता, भागवत ज्ञान करो अथवा वह भी नहीं, केवल राम नाम ही "*रामराम रटु रामराम जपु रामराम रमु*" उच्चस्वर से रटो, मौन होकर जपो, अन्त रामनाम में ही रम जाओ, तन्मय हो जाओ। '*रामराम जप सब विधि ही को राज रे*'

रामराम जपने से ही विधि वेदोक्त, तन्त्रोक्त एवं गीता, भागवत, रामायण का पाठ, यज्ञ, दान, तीर्थ स्नान, होम तर्पण सभी रामनाम से ही हो जायगा।

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी प्रयाग गंगाऽयुतकल्पवासः।
यज्ञाऽयुतं मेरु सुवर्ण दानं श्रीरामनाम्नो न कदापितुल्यम् ॥

यज्ञ, दान, तप, तीर्थ कुछ भी रामनाम के बराबर नहीं हो सकता, रामनाम से सभी हो जाता है।

तीरथ अमित कोटिशत पावन। नाम अखिल अघ पुंज नशावन॥

भैय्या बालक वृन्द! मित्रगणों! इतनी सुगमता कलिकाल में हमको मिली है कि "*योग न मख जप तप उपवासा*" कठिन साधन जो "*कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन*" जो कहने में कठिन, समझने में कठिन, पुनः साधन करने में कठिन, इस प्रकार कठिन साध्य योग करने का परिश्रम, यज्ञ के लिए सुमेरु गिरि के समान सुवर्ण अतुलनीय धन, जप करने की नाना प्रकार विधि, तपस्या करने को दश हजार वर्ष एक पाँव से खड़ा होना, चाद्रायण आदि व्रत करना, किम्वा किसी प्रकार का यम नियम अथवा नाना प्रकार शौचाशौच कुछ भी आवश्यक नहीं केवल "*प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू*" अतएव "*जपात् सिद्धिः*" मुख से उच्चारण करते ही सिद्ध फल प्राप्त होता है।

बारक नाम कहत नर जेऊ। होत तरण तारण जग तेऊ॥

संध्या, प्रातः, दुपहर अथवा सर्वकाल जभी इच्छा हो खाते-सोते उठते, बैठते, स्नान करके बिना स्नान किये सोए हुए, बैठे हुए, रास्ता चलते फिरते, जैसा भी हो, हर एक समय में केवल राम

नाम दो अक्षर कहते ही सब विधि, तीर्थ व्रत, योग उपवास, वेद, रामायण का पाठ यज्ञ, होम, तर्पण, सभी कुछ हो जाता है। तो भैय्या काल का क्या दोष है। और कर्म तो जो हम करेंगे वही न होगा। कर्म थोड़े ही कहता है कि पाप करो वा पुण्य करो तो कर्म का भी क्या दोष है।

भैय्या बालक गण! काल कर्म ईश्वर किसी का दोष नहीं है दोष तो है अपनी दुर्बुद्धि का "*बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा*" जो बोया है वही काटेंगे और जो दिएहैं सोई पावेंगे।'*कहुके लहे फल रसाल बबुँर बीज वपत*" कहीं कोई बबूँर बोकर आम का फल पाया है। हम बबूँर का बीज बोवेंगे वृक्ष लगावेंगे और कहेंगे हम आम तोड़ेगें, मक्का, कुलथ, बाजरी, खेत में बुवेंगे, कहेंगे धान गेहूँ काटेंगे, यह क्या कभी हो सकता है। तैसे ही हम करेंगे पाप, कहेंगे बैकुण्ठ का राज्य हमको दे दो यह क्या कभी हो सकता है। यह मनोरथ संपूर्ण मिथ्या है।

भैय्या बालक वृन्द मित्रो!

जिमि सुख चहै अकारण कोही। सब संपदा चहै शिव द्रोही ॥
लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई ॥

ऐसे ही "*हरि पद विमुख परम गति चाहा*" बिलकुल असंभव है ऐसा कभी भी नहीं हो सकता।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। विमुख राम सुख पाव न कोई ॥

चन्द्रमा से अग्नि पैदा हो सकती है परन्तु राम से विमुख जीव सुख कभी भी नहीं पा सकता। क्या हम सबों के लिए राज्य-शृंखला राज्य-शासन, राज्य-नियंत्रण, उठ जायगा। जो बड़े-बड़े कौंशिल

सेम्बरों के द्वारा राज्य नियम बना है, अर्थात् जो शिव ब्रह्मा, विष्णु, सनकादि, नारद, व्यास आदि सप्त ऋषि नौ योगीश्वरों की सर्व-सम्मति से, वेद शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, संहिता, इत्यादि जीव के कल्याण के लिए शासन सुरक्षण राजनीति बनाई गई है, वह क्या हमारे लिए उठा दी जायगी। यह अति असम्भव है।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिय राम पद पंकज नेहा॥

भैय्या! यह तो सर्व सम्मति से निश्चित है, जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा ही फल भोगेगा।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रो! तुम सब तो जानते हो कि दुनियाँ दो रंगी है। इसमें पाप है, पुण्य है। उसके ग्राहक भी पापात्मा हैं पुण्यात्मा हैं। साधु हैं, असाधु हैं। यथा—

सुख दुःख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

इत्यादि दो प्रकार की सृष्टि है। परन्तु-

गुण अवगुण जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥
खलअघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥

भला बुरा सब कोई जानता है, किन्तु जिसमें जिसकी रुचि होती है उसी को ग्रहण करता है। अतएव दुष्ट प्राणी अवगुण लेते हैं। साधुजन गुण लेते हैं। साधु असाधु की पहचान इस प्रकार है।

संत असंतन की अस करणी। जिमि कुठार चन्दन आचरणी॥

जैसे कुल्हाड़ी और चन्दन वृक्ष का आचरण होता है। अर्थात्-

काटै परशु मलय सुनु भाई। निज गुण देइ सुगंध बसाई ॥

भाइयो! देखो कुल्हाड़ी तो चन्दन को जड़ से काटती है और चन्दन कुल्हाड़ी के इस प्रकार अपने ऊपर कुठाराघात करते हुए भी अपनी सुगन्धि कुल्हाड़ी में दे देता है, क्षण मात्र वह कुल्हाड़ी भी चन्दन की सुगन्ध से सुगन्धित हो जाती है, फलतः "*ताते सुर शीशन चढ़त जगवल्लभ श्रीखंड*"। और "*अनल दाहि पीटत घनहिं, परशु वदन यह दंड*'। चन्दन जगत पूज्य होता है अतः सब देवता अपने शिर पर धारण करते हैं। अर्थात् देवताओं के मस्तक पर चन्दन चढ़ाया जाता है और कुल्हाड़ी के मुख को अग्नि में अच्छे से तपाकर लोहा के घन से पीटा जाता है यह दंड पाती है। अर्थात् बारम्बार काष्ठ काटते-काटते जब उसका मुँह मोटा हो जाता है तब लौहकार की लौहशाला में कुल्हाड़ी तपाकर घन से पीटी जाती है।

भैय्या बालक बृन्द! इसी प्रकार साधुजन दुष्टों से सताये जाते हुए भी, देवताओं से भी पूज्य होते हैं और दुष्टजन नाना प्रकार बारम्बार साधुजनों को दुःख दे देकर पापात्मा होकर यमदूतों द्वारा कुम्भीपाक आदि नरकों में तपाए जाते हैं और लोहा के बड़े-बड़े मुग्दरों से उनका मुख पीटा जाता है। यह दंड अति है। इसी प्रकार कल्पान्तरों, जन्मान्तरों पर्यन्त में यम यातना भोगते हुए बहुत काल कुंभीपाकादि नरकयातना भोगते हैं। यथा-

जो शठ गुरु सन ईर्षा करहीं। रौरव नरक कोटि युग परहीं ॥

अर्थात् शास्त्रों पुराणों में गुरु से ईर्षा द्वेष करना पाप है। यदि प्राणी गुरु से किसी कारण ईर्षा द्वेष करते हैं वह एक करोड़ युग रौरव नरक में पतन किये जायँगे। यह तो निश्चय होगा, किन्तु शिष्य कहे हमको साकेत वैकुण्ठ ही मिले तो यह कैसे होगा। शास्त्र में सर्व सम्मति से निश्चित है भगवान् के चरणों में प्रेम करो उनकी भक्ति करो, सेवा करो परन्तु हम वह कुछ नहीं करते हैं तो—

भवकूप अगाध परे नर ते। पदपंकज प्रेम न जे करते॥

वह तो निश्चय ही संसार सागर में पतन किये जायँगे। भैय्या उसी का फल है न जो हम आज इस संसार दुःख को भोग रहे हैं। फिर भी "*कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ*"। काल को कर्म को ईश्वर को झूठा दोष लगाते हैं, कर्म तो किया नरक जाने का, और इच्छा करते हैं वैकुण्ठ जाने की, ऐसा क्या कभी हो सकता है। हमारे लिए क्या राज का शासन उठ जायगा, नहीं नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता भैय्या यह भावना तुम्हारी ऐसी है। यथा-

सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनीधन शुभगति व्यभिचारी॥

लोभी यस चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी॥

यह विपरीत भावना आकाश में दूध दुहने के समान, अतएव झूठी है। तुम्हारा मनोरथ झूठा है। हम जैसा कर्म करेंगे वही फल पावेंगे यह बिलकुल सत्य है।

वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

भैय्या प्राणी वृन्द ! यह अटल सिद्धान्त है अपेल सिद्धान्त है। यह टल नहीं सकता, इसकी अवज्ञा नहीं हो सकती, जरूर मानना पड़ेगा। हाँ एक ही मार्ग है।

एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन प्रभु पद प्रेमा ॥
काल धर्म नहिं व्यापहिं ताही। रघुपति चरण प्रीति अति जाही॥

भैय्या प्राणी ! काल, कर्म, गुण, स्वभाव यदि हम प्रभु के चरणों के सेवक अनुरागी भक्त बन जायेंगे तो सब हमारे अनुकूल हो जायेंगे। देखिये लंका सारी जल गयी किन्तु *"एक विभीषण कर गृह नाही"* विभीषण के श्रीराम भक्त होने के कारण अग्निदेव उनके अनुकूल थे।

पापिन को यमराज कहावैं। धर्मिन को धर्मराज बतावैं॥

यमराज और धर्मराज एक ही व्यक्ति का नाम है परन्तु पापियों को शासन करने के लिए यमराज है, और पुण्यात्माओं को सुख देने के लिए धर्मराज है। भगवान् स्वयं कह रहे हैं कि पापियों को पाप कर्मों के फल भोगाने के लिए—

काल रूप मैं तिन कहँ ताता। शुभ अरु अशुभ कर्म फल दाता ॥

पुण्यात्माओं को सुख देने के लिए मैं ही—*"करौं सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी"*॥ माता, पिता के समान भरण पोषण करके सुख देता हूँ।

भैय्या प्राणी गण ! भगवान् बड़े दयालु हैं बड़े कोमल स्वभाव वाले हैं, बड़े उदार हैं।

"अति कोमल रघुबीर स्वभाऊ" ।"अस सुभाव कहुँ सुनौं न देखौं"॥

भैय्या ! तुम्हारे सब अपराधों को क्षमा कर देंगे। '*सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा*'' । अथवा यद्यपि मैं अनभल अपराधी हूँ।

तदपि शरण सन्मुख मोहिं देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिशेषी॥

कारण कि प्रभु अति सरल स्वभाव वाले हैं। "*शील सकुच सुठि सरल स्वभाऊ । अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा*'' ॥ भगवान् शत्रु का भी अमंगल नहीं चाहते अर्थात् पापी को, राज्यद्रोही पर भी शासन करते हैं दण्ड देते हैं तथापि उसके मंगल के ही लिए, मंगल कामना ही करते हैं। "*निर्वाण दायक क्रोध जाकर* '। जिसको क्रोध करके मार भी देते हैं तब भी उसको मुक्ति देते हैं। देखिए-

जे मृग राम बाण के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥

और भी देखिये लंका में रावण कितना बड़ा दुराचारी था, परन्तु उसकी सारी सैन्य को-'*खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। पावहिं गति यो याचत योगी*'' ॥ "*देहिं परम गति*'' क्यों '*वयर भाव मोहि सुमिरत निश्चर*' भैय्या ! ऐसे उदार प्रभु को'*सुनि न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। नर मति मंद ते परम अभागी*'' ॥ इतनी बड़ी उदारता देखते, सुनते जानते हुए भी जो मनुष्य उन प्रभु का भजन सेवा भक्ति नहीं करते हैं। वे मनुष्य बुद्धिहीन, अभागी हैं।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हें मुक्त निशाचर झारी॥

खल मल धाम काम रत रावन। गति पाई जो मुनिवर पाव न॥

भैय्या प्राणी गण ! ऐसे दीन हितकारी, दीन बन्धु, पतित उद्धारक पतित पावन जो श्रीराम हैं उनकी शरण हम न लेकर स्त्री, पुत्रादि की

शरण लिये हैं जो सदा स्वारथी हैं तो हमसे बढ़कर और कौन मन्दबुद्धि हतभागी होगा।

जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं। काहे न बिपतिजाल नर परहीं॥

भैय्या! ऐसे उदार प्रभु को जानते हुए भी यदि उनसे विमुख है तो क्यों नहीं संसार सागर में नाना आपत्ति विपत्ति भोगेगा क्यों नहीं दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से तपाया जायगा, अवश्य संसार दुःख भोगना हम सबों को योग्य ही है।

भैय्या प्राणी गण! हम जीव मात्र ही सदा भगवान् के आज्ञाकारी सेवक हैं, अंग-अंगी के समान सेवाकारी हैं। यथा-"*सेवक कर पद नयन सों*"। हम और प्रभु एक आत्मा हैं, एक वस्तु हैं, अन्तर इतना ही है कि अल्पज्ञ और सर्वज्ञ अणु और समूह बस जीव अणु है भगवान् समूह हैं, जीव अल्पज्ञ है, भगवान सर्वज्ञ हैं, तो अल्पज्ञ ही सर्वज्ञ का सेवक होता है और अणु ही समूह को सन्मान देता है। यथार्थ में भगवान् और जीव, "*ब्रह्म जीव इव सहज संघाती*'। अथवा "*नर नारायण सरिस सुभ्राता*"। "*सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा*"। सो अर्थात् राम जो हैं तुम वही हो, उनमें आप में कुछ भेद नहीं है। "*वारि बीचि इव गावहिं वेदा*"। वेद कहते हैं जीवतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व ऐसा है जैसे जल और जल की तरंग अतएव दोनों एक ही हैं, फिर भी अणु और समूह जैसा भेद है। जल समूह है और तरंग अणु है। भगवान् विभु हैं, जीव उनका वैभव है अतएव जीव सदा सेवक है और प्रभु सेव्य हैं। "*सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि*"। भैय्या! राम शब्द तो एक ही है फिर र ब्रह्म, और म जीव, कहा जाता है। देखिए भगवान् ब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी जीव रूपी श्री लक्ष्मण को समझा रहे हैं।

❋ श्रीराम गीता ❋

भैय्या प्राणी गण ! एक समय की बात है भगवान् श्रीराम जी माता श्री जानकी जी के सहित पंचवटी में स्फटिक शिला पर विराजमान हैं श्री लक्ष्मण जी सेवा करते-करते प्रश्न करते हैं कि हे प्रभु !

भगवन्! श्रोतुमिच्छामि मोक्षस्यैकान्तिकीं गतिम्।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष ! संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥

(अध्यात्म-अ० १७)

ज्ञानं विज्ञानसहितं भक्तिवैराग्यबृंहितम् ।
आचक्ष्व मे रघुश्रेष्ठ वक्ता नान्योऽस्ति भूतले ॥

(अध्यात्म-अ १८)

हे भगवन ! हे कमल नयन ! हे भैय्या ! मैं अपने एकान्त मोक्ष की गति जानना चाहता हूँ सो आप संक्षेप से वर्णन करें ॥ १७ ॥ भक्ति को बढ़ाने वाला ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, भक्ति सहित कहिए, क्योंकि आपके समान वक्ता संसार में दूसरा नहीं है ॥ १८ ॥

श्रीराम उवाच—

शृणु वक्ष्यामि ते वत्स गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
यद्विज्ञाय नरो जह्यात् सद्यो वैकल्पिकं भ्रमम् ॥

(अध्यात्म-अ० १९)

श्रीरामजी बोले, हे भैय्या लक्ष्मण ! सुनो मैं तुम्हें गुप्त से गुप्त ज्ञान का कहता हूँ, जिसके जानने से जीव शीघ्र ही संसाररूपी ममता भ्रम को त्याग देता है ॥१९॥ भैय्या ! प्रथम मैं माया का स्वरूप वर्णन करूँगा । पुनः ज्ञानका साधन और विज्ञान वर्णन करूँगा ॥२०॥ फिर

जानने योग्य परमात्मा के स्वरूप को कहूँगा, जिसको जानने से प्राणी संसार भय से मुक्त हो जाता है। हे लक्ष्मण! शरीर आत्मा से भिन्न है परन्तु उसमें मैं हूँ, ऐसी आत्मबुद्धि होना कोई माया है और वही संसार को रचती है अर्थात् शरीर में आत्मबुद्धि होना ही जीव का वारम्बार संसार में जन्म मरण होता है। हे कुल नन्दन लक्ष्मण! परन्तु वह माया के दो स्वरूप निश्चित किए गएहैं॥२१-२२॥

विक्षेपावरणे तत्र प्रथमं कल्पयेज्जगत्
लिंगाद्यब्रह्मापर्यन्तं स्थूल सूक्ष्मविभेदतः ॥२३॥
अपरं त्वखिलं ज्ञामरूपमावृत्य तिष्ठति।
मायया कल्पितं विश्वं परमात्मानि केवले ॥२४॥

एक विक्षेप और दूसरा आवरण, उसमें से विक्षेप माया तो स्थूल सूक्ष्म के भेद से महत्तत्व आदि से ब्रह्मा पर्यन्त जगत को रचती है और दूसरी माया आवरण शक्ति से ज्ञान को संपूर्ण अच्छादन किए रहती है परन्तु वह माया केवल मुझ परमात्मा के ही आधार पर *"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'* । अतएव *'जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की"* विश्व को रचती है ॥२३-२४॥

एक दुष्ट अतिशय दुःख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचै जग गुण वश जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके॥

रज्जौ भुजङ्गवद्भ्रान्त्या विचारे नास्तिकिञ्चन।
श्रूयते दृश्यते यद्यत्स्मर्यते वा नरैः सदा ॥२५॥

भ्रम से जैसे रस्सी में साँप की प्रतीत होती है, विचार करने से सम्पूर्ण झूठा है, वह रस्सी साँप नहीं है। ऐसे ही हे लक्ष्मण! जीव जो कुछ सुनता है, देखता है वा स्मरण करता है ॥ २५ ॥ वह सब स्वप्नवत् मिथ्या है। केवल यह शरीर ही संसाररूपी वृक्ष की जड़ है ॥ २६ ॥ पुत्र आदि बन्धन में शरीर ही मूल कारण है। शरीर न हो तो आत्मा के पुत्र दारादि कौन होते हैं ॥ २७ ॥

वह शरीर दो प्रकार का है, एक स्थूल, दूसरा सूक्ष्म। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश यह पाँचभौतिक शरीर स्थूल है, और रूप, रस, शब्द, स्पर्श, गंध यह पंचतनमात्रा तथा अहंकार, बुद्धि और दश इन्द्रियाँ ॥ २८ ॥ और इन्द्रियों के साथ मन, इन अठारह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है, और यह चिदाभास है, अर्थात् चित् के सदृश्य प्रतीत होता है और उसमें बुद्धि के द्वारा मैं स्थूल हूँ, कृश हूँ ऐसा भासता है और मूल प्रकृति ईश्वर का स्वरूप है यह सब जड़ होने के कारण इसे देह भी कहते हैं और क्षेत्र भी कहते हैं ॥ २८ ॥

एतैर्विलक्षणो जीवः परमात्मा निरामयः।
तस्य जीवस्य विज्ञाने साधनान्यपि मे शृणु ३०॥

इस प्रकार जीव तो इन तीनों से विलक्षण अर्थात् भिन्न परमात्म-रूप हैं, और जन्म मरण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, मत्सर आदि विकारों से रहित है। जीव तथा परमात्मा का एक ही अर्थ है, कुछ भेद भाव नहीं है। "*सो तै ताहि तोहि नहिं भेदा*" और दोनों इस देश में है इस देश में नहीं है, इस काल में है, इस काल में नहीं है,

इस प्रकार देश काल भेद से रहित हैं, परन्तु जीव का परमात्मा से बहुत काल से वियोग होने के कारण अथवा भिन्न होने के कारण किम्वा अल्पज्ञ व अणु होने के कारण अपने यथार्थ स्वरूप परमात्मा को भूल जाने के कारण वह अपने को जीव कहता है, देह कहता है मनुष्य पशु-पक्षी कहता है "*माया ब्रह्म न आपु कहँ, जानि कहिय सो जीव*" पुनः "*जीव धर्म अहमिति अभिमाना*" अर्थात् मैं कहता हूँ, मैं भोगता हूँ यह मायिक भ्रम अज्ञान निश्चित हो गया है, इससे वह कहता है मैं जीव हूँ । अब जीव को परमात्मा होने में जो साधन है वह तुम मुझसे सुना ! प्रथम दंभ हिंसा आदि दोषों का त्याग. दूसरा, दूसरों के कठोर बचनों को सहन करना, किसी से कुटिलता न करना, मन, बचन, कर्म और भक्ति से गुरु की सेवा करना ॥ ३०-३१-३२ ॥

बाह्याभ्यन्तरसंशुद्धिः स्थिरता सत्क्रियादिषु ।
मनोवाक्कायदंडश्च विषयेषु निरीहता ॥ ३३ ॥

बाहर और भीतर निर्मल रहना, सत्कर्मों में स्थिरता रखना, मन में किसी का अमंगल न विचारना, वाणी से कभी किसी को दुर्वाक्य न कहना, हाथ से किसी को न मारना, विषयों में आसक्त न होना, अहंकार का त्याग करना, जन्म और वृद्धावस्था का विचार करना, संसार से विरक्त होना, पुत्र स्त्री धनादि में स्नेह न करना, भले बुरे में समता रखना और मुझ परमात्मा सर्वात्मा राम में अनन्य भक्ति करना, और जहाँ मनुष्यों की भीड़ हो वहाँ नहीं रहना, शुद्ध धर्मात्मा देश में रहना, संसारी विषयी प्राणियों से प्रेम न करना ॥ ३३-३४-३५-३६ ॥

आत्मज्ञाने सदोद्योगो वेदान्तार्थावलोकनम् ।
उक्तैरेतैर्भवेज्ज्ञानं विपरीतैर्विपर्ययः ॥ ३७ ॥

आत्मज्ञान प्राप्त होने का सदा उद्योग करना, वेदान्त के अर्थ का विचार करना, इन साधनों से ज्ञान होता है और ज्ञान होकर "*ज्ञानानां मुक्तिः*"। अपने स्वरूप को "*जानत तुम्हहि तुमहिं होइ जाई*"। अपने परमात्मा में तदाकार हो जाता है '*जीव पाव निज सहज स्वरूपा*' अर्थात् परमात्मा का होकर परमात्मा की सेवा में लीन हो जाता है। और कहे हुए इन नियमों से विपरीत आचरण करने से वही संसार में पतन होकर जीव कहा जाता है ॥ ३७ ॥

हे लक्ष्मण ! बुद्धि, प्राण, मन, देह, और अहंकार, इनसे भिन्न नित्य शुद्ध, बुद्ध, सत्चित् आनन्द, मैं ही हूँ, यह निश्चय है ॥ ३८ ॥ और मैं जिस मार्ग से जीव को प्राप्त होता हूँ वही ज्ञान है यह मेरा निश्चय है। और साक्षात् आत्मस्वरूप का अनुभव ही विज्ञान है ॥ ३९ ॥ आत्मा सर्वत्र पूर्ण है चिदानन्द रूप से व्याप्त और नाश रहित है। बुद्धि मन आदि उपाधि से परिणाम अर्थात् रूपान्तर आदि विकारों से रहित है ॥ ४० ॥

स्वप्रकाशेन देहादीन् भासयन्ननपावृतः।
एक एवाद्वितीयश्च सत्यज्ञानादिलक्षणः ॥ ४१ ॥

वह अपने ही प्रकाश से देहादिकों में प्रकाश करता है और स्वयं माया आच्छादन रहित है, एक है, अद्वितीय है, और सत्य ज्ञान आदि लक्षणों से युक्त है ॥ ४१ ॥ संग रहित है स्वयं प्रकाश है सबका देखने वाला है और विज्ञान से जाना जाता है आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जब जीव और परमात्मा का एकाकार ज्ञान हो जाता है। अर्थात् मैं राम का हूँ, ऐसा निश्चय हो जाता है। '*रामाय*'

अथवा "*मकारार्थो जीवः सकलविधि कैङ्कर्यनिपुणः*"। जब ऐसा दृढ़ हो जाता है उसी अवस्था में कार्य कारण रहित मूल अविद्या तत्काल ही परमात्मा में लय हो जाती है ॥ ४०-४३ ॥

सावस्था मुक्तिरित्युक्ता ह्युपचारोऽयमात्मनि।
इदं मोक्षस्वरूपं ते कथितं रघुनन्दन! ॥ ४४॥
ज्ञानविज्ञानवैराग्यसहितं मे परात्मनः।
किन्त्वेतद्दुर्लभं मन्ये मद्भक्तिविमुखात्मनाम् ॥ ४५॥

उसी अवस्था में प्राणी सदेह मुक्त कहा जाता है। किन्तु आत्मा में यह सब केवल कल्पित मात्र है। हे रघुकुल के आनन्द देने वाले भैय्या लक्ष्मण! ज्ञान विज्ञान और वैराग्य सहित आत्मा का परमतत्त्व परमात्मा सम्बन्धी मोक्ष का स्वरूप मैंने आपसे कहा, परन्तु जो प्राणी मेरी भक्ति से विमुख हैं उनके लिए यह सम्पूर्ण दुर्लभ है ॥ ४४-४५ ॥ जैसे आँख होने से भी प्राणी को रात्रि में अच्छी तरह नहीं दीखता, परन्तु जिसके पास दीपक है उसको अच्छी तरह सब दीखता है ॥ ४६ ॥

एवं मद्भक्तियुक्तानामात्मा सम्यक् प्रकाशते।
मद्भक्तेःकारणं किंचिद्वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥४७॥

ऐसे ही मेरी भक्ति करने वाले को—

परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिआ घृत बाती॥

आत्मस्वरूप की अच्छी प्रकार प्रतीति होती है।

हे भैय्या लक्ष्मण! मैं अपनी भक्ति का कारण थोड़ा सा तत्वतः कहता हूँ सुनो ॥ ४७ ॥

मद्भक्तसङ्गो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम्।
एकादश्युपवासादि ममपर्वानुमोदनम् ॥४८॥

हमारे भक्तों का संग, हमारी सेवा तथा हमारे भक्तों की सेवा, एकादशी आदि उपवास, एवं हमारे जन्मादि उत्सवों को मानना उत्सव करना ॥ ४८ ॥

मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः।
मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्त्तनम् ॥ ४६॥

मेरी कथा सुनने में, पाठ करने में, और सुनने में सदा प्रेम होना, मेरी पूजा में सदा तत्पर होना और सदा सर्वदा मेरे नामों का कीर्त्तन करना ॥ ४६ ॥

एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी।
मयि सञ्जायते नित्यं ततः किमवशिष्यते –५०॥

हे भैय्या लक्ष्मण! इस प्रकार निरन्तर जो इन साधनों को करते रहते हैं, उनको सदा सुख देने वाली मेरी अटल प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है फिर उनको कुछ बाकी नहीं रहता ॥ ५० ॥ इस प्रकार जो प्राणी हमारी भक्ति सदा करते हैं उनको ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥ ५१ ॥ हे लक्ष्मण! तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार मैंने सब कहा है। जो कोई यह मेरे कहे हुए ज्ञान में मन लगावेगा वह मुक्ति का भागी बनेगा ॥ ५२ ॥

भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनां,
मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा।
सङ्गः यः कुरुते सदोद्यतमतिस्तत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नान्यथा ॥५५॥

हे भैय्या लक्ष्मण ! मेरा भक्त, योगी निर्मल हृदय, शान्तचित्त मेरी सेवा में प्रीति पूर्वक मन लगाने वाला है वह ज्ञान स्वरूप हो जाता है, जो प्राणी ऐसे हमारे भक्तों की संगत करता है और जो मन लगाकर उनकी सेवा करता है और जो प्राणी वह ज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्योग करता है, मोक्ष ऐसे मनुष्यों के हाथ में रहता है और वही प्राणी मुझे प्राप्त कर सकता है अन्य उपाय से न तो मोक्ष ही पाता है और न मेरा दर्शन ही पाता है।

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलै जो संत होहिं अनुकूला ॥
भक्ति करत बिनु यतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नाशा

अन्यथा '*करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नही सोऊ*'

भैय्या प्राणी बृन्द ! भगवान् की श्री मुखबाणी से सब सुने तो भगवान् कहते हैं भक्ति अनुपम सुख देती है परन्तु संतों की सेवा करने से संतों के द्वारा मिलती है, और भक्ति करने से बिना कोई उपाय के आपही आप संसार मोह अविद्या समूल नाश होती है और प्राणी हमको प्राप्तकर लेता है। भक्त के सिवाय, अन्य मार्ग से यदि बहुत कष्ट करके हमको पाया भी, परन्तु भक्तिहीन हमारी सेवा से विमुख होने के कारण हमारा प्रेमी नहीं होता।'*मोहि भक्त प्रिय संतत*'।

भैय्या प्राणीगण! भगवान् की सेवा करने वाला भक्त ही, भगवान् को प्यारा होता है। वही भक्ति सेवा करने का मार्ग आपको वर्णाश्रम में ३८ सोपानों में बताया गया है। "*तेहि कर फल पुनि विषय विरागा*" पुनः वर्णाश्रम के उन ३८ सोपानों के फलस्वरूप संसार से वैराग्य प्राप्त करके विरक्त आश्रम में आने से पुनः २८ सोपानों में बताया गया। जो अट्ठाइसवें सोपान में नौधा भक्ति रूप नौ सेवायें बताई गई हैं उनमें सर्वश्रेष्ठ आत्मनिवेदन जो आप नौधाभक्ति विज्ञान प्रकरण में पढ़े हैं वही साधना शेष है वहाँ तक जब प्राणी पहुँच जाता है तब प्रभु का प्यारा हो जाता है तभी यह जीव अपना स्थान प्राप्त कर सकता है।

भैय्या प्राणी गण! इसको पढ़ो समझो और करो "*राम भजे हित होइ तुम्हारा*"।

इस वर्णाश्रम में ३८ और विरक्त आश्रम में २८ कुल ६६ सोपान कहे गये हैं। जिनको गोस्वामी तुलसीदास जी सात ही सोपानों में निर्वृत्ति और प्रवृत्ति दोनों विभाग का वर्णन करते हुए उसमें १४ महाविद्या जो '*अध्यात्म विद्या विद्यानां*" वर्णन किया गया है वह चौदह महाविद्या में से कोई एकही विद्या को अपनाया है वही भगवान् का प्राण प्यारा हुआ है भगवान् उसी के हृदय में वास करते हैं।

सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूषहृद, तिनहुँ किए मन मीन॥

भैय्या प्राणी वृन्द! स्त्री, पुत्रादि धन ऐश्वर्यादि सांसारिक सर्व कामना रहित होकर जो बड़भागी जीव राम भक्ति रस में तल्लीन

हो चुके हैं वे श्री रामनामामृत से अपना अगाध हृदय सागर परिपूर्ण किए हुये, मन रूपी मछली को हृदय के अगाध सागर में रक्खे हुए परम सुख शान्ति लाभ किये हैं। '*सुखी मीन जहँ नीर अगाधा*' भैय्या "*जिमि हरि शरण न एको बाधा*" परन्तु "*सुख चाहहि मूढ़ न धर्म रता*" अज्ञानी जीवों को उसी सुख की इच्छा तो है परन्तु जीव का यथार्थ धर्म आचरण नहीं करते अर्थात् जीव का धर्म है नाम रूप लीला धामादि प्रभु की सेवा यथा—

इतः परंत्वच्चरणारविन्दयोस्मृतिस्सदा मेस्तु भवोपशान्तये।
त्वन्नामसंकीर्त्तनमेव वाणी करोतु मे कर्णपुटं त्वदीयम्॥
कथामृतं पातु करद्वयं मे पादारविन्दार्चनमेव कुर्यात्।
शिरश्चते पादयुगं प्रणामं करोतु नित्यंभवदीयमेवम्॥

भक्त जीव अपने प्रभु भगवान् श्रीरामजी से प्रार्थना करता है कि हे प्रभु! दैहिक, दैविक, भौतिक त्रितापों से सन्तप्त जीव को भव-सागर से शान्ति देने वाले आपके चरणकमलों का मैं सदा हृदय से स्मरण करूँ और हमारी जिह्वा सदा आपका नाम कीर्त्तन करे, और कान से आपकी कथामृत को पान करूँ वा श्रवण करूँ, हाथ से आपके चरण कमलों की पूजा करूँ, और शिर से सदा (सर्वदा) आपके चरण कमलों में भूमिष्ठ प्रणिपात साष्टांग प्रणाम करूँ।

सुत सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
अब प्रभु कृपा करहु यहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥

और भक्तराज विभीषण भी तो भगवान् से ऐसा ही कहे हैं-

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही ॥
अब कृपालु निज भगति पावनि। देहु दया करि शिव मन भावनि॥

और श्री वाल्मीकिजी ने मानस में चौदह महाविद्या के रूप में जीव कल्याण के लिये तो ऐसा ही कहा है। यथा *'जिनके श्रवण समुद्र समाना'* अर्थात् कान से आपके चरितामृत को पान करें व सुनें और *"लोचन चातक जिन करि राखे"*। नेत्रों से आपकी मंगलमय मूर्ति का दर्शन करें। *"यश तुम्हार मानस विमल हंसनि जिह्वा जासु"*। अर्थात् जिह्वा से आपके मधुर चरित्रों का गान करें। *"प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा'*। नासा से आपका प्रसाद पुष्प तुलसी आदि की सुवास आघ्राण करें, और *"तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं'*। मुख से आपको भोग लगा हुआ नाना प्रकार का मिष्ठान आदि भोजन करें, और *"अङ्ग में भूषित वस्त्रादि को पहने"*। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं, *"शीश नवहिं सुर गुरद्विज देखी"*। देवता गुरु ब्राह्मणों को देखने पर प्रेम एवं नम्रता से शिर से प्रणाम करें, *'कर नित करहि राम पद पूजा'* अपनी सारी रक्षा राम पर निर्भर करके हाथ से श्रीराम की पूजा करें *"चरण राम तीरथ चलि जाहीं'* चरण से आपके तीर्थों में भ्रमण करें, अर्थात् सर्वाङ्ग से आपकी ही सेवा पूजा भजन होम जप तीर्थादि करें।

भैय्या प्राणी वृन्द ! यही हम सब जीवों का धर्म है, इसी धर्म को पालन करने से हम सब सुखी होगें और तभी इन जीवों का कल्याण होगा, तभी अपना *"ईश्वर अंश जीव अविनाशी"*। स्वरूप पा सकेंगे, जो कहा गया है *"जीव पाव निज सहज स्वरूपा"*। तभी

हो सकता है भैय्या ! "*सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई*"। वही भक्ति महारानी की शरण लेने से जीव अपने स्वस्थान पर पहुँच सकता है। परन्तु—

जौं अति कृपा राम की होई। पाँव देइ यहि मारग सोई ॥

भैय्या जीव गण ! बारम्बार अपने प्रभु से रो-रो कर यही प्रार्थना करो कि हे प्रभु !

अब प्रभु कृपा करौ यहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती ॥

ऐसी बारम्बार प्रार्थना करने से प्रभु कृपा करेंगे और अपने चरण कमलों में शरण दे देंगे।

भैय्या प्राणी गण ! वाल्मीक जी का तो पूर्व जीवन चरित्र आप जानते ही हैं, कि राम-राम नहीं सके, मरा-मरा कहा परन्तु उल्टा नाम के प्रभाव से "*बाल्मीक भये ब्रह्म समाना*"। ब्रह्म, परमात्मा भगवान् के समान सुख ऐश्वर्य प्राप्त कर लिए, परन्तु पहले बहुत काल मरा-मरा जप करते हुए मरा जप की ब्रह्म शक्ति का जब हृदय में प्रकाश हुआ है तब तक आपने राम-राम घोषण किया, पुनः राम नाम को बारम्बार शतकोटि वार श्लोकों में लिखकर पुनः शुद्ध राम-राम हुआ है कि नहीं इसकी परीक्षा देने के लिए कैलाश पर शंकर भगवान् के पास गए।

शंकर भगवान् शतकोटि श्लोक का सार राम है ऐसा निश्चय करके नामकरण किए वाल्मीकीय रामायण, और आपने "*रामायण शतकोटि महँ लिय महेश जिय जानि*"। अपने मन ही मन रामनाम सार है, वा रामनाम सत्य है आगे कहेंगे, रामनाम को जानकर, "*रचि महेश निज मानस राखा*"। रामनाम की सारी व्याख्या यथा—

रकाराज्जायते ब्रह्मा, रकाराज्जायते हरिः।
रकारज्जायते शंभुः, रकारात्सर्वशक्तयः॥

रकार ही सर्व शक्तिमान् है, रकार ही सर्व सृष्टि है, रकार ही सर्वव्यापक है कलिकाल में रकार ही, वा रामनाम ही जीव को भक्ति मुक्ति देकर कल्याण करेगा। इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण से शंकर भगवान् श्री रामनाम के परत्व को अच्छी तरह समझकर हृदयस्थ करके रक्खे। अब जब कलियुग आया तो "*पाइ सुसमय शिवासन भाषा*"। एकान्त समय पाकर पार्वती को कहे। और संसार में प्रचार हो, ऐसा समझकर श्री शंकरजी वाल्मीकजी की प्रार्थना किए कि–आप कलियुग में एक बार और अवतीर्ण हों, अपनी रामायण को सरल करें, और रामनाम का प्रचार करें। तो वही "*कलि कुटिल जीव निस्तार हित-वाल्मीक तुलसी भए*"। और उनके द्वारा मर्त्यलोक में रामनाम को–

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविता शाखां वन्दे वाल्मीक कोकिलम्॥

वाल्मीक रूपी कोकिला (कोयल) कविता रूपी डार पर बैठ कर मधुर से मधुर "*रामनामामृतम्*"। राम राम राम राम की ध्वनि गुञ्जार किए, जो अति मनोहर—

कुहूँ कुहूँ कोकिल ध्वनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं॥

उस परम मधुर, परम मनोहर, परम स्वादिष्ट रामनामामृत की सरस सुन्दर ध्वनि सुनकर मुनियों का ध्यान भंग हो गया।

❀ श्री मानस-मर्म ❀

भैय्या बालकवृन्द ! अब यहाँ से मानस मर्म आरंभ होरहा है यथा-

सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि । भव भंजनि भ्रम भेक भुवंगिनि ॥
रामचरित मानस यहि नामा । सुनत श्रवण पाइय विश्रामा ॥

वही "*रामनामामृत*" । श्री तुलसीदासजी के "*तव मुखाद् गलितं-गीतं कथामृत रसायनम्*" । मुखारविन्द रूपी बादल से रसमय कथा-मृत वृष्टि होकर, "*भरेउ सुमानस सुथल थिराना*' । और भरकर-

भयउ हृदय आनन्द उछाहू । उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥

मन से उमड़कर वृहद् रूप से प्रेम और आनन्द रूप में प्रवाहित हुआ ।

चली सुभग कविता सरिता सो । राम विमल यश जल भरिता सो ॥

कविता रूपी नदी प्रवाहित हो चली जिसमें रामनाम तथा राम सीता का पतित पावन उज्ज्वल यश रूपी जल भरपूर है। जिसका सारांश है राम नाम ।

यहि महँ रघुपति नाम उदारा । अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥

इसमें रघुपति राघवेन्द्र भगवान् का नाम रक्खा है। अथात् राम, जो पतित पावन,तारक महामन्त्र है और वेद पुराण श्रुति स्मृति का सार है । '*महामंत्र जोइ जपत महेशू*" । अर्थात् "*रामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्* ' । ब्रह्म स्वरूप, राम नाम ही परम जाप्य है । वही जीव को संसार सागर से तारने वाला "*रामतारक*" महामन्त्र है । जिसको श्री वेदव्यास अठारह पुराण लिखकर जब संशोधन किए, तो सबका सारांश यही कहा—

सप्त कोटि महामन्त्राः, चित्त विभ्रान्त कारकाः ।
एक एव परो मंत्रो रामेत्यक्षरद्वयम् ॥

अठारह पुराणों में मैंने सात करोड़ महामन्त्र लिखे हैं परन्तु सबका सार दो अक्षर रामनाम ही परात्पर परम मन्त्र है ।

श्रीरामनामाखिल मंत्र बीजं सज्जीवनं चेद्हृदये विष्टम् ।
हलाहलं वा प्रलयानलं वा मृत्योर्मुखं वा विषतां कुतोभिः ॥

अखिल मन्त्रों का बीज श्रीरामनाम जिनके हृदय में प्रविष्ट हुआ है वेही अमरत्व प्राप्ति करके चिरंजीव हैं, हलाहल प्रलयकाल का दावानल, अथवा मृत्यु के मुख में प्रवेश होते हुए भी *'कालहु सन्मुख गये न खाई'*। काल के सन्मुख होते हुए भी किसी प्रकार का भय नहीं होता है, श्री हनुमान् जी श्रीरामनाम जपते हुए मृत्यु स्वरूपिणी सुरसा के मुख में प्रवेश करके *'बदन पैठि पुनि बाहर आवा'*। बाहर चले आए उनका बाल तक बाँका न हुआ । प्रह्लाद कह रहे हैं। *'रामनाम जपतां कुतो भयं सर्व ताप समनैक भेषजम्'*। दैहिक, दैविक, भौतिक, सर्वतापों को नाश करने वाला श्रीरामनाम महा औषधि है। रामनाम जापक को कहीं पर भी भय नहीं है। *'संसारामयभेषजं सुखकरम्'* संसार रूपी महारोग ग्रस्त प्राणी को श्रेष्ठ औषधि है ।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो ! संसार में श्रीरामनाम जपने वाले को कहीं पर भी भय नहीं है । सांसारिक दैहिक, दैविक, भौतिक आदि किसी प्रकार का भय नहीं है । यही रामनाम ही प्राणी को संसार सागर से पार उतारता है । श्री गोस्वामी तुलसीदासजी अपने मानस में केवल श्रीरामनाम ही सार रक्खे हैं । जिसके भय से *"नाम लेत भवसिंधु सुखाही"*। अथवा—

पापिहु जाकर नाम सुमिरहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ॥
जासु नाम सुमिरत इक वारा । उतरहिं नर भवसिंधु अपारा ॥

इत्यादि नामों से ही मानस में आदि से अन्त पर्यन्त नाम ही का माहात्म्य वर्णन किया गया है, आप सब तो मानस पढ़ते ही होंगे और यदि न पढ़ते हों तो आज ही से पढ़ें, मानस में लिखा है।

जे यहि कथहिं सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं रामचरण अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ॥

भैय्या बालक वृन्द ! श्रीरामजी के चरणकमलों में दृढ़ अनुराग होना ही जीव को नितान्त आवश्यक है। सो मानस के अवगाहन करने से स्वभाव से ही प्राप्त होता है। यदि आप श्रीराम जी के चरण कमलों में प्रेम करना चाहें तो आज से ही मानस नवाह्न अथवा मास पारायण पाठ करना प्रारम्भ करें और इस विधि से करें।

शमदम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुषवचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

और "*सियाराम मय सब जग जानी*" प्राणी मात्र को श्रीसीताराम रूप जानते हुए, किसी को कटु बचन न बोलें, और इन्द्रिय निग्रह करके, प्राणियों में समता रखते हुए, शास्त्र की नीति के अनुसार, नियम अटल रहे। इस विधि से पाठ करें। शौच, स्नान, संध्या, तर्पण आदि कर्मांग सहित मास पारायण करें, चाहे नवाह्न करें परन्तु नियम भङ्ग न हो।

भैय्या बालक वृन्द ! इस प्रकार मानस का अवगाहन करें, और भगवान् में श्रद्धा भक्ति दृढ़ता और विश्वास होना चाहिए, तब हमारे कार्य की पूर्ति होगी और मनोवांछित फल पूर्ण होंगे। कहा गया है

"*कौनिहु सिद्धि की बिनु विश्वासा*" बिना विश्वास के कोई कार्य में सफलता नहीं होती, किसी प्रकार सिद्धि नहीं होती, यदि विश्वास पूर्वक मानस पारायण करेंगे। तो थोड़े दिनों में आप श्रीराम जी के परम प्यारे प्रेम पात्र बनकर धन्य-धन्य हो जायँगे। और परम शांति पाकर सत्संग में ही सुखी रहेंगे। और अपने आप ही कहेंगे –

आजु धन्य मैं धन्य अति, यद्यपि सबविधि हीन।
निज जन जानि राम मोहिं, संत समागम दीन॥

फिर तो कुछ भी मिलने को बाकी न रहेगा।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो ! मानस में आपको सब कुछ मिलेगा।

मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा॥

यह बिलकुल अकाट्य चौपाई है, निष्कपट भाव से मानस पारायण करने से सर्व मनोबाँछित सिद्धियाँ होती हैं।

भैय्या ! यह पारायण की ब्रह्मरामायण में पूर्ण विधि लिखी है उसी विधि का कल्याण पत्रिका में भी प्रचार किया गया है। मानस में "*सिद्ध महामंत्र*" लिखे हैं। मानस की चौपाइयों की सिद्धि मंत्र का विधान जिस कार्य के सिद्धि के लिए जो मंत्र रूपी चौपाई दोहा सिद्ध करना होगा उन उन चौपाइयों को नीचे बताया जायगा। परन्तु उसकी विधि ऐसी है। जो चौपाई जिस सिद्धि के लिए जप की जायगी उसी दिन रात्रि को ११ बजे से १ बजे तक पहले स्नान, आसन शुद्धि, संध्या आदि करके जो चौपाई वा दोहा सिद्ध करना है। उसी चौपाई से १०८ वार अष्टगंध अर्थात् जौ तिल, चावल, शक्कर, धूप, पंचमेवा, अगर, चन्दन, को हवन करना और उसी

चौपाई को १०८ बार जप करना होगा। और विघ्न विनाश के लिए अपने चारों तरफ दिग् बन्धन इस चौपाई से।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत कर चाप रुचिर वर शायक॥

इस चौपाई को तीन बार पढ़कर अपने चारों तरफ तीन रेखायें खींच देवे। फिर सिद्धि करने की चौपाई का जप करे। फिर तो मनोरथ पूर्ण होने में कुछ संदेह ही नहीं है। प्रत्येक सिद्धि के लिए विभिन्न चौपाइयाँ इस प्रकार हैं—

(१) विपत्ति विनाश के लिये

राजिव नयन धरे धनु शायक। भक्त विपत्ति भंजन सुख दायक॥

(२) शंकट नाश के लिये

जो प्रभु दीन दयालु कहावा। आरत हरण वेद यश गावा॥

(३) क्लेश नाश के लिये

हरण कठिन कलि कलुष कलेशू। महामोह निशि दलन दिनेशू॥

(४) विघ्न नाश के लिये

सकल विघ्न व्यापहिं नहिं तेही। राम कृपा करि चितवहि जेही॥

(५) खेद नाश के लिये

जबते राम व्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥

(६) महामारी नाश के लिये

जय रघुवंश वनज वन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृशानू॥

(७) रोग नाश के लिये

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा॥

(८) शिर रोग नाश के लिये

हनूमान् अंगद रण गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

(९) सर्पादि विष नाश के लिये

नाम प्रभाव जान शिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको॥

(१०) अकाल मृत्यु नाश के लिये

दो०- नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट॥

(११) भूत भय नाश के लिये

सो०--बन्दौ पवनकुमार, खल वन पावक ज्ञानघन।
जासु हृदय आगार, बसहिं राम शर चाप धर॥

(१२) दृष्टि (नजर) नाश के लिये

श्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छवि जननी तृण तोरी॥

(१३) खोई वस्तु प्राप्ति के लिये

गई वहोर गरीब निवाजू। सरल सबल साहेब रघुराजू॥

(१४) जीविका प्राप्ति के लिये

विश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

(१५) दरिद्रता नाश के लिये

अतिथि पूज्य प्रीतम पुरारिके। कामद धन दारिद दवारिके॥

(१६) लक्ष्मी प्राप्ति के लिये

जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं। यद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

(१७ पुत्र प्राप्ति के लिये

दो०—प्रेम मगन कौशल्या, निशि दिन जात न जान।
सुत सनेह वश माता, बाल चरित कर गान॥

(१) संपत्ति प्राप्ति के लिये

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना विधि पावहिं॥

१६ सिद्धि प्राप्ति के लिये

साधक नाम जपहिं लव लाए। होंहि सिद्ध अणिमादिक पाए॥

(२०) सुख प्राप्ति के लिये

सुनहिं विमुक्त विरत परु विषयी। लहहिं भकित गति संपति नई

(२१) मनोरथ सिद्धि के लिये

दो०—भवभेषज रघुनाथ यश, सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिमकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिशिरारि॥

(२२ क्षेम कुशल के लिये

भुवन चारि दश भरा उछाहू। जनक सुता रघुबीर विवाहू॥

(२३) शत्रु नाश के लिये

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विज्ञान निधाना॥

(२४) शत्रु सामना के लिये

कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा॥

(२५) शत्रु से मित्रता के लिये

गरल सुधा रिपु करइ मिताई। गोपद सिंधु अनल शितलाई॥

(२६) शत्रु विनाश के लिये

बयर न करु काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई ॥

(२७) शास्त्रार्थ में विजय के लिये

तेहि अवसर सुनि शिव धनु भंगा। आए भृगुकुल कमल पतंगा ॥

(२८ विवाह के लिये

तब जनक पाइ वशिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँवरि लई हँकारि कै ॥

(२९) यात्रा की सफलता के लिये

प्रविशि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोशलपुर राजा ॥

(३०) परीक्षा उत्तीर्ण के लिये

जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी।
मोहि सुधारहिं सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपा अघाती ॥

(३१ आकर्षण के लिये

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलहि न कछु सन्देहू ॥

(३२ स्नान फल प्राप्ति के लिये

दो०—सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥

(३३, निन्दा निवृत्ति के लिये

राम कृपा अवरेव सुधारी। विबुध धार भइ गुनद गोहारी ॥

(३४) विद्या प्राप्ति के लिये

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई। अल्पकाल विद्या सब पाई ॥

(३५) उत्सव मंगल होने के लिये

सो०—सिय रघुबीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन कहँ सदा उछाह, मंगलायतन रामयश ॥

(३६) यज्ञोपवीत के लिये

दो०—युगुति वेधि पुनि पोहिअहिं, रामचरित वरताग।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, शोभा अति अनुराग ॥

(३७) प्रेम बढ़ाने के लिये

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥

(३८) भगवान् में मन लगाकर सुगम मृत्यु प्राप्ति के लिये

दो०—रामचरण दृढ़ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनुत्याग।
सुमनमाल जिमि कंठ से, गिरत न जानइ नाग ॥

(३९) कायरपन निवारण के लिये

मोरे हित हरिसम नहिं कोऊ। यहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥

(४०) विचार शुद्धि के लिये

ताके युग पद कमल मनावऊँ। जासु कृपा निर्मल मति पावऊँ ॥

(४१ संशय निवृत्ति के लिये

रामकथा सुन्दर करतारी। संशय विहँग उड़ावन हारी ॥

(४२) अपराध क्षमा के लिये

अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता । छमहुँ छमा मन्दिर दोउ भ्राता ॥

(४३) संसार से विरक्ति के लिये

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होय भवरस विरति ॥

(४४) ज्ञान प्राप्ति के लिये

छितिजल पावक गगन समीरा । पञ्च रचित अति अधम शरीरा ॥

(४५) भक्ति प्राप्ति के लिये

दो०—भक्त कल्पतरु प्रणतहित, कृपासिंधु सुखधाम ।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥

(४६) श्री हनुमान् जी की प्रसन्नता के लिये

सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने वश करि राखेउ रामू ॥

(४७) मुक्ति प्राप्ति के लिये

दो०—जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्ह अस नारि ।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहिं बिसारि ॥

(४८) श्रीराम दर्शन के लिये

दो०—नीलसरोरुह नीलमणि, नील नीरधर श्याम ।
लाजहिं तनु शोभा निरखि, कोटि कोटि शतकाम ॥

(४९) श्रीसीता दर्शन के लिये

जनकसुता जग जननि जानकी । अतिशय प्रियकरुणा निधान की ॥

(५०) श्रीरामजी की प्रसन्नता के लिये

दो०—केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा शील निधान।
देखि भानु कुल भूषणहिं, बिसरा सखिन अपान॥

(५१) परात्पर श्रीराम के दर्शन के लिये

भक्त वत्सल प्रभु कृपानिधाना। विश्ववास प्रगटे भगवाना॥

भैय्या बालक वृन्द ! वा प्राणी गण ! देखिए मानस में इक्यावन शत [५१००] चौपाइयों में यह इक्यावन [५१] चौपाई सिद्ध मन्त्र [महामन्त्र] सम्पुट किये गये हैं एक-एक मन्त्र चौपाई में एक-एक शत, चौपाई सम्पुट की हैं। इसमें से जो कामना सिद्ध करना चाहें तो उसको ऊपर लिखे हुए के अनुसार सिद्ध करके अपनी कामना पूर्ण करें। मानस मन्त्र सार है। परन्तु—

दो०—बिनु विश्वास भक्ति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु स्वपनेहुँ, जीव न लह विश्राम॥

भैय्या बालक वृन्द ! भक्ति होती है दृढ़ता और विश्वास से, दृढ़ विश्वास न होने से भक्ति का स्वरूप ही नहीं बनेगा, इसलिए आप अपने मन को दृढ़ता और विश्वास दिलाते हुए मन में यह दृढ़ करें कि मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे हैं। तारतम्यता इतनी ही रहे कि "*सेवक हम स्वामी सिय नाहू*"। मैं सेवक हूँ और श्रीसीतानाह अर्थात् श्रीरामजी हमारे सेव्य प्रभु हैं। परन्तु मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे हैं इस बात का पता आपको पूरा-पूरा मानस रामायण से लगेगा। जब आप मानस को मन में भली भाँति से मनन करेंगे तब आप स्वयं कहेंगे कि। प्रभु—

तब मायावश फिरौं भुलाना। ताते मैं नहिं प्रभु पहिचाना।

मैं आपकी माया के वश होकर भूला हुआ संसार चक्र में स्त्री पुत्रादि की माया ममता में भटक रहा हूँ इसी से आपकी उदारता पर ध्यान नहीं आया।

नारि विवश नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥

नट बानर की तरह अर्थात् जैसे नट बानर को अपने वश में करके लकड़ी के ताल पर नचाता है, इसी प्रकार मैं आपकी माया रूपी नारि, के वश में होकर नेत्रों के इशारे पर नाच रहा हूँ। अब मानस पढ़ने से इसका मुझे भली भाँति परिचय प्राप्त हो रहा है। इसी से अन्य सभी स्थानों, पदार्थों, व सभी प्राणियों एवं निजी कुटुम्बियों से तथा स्त्री पुत्रादिकों से, और सभी परिस्थितियों से, मेरी ममता हट रही है। मेरे से सब प्राणियों का, सब पदार्थों का, सब परिस्थितियों का अधिकार उठा जा रहा है। मेरा यह निश्चय ज्ञान बड़ी द्रुत गति से अनुभव रूप से परिणित हो रहा है कि मुझ पर भगवान् के सिवाय अन्य किसी का कुछ भी अधिकार अथवा आधिपत्य नहीं है क्योंकि मैं भगवान् का हूँ और किसी प्राणी वा किसी वस्तु को अब यह कहते नहीं सुनता हूँ कि मैं तुम्हारा हूँ, मैं तुम्हारी हूँ। या तुम मुझे अपना बनालो, क्योंकि एक मात्र भगवान ही मेरे हैं भगवान् के सिवा और कुछ भी मेरा है ही नहीं। अब यह मुझे पूरा दृढ़ हो गया कि मैं केवल भगवान् का हूँ और भगवान केवल मेरे हैं। अब मेरे को "*नान्य गतिः शरणयम्*"। हे प्रभु! अन्य गति नहीं है, अन्य उपाय नहीं है, अन्य अस्तित्व नहीं है, अन्य

कर्त्तव्य नहीं है, अन्य पुरुषार्थ नहीं है, आपही मेरी गति हैं, आप ही मेरे उपाय हैं, आप ही मेरे सर्वस्व हैं, मैं आपकी शरण हूँ ।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्र गण ! मैं सदा भगवान् में ही रहता हूँ । मैं कहीं भी रहूँ, कभी भी रहूँ, कैसे भी रहूँ, परन्तु रहता हूँ भगवान् में ही । आज के पूर्व में जो मेरी धारणा थी कि "*जगत् सत्यं ब्रह्म मिथ्या*" परन्तु अब वह बदलकर यथार्थ में "*ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*" पूरी प्रतीति हो गयी । मैं अब यह स्त्री पुत्रादि संसार सत्य को जानता ही नहीं हूँ । देखता भी हूँ कि ऐसा देश, काल, कोई है ही नहीं, जो भगवान् से शून्य हो ।

देश काल दिशि बिदिशिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥

"*प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना*" सभी देश, सभी काल, भगवान् में हैं और सभी देश, सभी काल में भगवान् व्याप्त हैं । इसी से मैं भगवान् की सान्निद्धि का नित्य अनुभव करता हूँ । परन्तु "*प्रेम से प्रभु प्रगटइ जिमि आगी*" । "*प्रेम ते प्रगट होइ मैं जाना*" । इसी से मेरे सब दोष नष्ट होकर मुझमें शान्ति, दया, करुणा, निरभिमानता, विनम्रता, उदारता, धैर्य, वीरता, अहिंसा, वैराग्य, प्रेम, सद्व्यवहार परसम्मान सबके सुख की भावना, और सबके परमहित की भावना सहिष्णुता आदि सभी सद्गुण आ रहे हैं । मैं भगवान् में हूँ, इसी से भगवान् के सारे गुण मुझमें आ रहे हैं । मैं जब जहाँ जैसे भी रहता हूँ, सदा भगवान् में ही रहता हूँ । परन्तु, यह सब मुझे मानस से ही मिला है ।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रगण ! अब आइये मानस देखिए ।

सप्त प्रबन्ध सुभाग सोपाना । ज्ञान नयन निरखत मनमाना ॥

इस मानसरोवर में सात सीढ़ी नीचे उतरने की है इसको ज्ञान नयन अर्थात् विचार रूपी नेत्र से देखने में मन मान जाता है कि ठीक है परन्तु—

अतिशय कृपा राम को होई। पाँव देइ यहि मारग सोई ॥

भैय्या आप तो रामजी के कृपा पात्र हैं ही–"*कबहुँकि करि करुणा नर देही*"। मनुष्य शरीर पाने के पहिले से ही आप श्रीराम जी के कृपापात्र हो चुके हैं तभी तो मनुष्य शरीर मिला है। आगे मानस मीमांसा पढ़िये।

भैय्या बालक वृन्द ! अब मानस मर्म तथा मानस मीमांसा एवं मानस सारांश दार्ष्टन्ति और दृष्टान्त रूप में पढ़ो।

प्रथम सोपान

भैय्या बालक गण ! देखिये एवं अपने आत्मतत्त्व पर विचार कीजिए। प्रथम जीव ने मानस के तटस्थ घाट रूपी मनुष्य शरीर प्राप्त किया। पुनः मानस वा मानसरोवर के चतुः पार्श्व पुष्पों का बगीचा, उसके पीछे आम्रादि का बगीचा, पश्चात् वनस्थली है जिसमें नाना प्रकार के पक्षी बिहार करते हुए सुख पारहे हैं। "*सुमन वाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु*' तैसे ही जीव मानस के चतुः पार्श्व रूपी मन के चारों तरफ फैलाव अर्थात् बालक्रीडा रूपी मनोहर पुष्प बगीचा, बाल्य कैशोर खेल कूद रूपी आम्रादि बगीचा में नगर भ्रमण रूपी विहार करते हुए पुनः वनस्थली विवाहादि स्त्री जाल में प्रविष्ट होकर पक्षीवत् जीव नाना प्रकार विषयानन्द सुख अनुभव किया। यह हुआ दृष्टान्त।

भैय्या बालक वृन्द ! अब वही जीव के यथार्थ अनुभव स्वरूप श्रीराम जी मर्त्यलोक में अवतीर्ण होकर प्रथम परम मनोहर शिशु लीला किए यथा–

कबहुँ उछंग कबहुँ वरपलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना॥

यह हुई पुष्प बाटिका पुनः आम्रादि बगीचा का दृष्य देखिए श्रीराम जी "*बड़े भये परिजन सुखदाई*" अयोध्या नगर भ्रमण, विश्वामित्र आगमन, श्रीजनकपुर प्रस्थान, विवाहादि। "*सियराम अवलोकनि परस्पर*" इत्यादि, आम्रादि बगीचा का मनमोहक दृश्य दिखाए। पुनः श्री अवध में आकर विषयानन्द। "*प्रेम प्रमोद विनोद बड़ाई*" इत्यादि बनस्थली का दृश्य स्वरूप परम पावन चरित्र किए। यह मानस का प्रथम सोपान है।

दूसरा सोपान

भैय्या बालक गण ! मित्रो ! मनुष्य शरीर का कर्त्तव्य है, कुछ काल वर्णाश्रम में रहकर माता पिता की सेवा, देश सेवा, तीर्थ बनादि भ्रमण कुछ पुण्य संग्रह कर वर्णाश्रम स्त्री पुत्रादि विषय से वैराग्य होना कहा जाता है। "*तेहि कर फल पुनि विषय विरागा*" अर्थात् प्रथम सोपान में जीव विषय का अनुभव करके उसके गुण दोष को जानकर वैराग्य लेता है। तब दूसरे सोपान पर पहुँचता है। "*स्वविषयान्प्रयोगेन स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः*" प्रत्याहार अर्थात् वैराग्य लेकर वानप्रस्थ होने से जीव के साथ माया और ब्रह्म साथ चलते हैं। पुनः चित्रकूटादि वन पर्वत कन्दरावों में विचरते हुए भी साथ में माया और ब्रह्म दोनों की सेवा करते हुए। माया का सुहृद परिवार विषय वासना स्त्री पुत्रादि "*यह सब माया कर परिवारा*" वहाँ पर भी पहुँच जाते हैं। परन्तु -

होइ बुद्धि जो परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥

कारण कि "*ये सब राम भक्ति के बाधक*"। तब जीव आगे बढ़कर अत्रि आदि मुनियों के समागम तथा सत्सङ्ग में प्रवेश करता है। और माया के एक पथ में संबोधन किया जाता है अर्थात् अपने अनुकूल बनाना होता है। "*उत्तम के अस वश मन माहीं, सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं*' इस प्रकार जीव माया को भक्ति स्वरूपा बनाकर आगे चलता है। यह हुआ जीव का दृष्टान्त।

भैय्या बालक वृन्द ! अब देखिए भगवान् श्रीरामजी जीव की शिक्षा स्वरूप अर्थात् वैराग्य में पथिक होने के लिए आप कुछकाल अयोध्या में रहकर विषय, विवाहादि, संसर्ग करते हुए, एवं जब राज्याभिषेक का समय आया तब साथ ही साथ बन पथ में प्रसन्नता से चल पड़ते हैं। "*नव गयंद रघुवीर मन, राज अलान समान*" अर्थात् जीव के लिए विषय वंधन का कारण है ऐसा जानकर "*प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथानमम्लेबनवास दुःखतः*"।

"*भयो न मन कछु हर्ष हरापू*" राज्य प्राप्ति में हर्ष नहीं, बन जाने में ग्लानि नहीं, प्रसन्नता पूर्वक विषय बंधन राज्याभिषेक परित्याग करके वन में चले जाते हैं। ब्रह्म रूपी आप, जीव रूपी लक्ष्मण, माया रूपी श्रीसीता जी साथ में चलती हैं। जीव श्रीलक्ष्मण, ब्रह्म श्रीरामजी की सर्व सेवा करते हैं। परन्तु माया सीता की तरफ ध्यान भी नहीं देते। "*नाहं जानामि केयूर*" इत्यादि, पुनः चित्रकूटादि वनस्थलों में ब्रह्म माया के साथ अनेक क्रीड़ा, एवं भरतादि के द्वारा अनेकों विघ्न अपनी प्रेमकला नाना प्रकार प्रलोभनादि दिखलाते हैं। परन्तु श्रीराम जी व श्रीलक्ष्मण जी के सहित अपनी सत्य प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुए। पुनः अत्रि आदि मुनियों का सत्संग करके अपने वैराग्य की

पुष्टी करते हुए, माया रूपी श्रीसीता जी परमसाध्वी परामाया श्रीअनुसूया द्वारा एक पातिव्रत धर्म में प्रवृत्ति कराते हैं। यह हुआ दूसरा सोपान।

तृतीय सोपान

भैय्या बालक वृन्द! जीव जब तीसरे सोपान पर गति करता है और तपोभूमि दण्डकारण्य (एकांत में प्रवेश करता है और ब्रह्म श्रीराम जी को प्रसन्न करते हुए, अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निश्चय करने के लिए, श्रीराम जी से प्रश्न रूप में कहता है। हे प्रभु—

कहहु ज्ञान विराग अरु माया। कहहु सो भक्ति करहु जेहि दाया।।

"*ईश्वर जीवहि भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाय*"। अर्थात् साधक जीव, अपने आत्मा में परमात्मा के द्वारा कल्पना करके अपने कर्त्तव्य को दृढ़ करता है। और परीक्षा रूप में सूर्पणखा रूपी आसुरी माया "*जा वश जीव परा भवकूपा*" पास पहुँचती है और ब्रह्म रूपी श्रीराम जी जीव रूपी श्रीलक्ष्मण के पास प्रेरित करते हैं। परन्तु जीव श्री लक्ष्मण जी, माया रूपी सूर्पणखा के मायावी स्वरूप को ब्रह्म श्रीराम जी के द्वारा जानकर, "*तिन तन चितव न अनहित जानी*" अन्त में ब्रह्म जीव की दृढ़ता और निष्ठा को देखकर जीव को सहायता स्वरूप निर्देश करता है कि यह आसुरी माया है इसका अपने ज्ञान द्वारा खण्डन करो '*कहा अनुज सन सैन बुझाई*" तब वह जीव आसुरी माया की अवज्ञा करके कुरूप करता है "*तब बहोरि सुर करहि उपाधी*" के अनुसार दैवी प्रेरणा से अहंकार रूपी रावण के द्वारा भक्ति रूपी माया सीता का हरण होता है पुनः ब्रह्म और जीव दोनों व्याकुलता

में व्यग्र चित्त होते हैं और बन–बन में विचरते हुए भक्ति रूपी सीता को खोजते हैं।

अर्थात् श्रीरामजी अत्रिआदि मुनियों से विदा होकर आगे दण्डकारण्य (पञ्चवटी) जाते हैं वहाँ जीव रूपी लक्ष्मण के साथ कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का विचार करते हैं इतने ही में आसुरी माया-रूपिणी सूर्पणखा वहाँ आती है श्रीराम जी लक्ष्मण के पास प्रेरित करते हैं पुनः लक्ष्मण को इशारा देकर उसको कुरूप कराते हैं। पुनः सूर्पणखा जाकर रावण को प्रेरित करती है रावण आकर श्रीसीता का हरण करता है पुनः श्रीराम जी लक्ष्मण के साथ व्याकुल होकर बन बन में भ्रमण करते हैं।

चतुर्थ सोपान

पुनः जीव दीनता नम्रता पूर्वक अपनी ज्ञानेन्द्रियों को मित्र बनाकर कर्मन्द्रियों का दमन करता है पुनः वैराग्य के दृश्य से मन को शान्त्वना देते हुए ज्ञानरूपी मित्र द्वारा अपनी भक्ति को खोज कराके पूरा पता लगाकर निश्चित करता है।

अर्थात् श्रीराम जी सीता के वियोग में दीन और नम्र होकर ज्ञानरूपी हनुमान्, इन्द्रिय रूपी सुग्रीव को मित्र बनाकर कर्मेन्द्रिय रूपी बाली का दमन किए और इन्द्रियों की विषय विलासिता मिटाने के लिये एकान्त पर्वत कन्दरा प्रवर्षणगिरि पर वास किये वैराग्य रूपी प्रफुल्लित वन के नाना प्रकार दृश्य सौन्दर्य को चतुर्मास के स्वरूप में वर्णन करते हुए मन को शान्त्वना देकर सुग्रीव के द्वारा अपनी आत्मतत्त्व रूपा भक्ति भगवती श्रीसीता जी की खोज कराने का प्रबन्ध किए।

पंचम सोपान

पुनः जीव पञ्चम सोपान पर जाकर ज्ञानरूपी हनुमान् द्वारा शरीर रूपी लंका का मंथन किए पुनः अहंकार रूपी रावण के द्वारा हरण हुई श्रीसीता रूपी भक्ति का पता लगाकर पुनः वैराग्य रूपी विभीषण को सखा बताते हुए इन्द्रिय निग्रह रूपी सेतु बाँधकर उर्ध्व-रेता रूपी लंका पर आक्रमण किए और शान्ति रूपी सुवेल पर्वत पर विश्राम किये।

अर्थात् श्रीराम जी हनुमान द्वारा सीता की खोज लगाकर विभीषण को सखा बनाते हुए समुद्र में पुल बाँधकर लंका पर आक्रमण करके सुवेल पर्वत पर मुकाम किए।

षष्ठ सोपान

पुन, जीव षष्ठ सोपान पर जाता है "*षट् दम शील बिरति बहु कर्मा*"। अर्थात नाना कर्मरूपी इन्द्रियों का निग्रह करते हुए काम क्रोधादि लोभ अहंकार रूपी रावण कुम्भकर्ण मेघनादादि शत्रुओं का संहार करके सीता रूपी भक्ति की प्राप्ति करता है पुनः अपने हृदय कमल रूपी पुष्पक विमान में बैठकर सर्वदा के लिए आप्तकाम होकर परमानन्द हो जाता है पुनः इहलोक लीला समाप्त करके वैकुण्ठ साकेतादि स्वधाम गमन करता है। "*जो पाइय सो हरि भगति*"।

अर्थात् श्रीराम जी लंका पर आक्रमण करके नाना शस्त्रों द्वारा रावण कुम्भकर्ण मेघनाद आदि असुरों का संहार करके सीता की प्राप्ति किये और सीता सहित पुष्पक यान में बैठकर अयोध्या अपने स्वधाम की यात्रा किए।

सप्तम सोपन

पुन: जीव अपने अन्त:पुर अयोध्या में पहुँच कर सेवा, श्रद्धा, तपस्या, भक्ति से युक्त होकर परमानन्द सुख का अनुभव करता है *'सुखी न भयों अबहिं की नाईं'*। अथवा *'फिरत सनेह मगन सुख अपने'*।

अर्थात श्रीराम जी अयोध्या में आकर राज्याभिषेक इत्यादि राज्य कार्य किए *"राज बैठ कीन्ही बहु लीला"* । श्रीसीता महाराणी के साथ नाना विलास परमानन्द सत्चित् आनन्द *"गए जहाँ शीतल अमराई"* ।

यही सप्त सोपान हैं यही यही मानस मर्म है यह मनसे मनन करने से यथा *"ज्ञान नयन निरखत मन माना"* । यह ऊपर कहे हुए के अनुसार अपने कर्त्तव्योंका करना होताहै *'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा'*।

भैय्या बालक वृन्द ! अब उपसंहार में देखिए, मानसके मेरे और अपने कर्त्तव्य पर ध्यान दीजिए । मानस का मार्ग, अपनी यात्रा—

यहि महँ सुभग सप्त सोपाना । रघुपति भक्ति केर पंथाना ।।
जौं अति कृपा राम की होई । पाँव देइ यहि मारग सोई ।।

प्रभु हमको अपनी अति कृपा रूपी मनुष्य शरीर दिये हैं। जिस शरीर से हम सब मानस मर्म अर्थात् मानस रूपी मन के सात सोपानों को जानने के लिए समर्थ हुए । प्रथम कृपा तो यह है कि मनुष्य शरीर मिला–*' कबहुँकि करि करुणा नर देही '*। दूसरी अति कृपा कि उत्तम देश, भारतवर्ष आर्यावर्त में, उत्तम कुल में, पुनः उत्तम शरीर, हाथ पाद सर्वांग सुन्दर, पुनः साक्षर भी किए, और अधिक से अधिक कृपा करके अपनी शरण में लिए, अति दुर्लभ साधु संग भी जुटाये हैं। जो संग—

सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दण्ड भरि एकौ बारा॥

जो साधु संग एक निमेष को ही प्राप्त होना दुर्लभ है, परन्तु हमको सदा ही सुलभ है। सदा मानस के सामने घाट पर, जो बुद्धि द्वारा विचार से निर्मित हुआ है।

सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचेऊँ बुद्धि विचारि।
ते यहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि।

अर्थात् सत्संग रूपी चारों तरफ चार घाट बने हैं, उन पर बैठाए हुए हैं। पुनः क्रमशः सोपान में प्रवेश करने की बुद्धि भी प्राप्त है अब तो अपना कर्त्तव्य है कि धीरे-धीरे एक सोपान से दूसरे सोपान पर गति करते हुए क्रमशः अन्तिम सोपान तक उतर कर- "*राम सीय यश सलिल सुधा सम*" पीना है, परन्तु पीना तो अपने ही ऊपर निर्भर है। "*कर्मण्येवाधिकारस्ते*"। कर्म तो अपने ही को करना है। कारण कि-"*कर्म प्रधान विश्व करि राखा*" संसार में कर्म की ही प्रधानता कही गई है-

नर तनु धरि हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषयरत मंद मंद तर॥

नर शरीर पाकर भी यदि भगवान का भजन नहीं किया और विषय में आसक्त हो गये। ऐसे प्राणियों को नीच से नीच बुद्धि वाला बताया जाता है।

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत पशुभिः नराणाम्।
ज्ञानो हि तेषामधिको विशेषो ज्ञानेनहीनाः पशुभिः समानाः॥

मनुष्य शरीर में केवल अपने परलोक साधन के ज्ञान की ही

विशेषता है परिश्रम से पढ़ा लिखा विद्या प्राप्त किया परन्तु आत्मोद्धारका ज्ञान न हुआ तो जैसा पशुहै वैसा पशुके समान मनुष्य भी है।

अधीत्य वेद शास्त्राणि संसारे रागिणश्चये।
तेभ्योपरो न मूर्खोऽस्ति स धर्माः साश्व शूकराः ॥

जो मनुष्य वेद शास्त्र पढ़ते हुए भी संसारासक्त विषयों में ही लिप्त हुआ तो उससे तो घोड़ा और शूकर ही अच्छे हैं। अर्थात् वह नीच पशु घोड़ा और सूकर कूकर से भी हीन है। इत्यादि ग्रन्थकारों ने लिखा है। जीव को ज्ञान प्राप्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं। प्रथम तो उत्तम ज्ञान, जो स्वतः अपने अन्तःकरण से उत्पन्न हो, यथा- "*होइन विषय विराग भवन बसत भा चौथपन*"। और मध्यम ज्ञान ग्रंथ पुराण पढ़ते हुए ज्ञान प्राप्ति हो, पुनः कनिष्ट नाटकादि देखने से भी होता है। इसलिए भगवान् स्वयं मनुष्य शरीर धारण करके प्राणियों को ज्ञान उपदेश के रूप में अनेक नाटकीय चरित्र लीला किए हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो ! भगवान् श्रीरामजी यह मर्त्यलोक में जो लीला किए हैं, वह नाटकीय रूप में "*माया मनुष्यो हरिः*" मायिक लीला किए हैं। देखिए सीता हरण के समय, माया की सीता, माया का यती (रावण) माया के मनुष्य (श्रीरामपरमात्मा) यही तो सारी रामायण है। माया का मृग भागा जाता है। माया का मनुष्य उसके शिकार करने को दौड़ा जाता है। माया की सीता को माया का बाबा जी रावण लेकर भाग जाता है। यह सब खेल नाटक ही तो है। "*जस काछिय तस चाहिय नाचा*"।

भैय्या बालक वृन्द ! परब्रह्म परमात्मा श्रीराम जी जो यह चरित्र नाटक रूप में किए हैं। वह जीव को उपदेश रूप में दृष्टान्त दर्शाया गया है "*सोइ यश गाइ-गाइ भव तरहीं*' प्राणी वही आदर्श को देखकर शिक्षा प्राप्त करेंगे और संसार से उद्धार होंगे। आप लीला किए हैं परन्तु जीव के लिए वही आध्यात्मिक रूप में दार्ष्टान्त बनेगा और जीव का यथार्थ कर्त्तव्य कहा गया है। यथा "*यह तनुकर फल विषय न भाई*" यथार्थ में "*नर तनु भव वारिधि कहँ बेरो*' ।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो ! अब देखिए, मानस का दृष्टान्त, दर्ष्टान्त उसे कहते हैं जो दृश्य देखाया जाता है और दृष्टान्त उसे कहते हैं जो दृष्टान्त के अनुसार कार्य किया जाता है। तो श्रीराम जी जो कुछ इस संसार में चरित्र रचना किए हैं और तद्वत् चरित्र किए हैं वही हम जीवों को दृष्टान्त रूप में देखाते हैं ; प्राणीगण देखो हम जैसा जैसा आचरण व्यवहार करते हैं। वैसाही तुम सबको हमारी तो लीला होगी वा खेल होगा और जीवों को "*सोइ यश गाइ-गाइ भव तरहीं*" । जैसे नारद के प्रति कहा गया है कि-"*मुनिकर हित मम कौतुक होई*' । हमारी तो लीला होगी परन्तु मुनि का परम कल्याण होगा अज्ञान अन्धकार अभिमान नष्ट होगा। भगवान् श्रीराम जी विश्वविमोहनी आदि माया रचना किये मुनि की आसक्ति हुई। आप माया हरण किए, मुनि अज्ञान अवस्था में प्रभु को शाप दिए। पुनः "*दीन्ह ज्ञान हरि लीन्हीं माया*" । तब मुनि को ज्ञान हो जाता है। प्रभु के चरणों में पड़ते हैं प्रार्थना करते हैं कि-"*मृषा होउ मम शाप कृपाला* । भगवान् कहते हैं कि-नहीं नहीं, नारद यह तो मैंने एक खेल किया है। "*मम इच्छा कह दीन दयाला*' । मेरी इच्छा से आप मुझे शाप दिए हैं। '*जब प्रभु माया दूरि निवारी,नहिं तहँ रमा न राजकुमारी*'।

भैय्या बालक वृन्द ! प्रभु की तो लीला हुई और नारद का मङ्गल हुआ। इसी प्रकार भगवान् श्रीराम जी का सब चरित्र लीला रूप में है, मायिक है और हम सबों का कर्त्तव्य है यथार्थ में यही करना है।

भैय्या बालक वृन्द ! अब मानस पर ध्यान दीजिए। मानस के दृष्टान्त और दार्ष्टान्त देखिए—

प्रथम सोपान

राम भगतहित नर तनु धारी। सहि संकट किये साधु सुखारी॥

इस दृष्टान्त में देखिए, श्रीरामजी भक्तों के लिए नर शरीर धारण करके स्वयं साधक रूप से नाना प्रकार कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, इत्यादि स्वयं किए और संतों साधकों ऋषियों से आचरण करवाए। यथा-"*मुनिवर वेश बने अति आछे*"। मुनियों का उत्तम वेश कौपीन इत्यादि सजबूत पहने हैं। तपस्वी वेश में चित्रकूटादि में—

कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लषण सिय अति सुख मानी॥
वल्कल बसन जटिल तनु श्यामा। जनु मुनि वेश कीन्ह रति कामा॥

दो०-लसत मंजु मुनि मंडली, मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥
सानुज सीय समेत प्रभु, राजत पर्णकुटीर।
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर॥

रघुपति चित्रकूट वसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥

अर्थात् भगवान् श्रीरामजी, स्वयं सिद्ध साधक रूप में नाना

कष्ट सहते हुए, अपने आचरणों के द्वारा ऋषि महर्षियों को उपदेश देकर उन सबों का कल्याण किए, और साथ-साथ मुक्ति भक्ति देकर सुखी बनाए। यह तो हुआ दृष्टान्त अब जीव के लिये यथार्थ कर्त्तव्य, इसी को दार्ष्टान्त में देखिए। यथा-"*प्रभु व्यापक सर्वत्र समाना*"। प्रभु भगवान् श्रीराम जी तो समान रूप से सर्वत्र ही विराजमान हैं। प्रभु की प्राप्ति करने के लिए न कहीं जाना है न खोजना है। '*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*"। वह प्रभु तो अपने हृदय में ही बैठे हैं। और बारम्बार कह रहे हैं कि—

बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करैं निष्काम।
तिनके हृदय कमल महँ, करौं सदा विश्राम॥

तब अन्यान्य साधनों का क्या काम है। अन्यान्य कष्ट करने का क्या प्रयोजन है। "*हरेर्नामैव नामैव*"। यथा-"*नाम निरूपण नाम यतनते*'। "*सोउ प्रगटत जिमि मोल रतनते*"। अथवा "*नाम सप्रेम जपत अनयासा*" "*भक्त होहि मुद मंगल वासा*"। और '*ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा*"। अर्थात् नामी की प्राप्ति करने को नाम ही एकमात्र उपाय है। राम का नाम सप्रेम—

राम राम राम राम राम राम राम। राम राम राम राम राम राम राम॥

जिसको मानसकार कह रहे हैं। '*सोरठ* उसको रटो प्रश्न किसको '*दोहा*' दोहै जिसमें अर्थात् "*रामेति वर्णं द्वयमादरेण*"। आदर सहित दो वर्ण (राम, इति) केवल राम "*सब वर्णन पर जोइ*'। जो सब वर्णों के ऊपर है अर्थात् राम—

रामराम राम राम रामराम राम। रामराम रामराम रामराम राम॥

प्रेम से जप करते ही हृदय गद्‌गद् हो जाता है और प्रभु का स्वरूप हृदय में भासित होने लगता है जैसे हीरा का मूल्य हीरा से ही पैदा होता है ऐसे ही नाम से ही नामी प्राप्त होता है अर्थात् नाम भजन के ही प्रभाव से अनायास ही प्रभु रामजी की प्राप्ति हो जाती है और नाम का जापक भक्त आनन्द मंगल का स्वरूप ही बन जाता है। ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करके अपने आप ही सुख सच्चिदानन्द परमानन्द हो जाता है।

भैय्या बालक वृन्द ! अब दूसरा दृष्टान्त देखिए-"*राम एक तापस तिय तारी*"। परन्तु दार्ष्टान्त में देखिए-"*नाम कोटि खल कुमति सुधारी*"। अर्थात् दृष्टान्त रूप में श्रीराम जी मूर्तिमान् होकर एक पाषाण विग्रह अहल्या को एक सुन्दरी स्त्री बनाकर पतिलोक पहुँचा दिए, परन्तु राम नाम, नाम ब्रह्म तो हमारे हृदय में ही सर्वकाल, विराजमान है। जो नाम ब्रह्म को हम '*रामराम रामराम रामराम जपत*' जप करते हमारे सहित कोटिहूँ पाषाण (हृदय) रूपी अहल्या को परम सुन्दरी भक्ति रूपी स्त्री बनाकर परमपति श्रीरामजी के चरण कमलों की सेवा में पहुँचा दी। "*कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती*"। को पिघला कर श्रीरामजी का प्रेमानन्द भक्त बना दिया। देखिए-

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह विशेषे॥

भगवान् श्रीराम को देखे नहीं हैं परन्तु श्रीरामनाम अग्नि रूपी होने के कारण हृदय तरल हो जाता है, स्वाभाविक प्रेमानन्दित होने लगता है। हृदय में श्रीरामजी का साक्षात्कार होने लगता है। "*नाम सप्रेम पियूष हृद तिनहुँ किए मन मीन*"। नाम ब्रह्म के द्वारा

शरीर का मंथन करके "*ब्रह्माम्भोधि समुद् भवम्*" प्रेमामृत द्वारा अपने अगाध हृदय को प्रेम पियूष पूर्ण करके मनरूपी मछली को सुख सच्चिदानन्द बनाए रहते हैं। "*सुखी मीन जहँ नीर अगाधा*"। सर्वकाल के लिये सुखी हो जाते हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! अब तीसरा दृष्टान्त देखिये—

ऋषि हित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्ह बेबाकी ॥

श्रीरामजी स्वयं ऋषि विश्वामित्र आदि तथा जीव मात्र के कल्याण के लिये। सुकेतु नामक राक्षस की सुता ताड़ुका के पुत्रों के सहित सारी सेना का संहार किया। यह हुआ दृष्टान्त, अब दार्ष्टान्त में देखिए—

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलै नाम जिमि रवि निशि नाशा ॥

जीव को सर्वदा दुःख देने वाली दुराशा रूपी ताड़ुका और उसके दुःख रूपी पुत्रों तथा नाना दोषरूपी सेना का नाम ब्रह्म संहार करता है। जैसे सूर्य अन्धकार को नाश करते हैं अर्थात् नाम के प्रभाव से जीव के नाना प्रकार के दोष एवं सर्व दुःख, संसार विषय आशा, दुराशा इत्यादि तत्काल ही नाश हो जाते हैं।

राम नाम के प्रभाव जानि जूड़ी आगि हैं।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि हैं ॥

अर्थात् अहंकार रूपी सुकेत की "*सुतवित नारि ईषणा*" दूरासा रूपी ताड़ुका तथा उसके "*सेनापति कामादि भट*" रूपी पुत्रों, एवं "*दंभ कपट पाखंड*"। रूपी सैन्यों के सहित नाम ब्रह्म शीघ्र ही विनाश कर डालता है। भैय्या ! राम नाम रटो।

भैय्या बालक गण ! अब चौथा दृष्टान्त देखिए—"*भंजेउ राम आपु भव चापू*' श्रीराम जी स्वयं, महा अजय, जो "*सबकी शक्ति शंभु धनु भानी*" । सब महावीरों के पराक्रम को निष्फल किया था उस शिव धनुष को तोड़े थे ।

अब दार्ष्टान्त में देखिए, जो संसार रूपी त्रैलोक्य व्यापी अति भयंकर महामोह माया, जो '*मम माया दुरत्यया*' महा से भी महा अजय संसारासक्ति रूपी धनुष था जो '*मृग लोग कुभोग शरेणहए*' । जीव रूपी मृगों को कुभोग अर्थात् स्त्री पुत्रादि विषय भोग रूपी बाणों से सदा संहार करता था । जो "*महाघोर संसार रिपु, जीति सकै सो वीर*" महा पराक्रमी संसार रूपी शत्रु जिसको जीतना बहुत कठिन है। वह महा शत्रु, नाम ब्रह्म के प्रताप से स्वयं समूल विनाश हो जाता है। "*भर्जनं भव वीजानाम्*' अर्थात् जीव को नष्ट करने वाली जो संसार की नाना प्रकार विषय वासना है वह रामनाम के प्रताप से स्वयं ही नष्ट हो जाती है । यह प्रथम सोपान समाप्त हुआ ।

भैय्या बालक वृन्द ! अब द्वितीय सोपान पर ध्यान दें । प्रथम सोपान अर्थात् बालकाण्ड में, भगवान् श्रीराम जी, प्रवृत्ति मार्ग के समस्त कार्यक्रम यथा विधि विवाहादि नाना प्रकार वर्णाश्रम धर्मों को नाना प्रकार दृष्टान्तों द्वारा प्रस्तुत किए। अब द्वितीय सोपान अर्थात् अयोध्याकांड का चरित्र प्रारम्भ करते हैं। यथा "*तेहि कर फल पुनि विषय विरागा*" । अर्थात् "*पुरुष त्याग सक नारिहीं, जो विरक्त मति धीर*" । वर्णाश्रम से प्रवृत्ति, प्रवृत्ति से वैराग्य लेकर विरक्ताश्रम वानप्रस्थ निवृत्ति मार्ग पर चले जा रहे हैं । अतः एवं मनुष्य वर्णाश्रम से मतिस्थिर करके परम पुरुष विरक्ताश्रम में चले जाते हैं ।

भैय्या बालक वृन्द ! श्रीराम जी पूर्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। सदा पूर्ण काम हैं, जगज्जननी सीता माता साथ में होते हुए भी सदा मायातीत हैं। परन्तु जीव स्वरूप श्रीलक्ष्मण जी, माता, पिता, भाई, कुटुम्ब, समस्त परिवार "*सबकी ममता ताग बटोरी*" अर्थात् "*देह गेह सब सन तृण तोरे*"। जीव मात्र के लिए भगवान् श्रीराम जी आज्ञा देते हैं कि हे जीवगण !

गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोकहँ जानै दृढ़ सेवा॥

गुरु, पिता, माता, भाई, पति, देवता इत्यादि सर्वस्व मुझको ही जानो और सर्व प्रकार दृढ़ता पूर्वक मेरी ही सेवा करना चाहिये !

भैय्या बालक वृन्द ! इसी प्रभु की आज्ञा को जीव रूपी श्री लक्ष्मण जी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु !

गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई॥

"*मोरे सबइ एक तुम स्वामी*"। मेरा और कोई भी नहीं है, आपही मेरे सर्वस्व हैं।

यही हुआ "*सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं*" अथवा "*अनन्याश्चिन्तयन्तोमाम्*" और लोक कल्याण के लिए जो शिक्षा दी गई है कि— "*पुरुष त्याग सक नारिहीं जो विरक्ति मति धीर*" तो श्रीलक्ष्मण जी धीर मति से वैराग्य लेते हैं। स्त्री, कुटुम्ब, धन, ऐश्वर्य, तथा शारीरिक सौख्य। '*देह गेह सब सन तृण तोरे*"। सब कुछ तृणवत् त्याग करते हुये प्रभु श्रीरामजी की सेवा में चल पड़ते हैं। परन्तु सांसारिक प्राणी मोह ममता वश सारे नगरवासी तथा निज परिवार सभी घेरे हुए

अपने सांसारिक माया मोह में बाँधना चाहते हैं। साथ-साथ चल रहे हैं, रोते हैं, नाना प्रकार प्रेम दिखाते हुये अनशन करते हैं। परन्तु-

होइ बुद्धि जो परम सयानी। तिन्ह तन जितव न अनहित जानी॥

श्रीरामजी तो स्वयं ब्रह्म ही हैं, श्रीसीताजी भी मायाधीश्वरी हैं। परन्तु जीवरूपी लक्ष्मणजी किसी की माया ममता के वश नहीं होते। किसी के मोह पास में नहीं फँसते, परब्रह्म परमात्मा श्रीरामजी लोगों को अनेक प्रकार समझाये। परन्तु मोहाबद्ध सांसारिक विषयो, जीव किसी प्रकार नहीं माने। तब *"खोज मारि रथ हाकहुँ ताता"*। ये जीव संसार में विषय बन्धन में मोहाबद्ध प्राणी हैं। विषय कुटुम्बादि में बँधे हुये हैं और मैं तो संसार के उपदेश तथा कल्याणार्थ वैराग्य ले लिया हूँ। इसको यथार्थ दिखाना चाहिये। तभी तो लोगों को शिक्षा मिलेगी। अन्ततोगत्वा, सबको त्यागते हुये, चित्रकूट पधारते हैं। वहाँ श्रीभरतलाल पहुँचते हैं, जिनमें श्रीरामजी का अति ही प्रेम था। वे सारे दल बल गुरु वशिष्ट विश्वामित्रादि के सहित अपनी सारी माया ममता देखाते हैं। इतना तक कि मैं तीनों भाई आपके बदले बन में जाते हैं। परन्तु आप अयोध्या को लौट जायँ। लेकिन श्रीराम जी सत्य प्रतिज्ञ, किसी की एक न मानी सबकी युक्तियों का और मोह ममता प्रेम का खण्डन करते हुये वानप्रस्थ हो ही गये। यह हुआ रामजी का तीव्र त्याग और वैराग्य।

भैय्या बालक वृन्द ! अब दार्ष्टान्त में देखिये, जीव का कर्त्तव्य है, विषय से निवृत्त होना, परन्तु जिस किसी कारण से गृह कुटुम्बादिकों से विरक्ति आवे, तो उसी क्षण स्त्री पुत्रादि सबकी माया ममता

त्यागते हुए, संसारासक्ति से वैराग्य ले लेना चाहिए। क्योंकि स्त्री पुत्रादि ही जीव के बन्धन के कारण हैं। परन्तु श्रीरामजी की तरह दृढ़ वैराग्य लेना चाहिए। नहीं तो माया अपनी कला से गृह कुटुम्बियों के द्वारा अनेक युक्ति करके जीव को पुनः फँसा लेती है।

भैय्या बालक वृन्द! शुक, सनकादि, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, बिल्वमंगल, बाल्मीक, तुलसीदास, इन सबों के जीवनचरित्रों को तथा त्याग को सदा स्मरण करते हुए अपने चित्त को दृढ़ रखना चाहिये। ब्रह्मा के श्रेष्ठ पुत्र सनकादि ही हैं। परन्तु "*विरति विरंचि प्रपंच वियोगी*"। निवृत्ति (वैराग्य) को ही दृढ़ किए। और '*ब्रह्मानन्द सदा लवलीना*" एवं "*ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा*"। संसार यातना से परे, ब्रह्मानन्द परमानन्द सुख का सदा अनुभव करते हुये, जन्म मरण से मुक्त हैं। शुक, जन्म होते ही माता पिता की माया ममता को त्यागते हुए, नवृत्ति (वैराग्य) को ही दृढ़ किये और जरा जन्म मरण दुःखसे रहित होकर सुख सच्चिदानन्द परमानन्द में अद्यावधि विचर रहे हैं। "*कस्य माता पिता कस्य कस्य भ्राता सहोदराः*'। कौन किसका माता, पिता, भाई है केवल "*मात पिता स्वारत रत ओऊ*" अथवा "*स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती*'। एक बार बाल्मीकि जी माता पिता स्त्री सबकी परीक्षा किये। परन्तु सबकी स्वार्थता को जानकर अपने जीवन की कल्याण कामना से सप्तऋषियों की शरण लेकर संसार त्याग दिये। "*आपनि करणी, पार उतरणी*" फलतः "*बाल्मीक भए ब्रह्म समाना*"। के समान अर्थात् ब्रह्मानन्द सुख की प्राप्ति किए। ध्रुव, माता पिता से अपमानित होकर पाँच वर्ष की अवस्था में ही वैराग्य लेकर अपना अभीष्ट सिद्ध किये।

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं ॥

विषय से विमुख वैराग्यवान् प्राणी, इस लोक में सुर दुर्लभ सुखों को भोगते हुए देहान्ते श्रीराम जी के परमधाम "*यद्गत्वा न निवर्तन्ते*" । जहाँ जाने से पुनः मर्त्यलोक में जन्म मरण नहीं होता, ऐसे साकेत वैकुण्ठादि धाम को चले जाते हैं । तो ध्रुव इस लोक में बहुत काल तक अयोध्या नगरी का राज्य भोगते हुए देहान्ते, "*पायो अचल अनूपम ठाउँ*" । ध्रुवलोक प्राप्त किए ।

भैय्या बालक वृन्द ! अब देखिये, बालक प्रह्लाद जिनको "*नाम भरोस सोच नहिं सपने*" । नाम में कितनी दृढ़ता, विश्वास और श्रद्धा, जो कितनी आपदायें सहन करते हुए भी "*एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास*" केवल "*रामनाम जपतां कुतो भयम्*" जो सर्वकाल सर्व आपदाओं से निश्चिन्त रहते हुए ।

रघुपति राघव राजाराम । पतित पावन सीताराम ॥

राम नाम से ही सर्व विघ्नों को हटाते हुए ।

नाम जपत प्रभु कीन प्रसादू । भगत शिरोमनि भे प्रह्लादू ॥

भगवान् श्रीनृसिंह देव परम प्यार से पुत्रवत स्नेह से अपनी गोद में परमानन्द सुख का अनुभव कराते हुए प्रह्लाद को भक्त शिरोमणि बनाए ।

भैय्या बालक गण ! अब बिल्वमंगल को (सूरदास) देखिए, जिन्होंने संसारी विषयों को नेत्र से देखना ही दोष है ऐसा समझकर बाहर के विषय बंधन कारक नेत्रों को फोर ही डाला, और हृदय के

नेत्रों को खोलकर अपने हृदय में ही, *'अस प्रभु हृदय अछत अविकारी'* अपने प्यारे श्यामसुन्दर को प्राप्त करके परमानन्दित हुए। कहते हैं -

जबसे प्यारे ये दिल में तूँ आने लगे।
क्या कहूँ रंग क्या क्या दिखाने लगे॥

और क्या भगवान् श्री श्यामसुन्दर कृष्णचन्द्र की मनोहर लीला को देखने लगे। जो कि उनके हृदय का दृश्य, उनकी कविता सूरसागर से आपको पता लगता होगा कि सूरदास प्यारे श्रीश्याम-सुन्दर के साथ क्या क्या लीला देख रहे हैं। अतएव परमानन्द हो गए।

भैय्या बालक वृन्द! अब कविवर चूड़ामणि श्री गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन चरित्र, जिन्होंने अपने स्वय नवयुवक और परम सुन्दरी रत्न रत्नादेवी स्त्री नवयुवती थी। परन्तु श्रीतुलसीदास जी कह रहे हैं।

दीप शिखा सम युवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहु राम तजि काम मद करहु सदा सतसंग॥

जिनका जीवन चरित्र आप मानस के अन्तर्गत पढ़कर समझ लिए होंगे और जिसका पुष्टीकरण, जगद्गुरु श्री कबीरदास जी किसी संत के बालक (शिष्य) को किसी नवयुवती के पास खड़े देखकर उसको बता रहे हैं। हे बालक!

भाग रे भाग फकीर के बालका कनक अरु कामिनी बाघ लागें।
पकड़के खींच लै पड़ा चिचियायगा बड़ा तूँ मूर्ख है नाहिं भागै॥

शृंगीऋषि गोरखको पकड़के वशकिया कोटि उपाय करे नहीं त्यागै।।
कहैं गुरुदेव यह एक उपाय है बैठि सतसंग में सदा जागै ।।

भैय्या साधु बालक भाग! क्यों खड़ा है तूँ बड़ा मूर्ख है जल्दी भाग अरे संसार रूपी बन में धन और स्त्री रूपी दो बाघ लगते हैं। उनसे बचने का एक ही उपाय है। सत्संग में बैठकर जागते रहो। जैसे दण्डकारण्य में पंपासर पर श्री नारद जी को बताया गया है कि—

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धारि।
तिन महँ अति दारुण दुःखद, माया रूपी नारि ।।

इत्यादि षट् ऋतु रूपिणी कहते हुए उपसंहार में कहा जाता है। "*अवगुण मूल शूल प्रद प्रमदा सब दुःख खानि*"। अतएव स्त्री सब अवगुणों की जड़ है सब दुःखों को देने वाली, दुःखों की खदान है। जीव के लिए स्त्री ही से बंधन का कारण दुःख उत्पन्न होता है।

कदाचिदपि मुच्येत लौह काष्ठादि यंत्रतः।
पुत्रद्वारानिबद्धैस्तु न विमुच्येत कर्हिचित् ।।

लोहा काष्ठ के यंत्र में बँधा हुआ प्राणी, कभी मुक्ति पा भी सकता है। परन्तु स्त्री पुत्र के मोह जाल में फँसा हुआ जीव कभी भी मुक्ति नहीं पा सकता।

भैय्या बालक वृन्द! स्त्री पुत्र से मुक्ति पाने का एक ही उपाय है वैराग्य, "*होइ बुद्धि जो परम सयानी*" तो अवश्य "*पुरुष त्याग सक नारिहीं*"। यदि सत् असत् विवेकिनी बुद्धि तीक्ष्ण हो तो जीव स्त्री को

त्याग सकता है। परन्तु यदि वैराग्य भी तीक्ष्ण हो और धैर्य हो, तब त्याग सकता है सनकादिक, शुक, से लेकर श्री तुलसीदास जी पर्यन्त परम भागवतों वैराग्यवानों के चरित्र का अनुकरण करके निश्चय हो कि।

इन्द्रस्य सुखं नास्ति न सुखं चक्रवर्त्तिनम्।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तवासिनम्॥

इन्द्र को भी सुख नहीं है किम्वा चक्रवर्त्ति को भी सुख नहीं है। कारण कि विषयासक्ति ही, विषय भोग ही दुःख का कारण है। और स्त्री पुत्र ही विषयासक्ति की प्रधानता है। इन्द्र को स्त्री लंपट होने से ही गौतम ऋषि शाप दिए। सर्वाङ्ग में सहस्र भग हो गये, और चन्द्रमा स्त्री लंपट होने के कारण कुष्ट रोग ग्रस्त हुए, "*प्रमदा सब दुःख खानि*" और चक्रवर्त्ति महाराज श्री दशरथ के राम सरीखा पुत्र होते हुए भी, स्त्री पुत्रासक्त होने के कारण अकालमृत्यु के ग्रास बने। ऐसे अनेकों दृष्टान्त होंगे। एकमात्र "*सुखमस्ति विरक्तस्य*"। जो धैर्य प्राणी स्त्री पुत्र से वैराग्य लेकर संसारासक्ति से निवृत्त होकर विरक्ताश्रम भगवान् की शरण ले लिया है वही सुखी है। "*जिमि हरि शरण न एकौ बाधा*"। वह अवश्य सुख शान्ति प्राप्ति किया है। और कहा भी जाता है—

तब लगि कुशल न जीव कहँ, सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहँ, शोकधाम तजि काम॥

जब तक स्त्री पुत्रादि संसारासक्ति शोक का ही घर वह घर द्वार को त्यागकर भगवान की शरण नहीं ली जाती तब तक जीव को स्वप्न में भी सुख शान्ति नहीं होती और प्रवृत्ति का फल भी विषयसे वैराग्य

होना ही जीव का कल्याण बताया जाता है। यथा—"*तेहि कर फल पुनि विषय विरागा*"। अर्थात् स्त्री से तो जन्म ही होता है और विषयों से ही प्रति पोषण होता है। परन्तु वर्णाश्रम गृहस्थी में माता पिता की सेवा, यथा श्रीरामजी "*मात पिता उठ नावहि माथा*" इत्यादि पुण्य का फल वैराग्य ही कहा गया है। इसी से श्रीरामजी स्वयं गृहस्थाश्रम के धर्म आचरण करके दिखाते हुए जीव को उपदेश दिये हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! द्वितीय सोपान में जीव को विषय से वैराग्य होना यही बताया गया है इसी मार्ग पर चलने से जीव इस लोक के जन्म मरण के दुःख से मुक्त होकर अपने स्वस्थान में पहुँच जायगा। "*जहाँ सन्त सब जाहिं*"।

भैय्या बालक गण ! मित्रो ! अब आगे तृतीय सोपान कहा जा रहा है ध्यान दीजिए।

तृतीय सोपान

तृतीय सोपान में यह दृष्टान्त दिखाया जा रहा है।

अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥

जो दण्डक बन में जाकर देवता, मनुष्य, मुनिजनों को प्रिय हो और उनका कल्याण हो। दृष्टान्त में देखिये, भगवान् श्रीराम जी दण्डक वन में जाकर उसकी शोभा बढ़ाए, पावन किये। पुनः खरदूषण त्रिशिरा का संहार किए। अच्छे अच्छे भक्त गीध, शवरी आदि को मुक्ति दिए नारदादि महर्षियों को उपदेश दिये।

भैय्या बालक वृन्द ! अब इसको दार्ष्टान्त में देखिये। जीव

संसारासक्ति से वैराग्य लेकर सारे संसार को पावन *"पुनाति भुवन त्रयम्"* वह तीनों लोकों को पावन करते हुए अपनी तथा संसार की शोभा बढ़ाते हैं और *"मात पिता स्वारथ रत"*। अपने बन्धन करने वाले, माता पिता को भी पावन बनाते हैं। यथा—

कुलंपवित्रं जननीकृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च धन्या।
स्वर्गस्थिता स्तत् पितरोऽपि धन्या येषांकुले वैष्णव नाम ध्येयम्॥

पुनः श्रीरामनाम के भजन प्रभाव से खरदूषण त्रिशिरा रूपी काम, क्रोध, लोभ, तथा पाप समूह विनाश करते हुए। यथा- *"श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरि लोक गत नाम वल विपुल मति मल न परशी"*। जिन श्वपच भिल्लादिका इतिहास वेद पुराण में यथा विधि वर्णित है। यह तृतीय सोपान कहा गया।

चतुर्थ-पञ्चम सोपान

भैय्या बालक वृन्द ! मानस के चतुर्थ और पञ्चम सोपान के दृष्टान्त और दार्ष्टान्त को देखिए।

दृष्टान्त, रूप में श्रीरामजी सुग्रीव, विभीषण को शरणागति में लेकर उनकी रक्षा किए। पुनः बानरों तथा भालुओं के द्वारा समुद्र में पुल बँधवाया। इत्यादि।

भैय्या बालक गण ! अब दार्ष्टान्ति देखिए। जीव श्रीराम नाम के प्रभाव से सुग्रीव विभीषण रूपी अपनी दीनता तथा प्राणीमात्र की दीनता भगवान् को अर्पण कर देते हैं और आप सदा के लिए सुखी हो जाते हैं। पुनः संसार समुद्र माया ममता से तिरते हुए माता के

गर्भ रूपी अगाध समुद्र से सदा के लिए पार चले जाते हैं। यही चौथे पाँचवें सोपान में बताया गया है। "*नाम लेत भव सिधु सुखाहीं*"।

षष्ठ सोपान

भैय्या बालक वृन्द ! अब षष्ठ सोपान का दृष्टान्त और दार्ष्टान्त पर ध्यान दीजिए। दृष्टान्त स्वरूप में यह देखिए। श्रीराम जी रावण के सपरिवार को संहार करके जय स्वरूपा श्री सीता जी को पाए, और अयोध्या जी में आकर राजा हुए और जानकी रानी।

राजा राम जानकी रानी। गावत गुण सुर मुनिवर बानी ॥

देवता मुनि सभी गुण गा रहे हैं।

भैय्या मित्रवर ! अब दार्ष्टान्त में देखिए।

सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती ॥

जीव प्रेम से श्रीरामनाम को स्मरण करते हुए बिना परिश्रम ही, रावण रूपी महामोह की सैन्य "*दंभ कपट पाखंड*" तथा "*सेनापति कामादि*" को अतः स्त्री पुत्रादि माया ममता सभी का संहार करके "*जय पाइय सोइ हरि गति*" हरि भक्ति प्राप्ति करके निष्कंटक त्रैलोक्य के चक्रवर्त्ति सम्राट बनकर निर्भयता पूर्वक परमानन्द सुख अनुभव करते हुए संसार में विचरण करते हैं। "*रामनाम जपतां कुतो भयम्*"। यह षष्ठ सोपान हुआ।

सप्तम सोपान

भैय्या बालक वृन्द ! अब सप्तम सोपान का दृष्टान्त और दार्ष्टान्त पर ध्यान दें।

दृष्टान्त में देखिए, "*राजा राम जानकी रानी*"। श्रीराम जी सुख सच्चिदानन्द परमानन्द, मंगल से प्रसन्न चित्त श्रीअवध में विराजमान हुए।

अब दार्ष्टान्त में देखिए, जीव जब अपने कामक्रोधादि तथा स्त्री पुत्रादि माया ममता से निवृत्त होकर स्वतंत्र हो जाता है और अपनी आत्मा में ही आप्तकाम आत्माराम होकर स्थिर हो जाता है, तब परमानन्द सुख का अनुभव करता है। और भक्ति रूपी रानी, सेवा रूपी सुख प्राप्ति करके अपने हृदय में ही "*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी* प्रभु के "*मुख सरोज मकरंद छवि, करत मधुप इव पान*'। अपने में ही सुख स्वरूप हो जाता है। और तभी—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥

बन जाता है। यथा– '*सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई*"॥ जीव पूर्णकाम हो जाता है। प्रिय बन्धुओ! "*महाघोर संसार रिपु, जीति सकै सो बीर*"। पुनः '*जे पाइय सो हरि भगति*" अब तो फिर क्या कहना है अहा! "*सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं*'।

भैय्या बालक वृन्द! फिर तो जीव के लिए सुख ही सुख है। "*जिमि हरि शरण न एकौ बाधा*"। यही एक सोपान (सीढ़ी) से सात सोपान (सीढ़ी) नीचे उत्तर आने से अपने अगाध हृदय में मानस (मन) में स्थित हो जाता है। "*सुमति भूमि थल हृदय अगाधु*" में '*भरेउ सुमानस सुथल थिराना* जीव वा आत्मा हृदय मर्म मन से गति करके ऊपर वचन में आया और वचन से कर्म में वितरण होकर– "*अहंकार शिव बुद्धि अज मन शशि चित्त महान*' आकाशवत व्यापक होकर सप्त वर्ण में प्रविष्ट होकर अनादि अविद्या में विलीन हो जाने

के कारण दुःख का भाजन हो गया है। वही अहंकार से नीचे सात सोपान आने से-"*जीव धर्म अहमिति अभिमाना*" छूट जाता है। और भक्ति की प्राप्ति करके दासभूत हो जाता है। "*यहि महँ सुभग सप्त सोपाना*" इस मानस में यही सात सोपान वा सात सीढ़ी हैं। जो-"*रघुपति भक्ति केरि पंथाना*" श्रीरामजी की भक्ति का रास्ता जिसमें *आदौ मध्ये च प्रान्ते च हरिः सर्वत्र गीयते*"। आदि से "*जेहि सुमिरत सिधि होइ*" मध्य से "*राम ब्रह्म परमारथ रूपा*" प्रान्ते अथवा अन्त तक "*राम भजे गति केहि नहि पाई*" अर्थात् आदि मध्य शेष तक "*यहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना*' ॥ पुनः "*यहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा*"॥ एवं-

यहि महँ सुभग सप्त सोपाना। रघुपति भक्ति केरि पंथाना॥

मानस का यही त्रिसिद्धान्त है। "*मा-न-स*" मनसा, वाचा, कर्मणा अर्थात् मन में "*प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना*" यह दृढ़ता वचन में "*यहि महँ रघुपति नाम उदारा*"। अतएव "*जिह्वा च राम रामेति मधुरंगायतिक्षणम्*"। राम नाम गान और कर्म से "*रघुपति भक्ति केरि पंथाना*"। अर्थात् श्रीरामजी की भक्ति के सहकार से '*कर नित करहिं राम पद पूजा*" सेवा पूजा करना यही मानस का यथार्थ प्रयोजन है यही है मानस मर्म।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रो! यही मानस का दृष्टान्त और दार्ष्टान्त है। दृष्टान्त रूप में श्रीरामजी प्राणीमात्र को उपदेश देते हुए, स्वयं आचरण करके बताये हैं। और जीव वही आचरण तथा कर्त्तव्य करके संसार से मुक्ति पाया है। मानस वा मन से जीव को इतना कर्त्तव्य करना आवश्यक है। इसी से इसका नाम मानस कहा गया है।

भैय्या बालक वृन्द ! जो अभागे प्राणी मानस के अनुसार अपने जीवन का उद्धार नहीं किये हैं तो कहा जाता है।

वारि मथे घृत होइ वरु, शिकता ते वरु तेल।
विनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

कवि शिरोमणि श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ने अपना मन्तव्य, "*क्वचिदन्यतोऽपि*" जो कहा है। वह अपने अनुभव की सत्य प्रतिज्ञा कर रहे हैं। कि—

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसिमे।
हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरन्ति ते ॥

मैं निश्चित की हुई वस्तु कहता हूँ मेरा वचन कभी भी झूठा नहीं है। जो मनुष्य हरि भगवान श्रीराम जी का भजन सेवा करते हैं, यह "*मम माया दुरत्यया*"। अथवा "*महाघोर संसाररिपु*"। वा "*भवकूप अगाध*"। महाघोर संसार सागर कारागार से तर जाते हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! देखिए गोस्वामी जी नाना दृष्टान्त दार्ष्टान्तों के द्वारा जो "*स्वान्तः सुखाय*"। कहा है वह अन्त में मानस की अवधि में अपने मन को कैसी शान्त्वना दे रहे हैं। और दृढ़ कर रहे हैं। रे मन विश्वास कर देख, "*मोरे मत बड़ नाम दुहूँते*"। जो मैं कह रहा हूँ देख—

पाई न केहि गति पतितपावन रामभजि सुनु शठमना।
गणिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर यवन किरात खश स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारेक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥

पुनः इसी बात को विनय पत्रिका में पूर्ण दृढ़ कर रहे हैं। हे मन—

भलो भली भाँति है जो मोरे कहे लागि है।
मन रामनाम से स्वभाव अनुरागि है॥
रामनाम को प्रभाव जानि जूड़ी आगि है।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है॥
रामनाम सों विराग योग जप जागि है।
वामविधि भालहुँ न कर्म दाग दागि है॥
रामनाम मोदक सनेह सुधा पागि है।
पाइ परितोष न तूँ द्वार द्वार बागि है॥
रामनाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै।
तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै॥

एक मात्र श्रीरामनाम में स्वभाव से ही अनुराग करो तुम्हारी सारी कामना पूर्ण हो जायगी। "*रामनाम को कल्पतरु कलिकल्याण निवास*"। रामनाम भक्तकामना कल्पतरु है कलिकाल में रामनाम ही में कल्याण है।

रामजपु, रामजपु, रामजपु रामजपु रामजपु मूढ़ मन वारवारं।
सकल सौभाग्य सुखखानि जियजानि शठमानि विश्वास वदवेदसारम्

भैय्या बालक वृन्द! मित्रो! इसी श्रीरामनाम को सदा सर्वदा मनमें मनन कीजिये मानस का यही अटल सिद्धान्त है, यही मानस मर्म है।

ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमलप्रध्वंसनं चाऽव्ययं,
श्रीमच्छंभुमुखेन्दु सुन्दरवरे संशोभितं सर्वदा।
संसारामयभेषजं सुखकरं श्रीजानकीजीवनं,
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामाऽमृतम्।।

इस प्रकार श्रीशंकर भगवान् नाम महात्म्य को जानकर सर्वकाल राम राम राम मनन करते हुये, रामनाम का साँगोपाँग दृष्टान्त दार्ष्टान्त को अपने मन में-

रचि महेश निजमानस राखा। पाइ सुसमय शिवासन भाषा।।
सोइ बसुधा तल सुधा तरंगिनि। भव भंजनि भ्रमभेक भुवंगिनि।।
रामचरितमानस यहि नामा। सुनत श्रवण पाइय विश्रामा।।

भैय्या बालक वृन्द! यही रामचरित मानस है। जिसको सुनने से ही विश्राम सुखशान्ति मन को मिलती है। जिस मानस में बारंबार यही कहा गया है। यथा-

श्रुति पुराण सद्ग्रंथ कह हीं। रघुपतिभगति बिना सुख नाहीं।।
सोइ सर्वज्ञ गुणी सोइ ज्ञाता। रामचरण जाकर मन राता।।
नीति निपुण सोइ परम सयाना। श्रुतिसिद्धान्त नीकतेहि जाना।।
धर्मपरायण सोइ कुल त्राता। रामचरण जाकर मन राता।।

प्रिय सज्जनो, तथा भैय्या बालक वृन्द! वेद शास्त्र के यथार्थ सिद्धान्त को वही जाना है, और वही सर्वज्ञ, गुणी, तत्त्वज्ञाता,

परमपंडित, धर्म परायण, कुल पालक, सर्वश्रेष्ठ चतुर बुद्धिमान् है। जिसका मन राम चरणकमल में रत हुआ है और उसी प्राणी का जीवन धन्य है जो मानस के एक-एक सोपान से क्रमशः नीचे उतर रहे हैं। अर्थात् मान, अहंकार, ममता, आसक्ति, विषय विलासिता, द्वेष, अहमत्व को-

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥

लघुता, दीनता, दयालुता, नम्रता, सेवा श्रद्धा, भक्ति,को प्राप्ति करके-

तृणादपि सुनीचेषु तरोरिव सहिष्णुता।
अमानीनां मानदेन कीर्त्तनीयंसदाहरिः॥

अर्थात् "*सबहि मान प्रद आपु अमानी*" जो परम बड़भागी जन इस सिद्धान्त को निश्चय करके सर्वकाल "*रामराम रामराम रामराम जपत*" रामनाम जपते हैं। वही परम भागवत भक्ति महाराणी की प्राप्ति करते हैं। "*सब कर फल हरि भक्ति सुहाई*" सब कर्मों का अन्तिम फल भगवान् श्रीरामजी के चरण कमलों की भक्ति है। वही भक्ति जो प्राप्ति किया है वही जगत पूज्य है।

भैय्या बालक वृन्द ! वह भक्ति मानस के अन्त में है। जो प्राणी (जीव) मानस के मार्ग पर चल रहे और सदा सर्वदा मानस को मननकर रहे हैं। "*राम भक्ति सोइ सुलभ विहंगा*" रामभक्ति उन्हीं को सुगम हुई है। और वही अपने जीवन को कृतार्थ कर रहे हैं। वही जीवन सफल बना रहे हैं। "*जीवन जन्म सफल मम भयऊ*" वे ही जीवन मुक्त हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! भक्ति बहुत अपूर्व अप्राप्य ललब्ध वस्तु है। केवल कह देने से ही भक्ति नहीं हो जाती। जो भक्ति की अपूर्वता,

अलब्धता है वह तो आप सब मानस के द्वारा समझ ही होंगे। जो भक्ति महारानी की अलब्धता तुलसीदास जी ने मानस के उत्तरकांड में श्रीपार्वती जी के प्रश्न द्वारा सूचित हुई है। यथा-

नर सहस्त्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ इक होइधर्म व्रतधारी ॥
धर्मसील कोटिन महँ कोई। विषय विमुख विराग रत होई ॥
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सकृत कोउ लहई ॥
ज्ञानवंत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ ॥
तिन्ह सहस्त्र महुँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन विज्ञानी ॥
धर्मसील विरक्त अरु ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी ॥
सबते सो दुर्लभ सुरराया। रामभगति रत गत मदमाया ॥

भैय्या बालक गण! स्त्री पुत्रादि विषयासक्त संसारी जीव, हजारों में एक किसी की धर्म में रुचि होगी। धर्मात्मा कोटिन में एक किसी को विषय से वैराग्य होगा। कोटिन विरक्तों में एक किसी को अपने आत्मतत्त्व का ज्ञान होगा। कोटिन ज्ञानियों में एक कोई जीवन मुक्त होगा। हजारों जीवन मुक्त में से एक किसी को विज्ञान होगा। इस प्रकार प्रथम वर्णाश्रम, द्वितीय धर्म में रुचि, तृतीय '*तेहि कर फल पुनि विषय विरागा*' विषय से वैराग्य, चतुर्थ वैराग्य से ज्ञान, पंचम ज्ञान से "*ज्ञानानां मुक्तिः*" जीवन मुक्त षष्ठ जीवनमुक्त से अति दुर्लभ विज्ञान प्राप्त होना सप्तम सोपान के अन्तिम भाग में सबसे अति दुर्लभ "*राम भक्ति रत गत मद माया*" भैय्या, मान अहंकार "*रहित काम मद क्रोध*" अथवा "*तृणादपि सुनीचेषु*" निर्माण होकर श्रीरामजी

के चरण कमलों में भक्ति महारानी को प्राप्त करना अति ही कठिन है।

भैय्या बालक वृन्द ! यही मानस के सात सोपान हैं मानस सप्तम सोपानों के अन्तमें सर्व दुर्लभ भक्ति आपको प्राप्त होगी। मानस प्रथम सोपान बालकांड, जन्म से विवाहादि वर्णाश्रम, एवं माता पिता की आज्ञा पालन करना, मानस का द्वितीय सोपान अयोध्याकाण्ड "*धर्म न दूसर सत्य समाना*" धर्म पालन करना पुनः तृतीयसोपान अरण्यकांड, वानप्रस्थ, वैराग्य आश्रम "*पंचवटी कृत वासा*" पुनः चतुर्थ सोपान किष्किन्धाकांड।

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगण उपजे ज्ञाना॥

ज्ञान प्राप्त होना पुनः पंचम सोपान सुन्दरकाण्ड "*बैठे पुनि तट दर्भ डसाई*" योगारूढ़ होना, पुनः षष्ठ सोपान लंकाकाण्ड, में रावणादि रूपी कामनादि अहंकार का संहार करते, हुए, विभीषण रूपी विज्ञान को प्राप्ति होती है। पुनः सप्तम सोपान उत्तरकाण्ड, ज्ञान वैराग्य पूर्वक सुख सच्चिदानन्द दोषरूपी शत्रु रहित, स्वाधीनता रूपी राज्य तथा भक्ति रूपी पाट महारानी भक्ति देवी को प्राप्त करके जीव "*जे पाइय सो हरि भगति*" इस प्रकार भक्ति "*भक्ति तात अनुपम सुखमूला*"। परन्तु बहुत ऊँचे दर्जे में है देखिए, वर्णाश्रम से धर्म, धर्म से वैराग्य, वैराग्य से ज्ञान, ज्ञान से योग, योग से विज्ञान, विज्ञान से जीवन मुक्त, और जीवन मुक्त से परे भक्ति सातवें दर्जे पर भक्ति है। जिसकी प्राप्ति करना अतिही दुर्लभ है, अर्थात् अप्राप्य है। इसलिए यह अति दुर्लभ, भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है।

भैय्या बालक वृन्द ! मानस में सत्यतः कहा जाता है "*भक्ति होइ सुनि अति अनपायनि*"। मानस को सुनने से ही अति अनपायनी अर्थात् अति दुर्लभ भक्ति सहज में ही प्राप्त होती है।

रामचरण रति जो चह, अथवा पद निर्वान।

भाव सहित सो यह कथा, करउ श्रवण पुटपान।

अथवा "*करै कपट तजि गान*"। वह दुर्लभ भक्ति मानस के श्रवण वा गान करने ही से प्राप्त हो जाती है।

प्रिय सज्जनो ! तथा भैय्या बालको ! इतने ऊँचे जो पूर्व में ६६ सोपान कहे गये हैं। जो वर्णाश्रम से ही सोपान वा सीढ़ी बनाई गई हैं। यदि भक्ति महारानी की प्राप्ति की इच्छा किया जाय तो, वर्णाश्रम में से ही "*वर्णानां ब्राह्मणोगुरुः*"। की सेवा करते हुए, वर्णाश्रम से ही सीढ़ी चढ़ना प्रारम्भ करे, पुनः विरक्ताश्रम के अन्तिम सोपान अर्थात् आत्मनिवेदन पर्यन्त पहुँच जाने से भक्ति महारानी प्राप्त होंगी।

भैय्या बालक वृन्द ! "*रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर*"। रामभक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। प्रकाश तथा सुख स्वरूप है।

रामभक्ति मणि उर बश जाके। दुःख लवलेश न सपनेहु ताके।
चतुर शिरोमणि तेइ जग माहीं। जे मणि लगि सुयतन कराहीं॥
सो मणि यदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।
सुगम उपाय पाइवे केरे। नर हत भाग्य देहि भट भेरे॥
पावन पर्वत वेदपुराना। रामकथा रुचिराकर नाना।

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी । ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित जो खोजै प्रानी । पाव भक्तिमणि सब सुख खानी ॥
सब कर फल हरिभक्ति सुहाई । सो बिनु संत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जो कर सतसंगा । राम भक्ति तेहि सुलभ बिहंगा ।
दो०-ब्रह्मपयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहिं ।
कथा सुधामथि काढ़हीं, भक्ति मधुरता जाहि ॥

भैय्या ! साधुसंग करो, मानस को संतो के मुख से सुनो तभी ज्ञान होगा ।

प्रिय सज्जनो ! भगवान् कितने दयालु हैं । हम सबों के कल्याण के लिये कैसा सुगम मार्ग सुन्दर सोपान (सीढ़ी) बनाये हैं प्रथम तो यह शरीर ही सोपान है । "*स्वर्ग नरक अपवर्ग निसेनी । साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, नर तनु भव वारिधि कहँ बेरो*" ॥ पुनः साधना रूपी सोपान वर्णाश्रम से लेकर विरक्ताश्रम पर्यन्त ६६ सीढ़ी बनी हैं जिसमें प्रथम वर्णाश्रम है वर्णाश्रम में ३८ और विरक्ताश्रम में २८ सीढ़ी हैं जिनका पृथक् पृथक् वर्णन है ।

वर्णाश्रम में पञ्चदेव की उपासना कही गई है जो ब्रह्मरूपी श्रीरामजी जीव रूपी श्रीलक्ष्मणजी को आज्ञा दिए हैं ।

प्रथमहिं विप्र चरण अति प्रीती । निज निज धर्म निरत श्रुति रीती ॥

प्रथम में "*वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः*" के चरणकमलों में प्रीति रखते हुये शास्त्र विहित अपने वर्णाश्रम के अनुसार कर्म करे और वर्णाश्रम के लिये भगवान् ने सुन्दर मार्ग बनाया है उसका अनुकरण करें, अर्थात् वर्णाश्रम के लिये जो ३८ सोपान कहे गये हैं वे परम सुन्दर हैं।

प्रिय सज्जनो ! वर्णाश्रम के लिये जो ऊपर उठने को ३८ सीढ़ी बनी हैं उनके विवरण को सुनिए। देखिये मैं सोपानों के नाम कह रहा हूँ आप सब मन लगाकर सुनें, सोपानों के नाम—सौर्य, शाक्त, गाणपत्य, शैव, वैष्णव यह पाँच बड़े बड़े सोपान हैं, इसके अन्तर्गत ३८ सोपान हैं। यथा-*सौर्य १२ शाक्त ७, गाणपत्य ५, शैव १०, और वैष्णव ४,।*

इस प्रकार सोपानों की ३८ श्रेणी हैं, उनमें से जीव प्रथम सौर्य १२ सोपानों में क्रमशः प्रवेश करता है और वैराग्य मार्ग का क्रम बढ़ता है, अर्थात् जैसे सूर्य अपनी द्वादश कलाओं से प्रकाश और तेज से सर्वरस को शोषण करके सबसे अनासक्त रहते हैं, इसी प्रकार जीव सूर्य (सौर्य) की उपासना करके अपने आभ्यन्तर संसाररूपी शरीर के सारे अज्ञान, अन्धकार मोह को दूर करते हुए निवृत्ति को प्राप्त करके सर्व विषयों से पृथक् अर्थात् वैराग्य प्राप्त करके विषयों से विरक्त होता। यथा-"*घालेसि सब जग बारह बाटा*" अतएव "*सर्वेन्द्रियाणि संरुध्य*' यथा-"*नवद्वारेपुरे देही*" क्षेत्र है प्रकाश होने से जीव अपने तत्व को जानता है। यथा-

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरुः सप्तद्वीपाः समन्विताः।
सरिताःसागराःशैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः ॥

इत्यादि "*इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना*" प्रकाश होने से जीव विषय भोगी देवता तथा विषयों से वैराग्य प्राप्त

करता है यह सौर्य नामक प्रथम १२ सोपान हैं इससे उत्तीर्ण होने से जीव आगे उठता है इसके ऊपर का सोपान शाक्त होगा।

द्वितीय शाक्त नामक सोपान है जो सात सोपान में विभक्त है। अर्थात् शाक्त ७ सोपान सप्तदेवी हैं। क्रमशः सप्त देवियों की उपासना करने से "*सत् असत् विवेकिनी बुद्धिः*" बुद्धि देवी महारानी की कृपा से प्राणी अपने अन्तःकरण स्थित आत्मा परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का निर्णय करके हृदयाकाश में स्थित ज्ञान की सप्त भूमिका सह विशुद्ध ज्ञान द्वारा अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ होता है।

छठ दम सील विरति बहु करमा। निरत निरन्तर सज्जन धरमा॥

यह सप्त ज्ञान युक्त शक्ति की उपासना के सात सोपान हैं इनसे उत्तीर्ण होने से जीव इसके ऊपर का सोपान गाणपत्य पाँच सोपानों को प्राप्त होता है।

तृतीय, गाणपत्य नामक पञ्च सोपान है। अर्थात् क्रमशः गाणपत्य पंच सोपान की उपासना करके प्राणी मूलाधार से ब्रह्मरंध्रपर्यन्त पञ्च प्राणों को संयत करता है अर्थात् गुदा स्थान, मूलाधार, अपान वायु में गणेश का निवास है अपान वायु के ही द्वारा पंच प्राण एकत्र होते हैं इस अपान वायु का गुदा के देवता गणेश हैं इन्हीं की सहायता से प्राणी "*प्राणायाम परायणाः*" होकर आत्मा परमात्मा को एकत्र करके योगारूढ़ होता है। यथा–

तत्समं च द्वयोरैक्यं, जीवात्मा परमात्मनोः।
प्रणष्टः, सर्व संकल्पः समाधिः साऽभिधीयते॥

यह पाँच सोपान युक्त पंच प्राण एकत्रकारी गाणपत्य नामक सोपान

उत्तीर्ण हुए जब पंचप्राण, पंचमन, पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचतत्व, यह पाँचहूँ पंचीकर्ण एकत्र हो जाते हैं तब आत्मा परमात्मा दोनों का योग होता है। इसका नाम है गाणपत्य पंच सोपान, इससे उत्तीर्ण होने से जीव आगे सोपान अर्थात् आगे १० सोपान पर गति करता है, जो शिव की उपासना है।

चतुर्थ शैव १० सोपान अर्थात् प्राणी जब क्रमशः शैव १० सोपान शिव की उपासना करता है तब अपनी १० इन्द्रिय निग्रह कर लेता है तब भजनारूढ होता है अर्थात् सेवा का स्वरूप प्राप्त करके विज्ञान जो नवअंगों युक्त नवधा भक्ति भी कही गई है तब सेवा में प्रवेश करता है जो विज्ञान भक्ति का पूर्वार्ध भक्ति ही है। जिसके परीक्षक शिव हैं इस प्रकार जब भक्ति रूपी सेवा विज्ञान की योग्यता जीव प्राप्त करता है तब "*भक्ति मोरि तेहिं शंकर देहीं*" परन्तु "*शंकर भजन बिना नर भक्ति न पावै मोरि*"।

शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई॥

इस प्रकार शैव १० सोपान उत्तीर्ण होने पर शंकर भगवान् कृपा करके भक्ति प्रदान करते हैं तब सर्वोच्च वैष्णव नामक सोपान चार श्रेणी में विभक्त है जो अन्तिम मुक्ति द्वार का सोपान है। "*साधन धाम मोक्ष कर द्वारा*" अर्थात् मनुष्य शरीर का यही अन्त बताया गया है यहाँ वही साधन का शेष स्थान है अर्थात् यही वैष्णव नामक सोपान से सर्वकाल के लिये जीव कोटि से मुक्त होकर ईश्वर कोटि में दिव्य धाम में पहुँच जाता है।

पाँचवाँ वैष्णव नामक सोपान, अर्थात् जब जीव शैव १० सोपानों

से उत्तीर्ण होकर इस वैष्णव नामक उच्च श्रेणी वाले चार सोपानों में प्रवेश करता है तो भगवान् की चार अंग युक्त, सेवा श्रद्धा, तपस्या, और भक्ति यह चारहू मिलकर पराभक्ति महारानी प्राप्ति होती है तब यह जीव कृतार्थ हो जाता है और संसार दुःख जरा मरण से मुक्त हो जाता है।

भगति करत बिनु यतन प्रयासा। संसृतिमूल अविद्या नासा॥

यह भक्ति महाराणी की "*न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः*" परन्तु इस अपूर्व कल्याण देने वाली भक्तिमहाराणी को प्राप्ति करने का एकमात्र उपाय और मार्ग प्रदर्शक गोस्वामी तुलसीदास जी की रचित काव्यकला मानस है। जिसका महत्व कहा जाता है।

जो यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता।
होइहहिं रामचरण अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

परन्तु इस मानस पर पहुँचने के लिए अनेक जन्मों की सुकृति आवश्यक है। '*अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो यान्ति परां गतिम्*'। अथवा "*मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये*"। यह "*मानसकल्पतरो मूलम्*"। के सन्निकट बिना पुण्य पुराकृत भूरि के प्राणी जा नहीं सकता, मानस के तट पर और सर्वोत्तम मनुष्य शरीर होते हुए भी "*गये न मज्जन पाव अभागा*"। परन्तु इसके लिये भी गोस्वामी जी–

जौ नहाइ चह यहि सर भाई। सो सतसंग करै मन लाई।
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ वारा॥

देखिए संसार में जिस किसी का कल्याण हुआ है तो सत्संग से ही हुआ है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि यतन जहाँ जेहि पाई।

"*सो जानव सत्संग प्रभाऊ*"। मति, गति, भक्ति ज्ञान, वैराग्य इत्यादि जहाँ भी जो कुछ मिला है। वह सत्संग से ही मिला है।

वाल्मीकि नारद घटयोनी। निज निज मुखन कही निज होनी॥

बाल्मीकि नारद अगस्त्य सब अपनी-अपनी जीवनी में सत्संग का प्रभाव वर्णन किए हैं अर्थात सत्संग से ही ये अपने जीवन का कल्याण करते हुए महान ऐश्वर्य को प्राप्त होकर जगत पूज्य हो रहे हैं।

प्रिय सज्जनो! विचार करने से दुःख की बात है कि हम सब अपनी ही भूल से कितनी दुर्गति में पड़े हैं और कितनी आपत्तियों को सहन कर रहे हैं। जन्म मरण अर्थात् माता के गर्भ में योनि यातना, पुनः जन्म होते ही बाल यातना, से लेकर यावज्जीवन दैहिक, दैविक, भौतिक नाना यातना भोगते हुए मरणान्ते यम यातना, कुंभीपाकादि नरकों में इस प्रकार-

फिरत सदा माया कइ प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुण घेरा॥

परन्तु, यह जीव इस कर्म बन्धन से पहले—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥

परन्तु अब देखिए यह जीव की क्या दुर्दशा हो रही।

सो माया वश भयो गोसाँईं। बँध्यो कीर मर्कट की नाईं॥

भैय्या बालक वृन्द! यद्यपि माया का अर्थ ही झूठा है। फिर- "*छूट न राम कृपा बिनु*" छूटना अति ही कठिन है।

तब ते जीव भयो संसारी। ग्रंथि न छूटि न होइ सुखारी॥

ग्रन्थि अर्थात् जब से जीव स्त्री पाणि ग्रहण किया है। तभी से स्त्री पुत्रादि मोह बन्धन में संसारी हो गया। न स्त्री पुत्रादि की मोह ग्रंथि छूटती है, न सुख शान्ति पाता है। लोहा के पींजरा में बँधा हुआ तोता की तरह एवं कमर में बँधी हुई मोटी रस्सी से सदा नट के आधीन वानर की तरह यह जीव की दुर्दशा हो रही है। कारण कुछ भी नहीं है। केवल एकमात्र स्त्री का मोह ही लोहा का पिंजरा है और ममता ही मोटी रस्सी है। अपनी कामासक्ति ही नट है। "*विचारे नास्तिकिंचन्*' विचार करने से कुछ भी नहीं है। फिर जीव बँधा है। अर्थात् स्त्री ही एकमात्र बन्धन का कारण है। न स्त्री छूटती है, न जीव का बन्धन छूटता है। और न सुख शान्ति मिलती है।

श्रुति पुराण बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥

वेद, शास्त्र पुराण, इतिहासों में बहुत उपाय, यज्ञ, होम, तर्पण, ज्ञान, वैराग्य योग इत्यादि बताया गया है। परन्तु वह मोह ग्रन्थि छूटती नहीं है। बल्कि अधिक से अधिक मजबूत होती जाती है। अर्थात् प्रथम स्त्री ही में ममता थी फिर स्त्री से पुत्र हुआ। उसमें ममता बढ़ी, पुनः पुत्र की बहू आई उसमें ममता बढ़ी, नाती हुआ उसमें ममता बढ़ी, फिर तो अधिक अधिक बन्धन बढ़ता ही गया। '*पुरुष कुयोगी जिमि उरगारी। मोह विटप नहिं सकहि उपारी*'। अतएव-

जीव हृदय तम मोह विशेषी। ग्रन्थि छूट किमि परइ न देखी॥

स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्यादि मोह ममत्व रूपी घोर अज्ञानन्धकार के

कारण देख तो पड़ता ही नहीं, ग्रन्थि छूटे कैसे। परन्तु इस घोर अन्धकार विनाश होने के लिये मानसकार तीन उपाय बताते हैं। एक तो—"*श्री गुरु पद नख मणिगण ज्योती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती*"। दूसरा—

रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर। बसै गरुड़ जाके उर अन्तर॥

और तीसरा उपाय यह है।

रामनाम मणिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरौ, जौ चाहसि उजियार॥

इस प्रकार यह तीन उपाय मानस में बताये गये हैं।

भैय्या बालक वृन्द! इन उपायों से ग्रन्थि छूटने में कोई सन्देह नहीं होगा निश्चय ग्रन्थि छूट जायगी और जीवन मुक्त हो जायगा। इसके अतिरिक्त, कहा जाता है।

अगर है ज्ञान को पाना तो गुरु की जा शरण भाई॥
जटा शिर पर रखाने से खाक तन में रमाने से,
सदा फल मूल खाने से कोई ना मुक्ति को पाई॥
अगर है राम को पाना तो गुरु की० ॥१॥
बने मूरत पुजारी हैं तीर्थ यात्रा पियारी है,
करैं व्रत नेम भारी हैं भरम मन का मिटै नाही।
अगर है राम को पाना तो गुरु की० ॥२॥

कोटि सूरज शशि तारा करैं परकाश मिल सारा,
गुरु बिनु घोर अन्धारा न प्रभु का रूप दरशाई।
अगर है राम को पाना तो गुरु को० ॥३॥

ईश सम जानि गुरुदेवा लगा तन मन करो सेवा,
ब्रह्मानन्द मोक्षमेवा मिलै भवबन्ध कटि जाई।
अगर है राम को पाना तो गुरु की जा शरण भाई।।४॥

भैय्या बालक वृन्द ! सब कुछ होते हुए यदि श्रीगुरुदेव की शरण नहीं ली जायगी और श्रीगुरुदेव के नखमणि चन्द्रिका का प्रकाश नहीं होगा, तो परम प्रकाशपुञ्ज श्रीराम नाम माणिक की प्राप्ति ही नहीं होगी "*चक्षुरुन्मीलित येन*" ज्ञान नेत्र तो श्री गुरु के ही द्वारा खुलैगा।

राकाशशि षोडश उगहिं, तारागण समुदाय।
सकल गिरिन दव लाइए, बिनु रवि रात न जाय॥

परन्तु ऊपर कहे हुए मणियों के प्रकाश को प्राप्त करने के लिए जन्मान्तरों के सुकृतों की आवश्यकता है। यथा-"*अनेक जन्म संस्कारात्, सद्गुरुः सेवते बुधैः*"। अनेक जन्मों के सुकृत संग्रह होने से सद्गुरु के चरणों में मन लगता है और नखमणि का ध्यान होता है। नहीं तो जीव गुरु में मनुष्य भावना करके गुरु में काम क्रोधादि छिद्रान्वेषण करने लगता है। और भक्तिमणि में नाना प्रकार अविश्वास कर बैठते हैं। कारण कि "*न तस्य प्रतिमाऽस्ति*"। और बिनु विश्वास भक्ति नहीं। भक्ति मणि प्राप्त ही नहीं होगी। तीसरा

उपाय रहा रामनाम मणि का परन्तु "*अल्ल बल्ल सब कहतु हैं राम कहत अलसाइ*"। राम राम कहते समय आलस्य तंद्रा घेर लेती है। परन्तु जैसा भी हो-

भाव कुभाव अनख आलसहू। राम जपत मंगल दिशि दशहू॥

आलस्य तन्द्रा भाव कुभाव कैसाहू केवल राम-राम रटो, यही एक मात्र, उपाय है। इसी को मानसकार बता रहे हैं "*राम भजे गति केहि नहिं पाई*"। अतएव रामनाम भजन करके सभी गति पाये हैं "*श्वपच खलभिल्ल यवनादि हरि लोकगत नाम बल विपुल मति मल न परसी*"। केवल रामनाम के ही प्रभाव से महामहापापियों ने भी सुन्दर गति प्राप्त की है। वही त्रैलोक पावन राम नाम को "*महामंत्र जेहि जपत महेशू*"। वह रामनाम का रामतारक महामंत्र है जिसके जापक देवदेवेश महादेव शंकर भगवान हैं। मानसकार जो अपने ग्रन्थ का नाम मानस रखते हैं। मानस का अर्थ, मा. न. अर्थात् में नहीं, स. अर्थात् वह, वह रामनाम, जिसको मानस का प्रथम छन्द लिखा जाता है। "*सोरठ*" अर्थात् सोरट, (क्या रटूँ) "*दोहा*" दोहा क्या, है दोहै जिसमें, अर्थात् रकार, मकार, राम, अर्थात् "*रामरामरमु, रामरामजपु, रामरामरटु जीहा*"। मन से राम राम मनन करो रमो, वाणी से रामराम जपो, कर्म से रामराम रटो, सोरठो

हे जिह्वे रससारज्ञे! सर्वदा मधुर प्रिये।

मधुरं मधुराक्षरं श्री रामनामामृतं पिव॥

हे जिह्वे! तुम रसस्वादी, मधुररस पीने वाली हो, देख मधुर से मधुर अतिशय मधुर रामनामामृत सर्व काल पिव।

भैय्या बालक वृन्द! मानसकार ने सर्व प्रथम यही छंद लिखा है। "*सोरठ*" इसी को रटो—

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन॥

जिसके सुमिरण करने से सर्व सिद्धि होती है और सभी सिद्ध होते हैं।

साधक नाम जपहिं लव लाए। होहिं सिद्ध अणिमादिक पाए॥

सबको अणिमा गरिमा आदि सर्वसिद्धि प्राप्त होती है सुमिरन करके श्रेष्ठ हस्ती मुख, अर्थात् गजमुख होने से भी गणेश बुद्धि समूह एवं सर्व शुभगुण मन्दिर हुए। वही श्री रामनाम देव हमारे ऊपर कृपा करो। "*नाम प्रभाव जान गणराऊ*" गणेश नाम के प्रभाव को अच्छा जानते हैं। और रामनाम के ही प्रभाव से प्रथम पूज्य हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! वही रामनाम मानस में आदि से मध्य और अन्त तक रक्खा गया है। आदि में तो "*जेहि सुमिरत*" कहा गया। मध्य में देखिये। अयोध्याकांड में '*रामनाम महिमा सुर कहहीं*' देवता लोग भी रामनाम की ही महिमा गा रहे हैं। अब अन्त में उत्तरकाण्ड में देखिये। "*कहि नाम वारेक तेपि पावन*" अतएव "*मत्वा तद्रघुनाथ नाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये*" मानस के रचयिता कवि अपनी दृढ़ता एवं निश्चित किया हुआ अटल सिद्धान्त आपको बता रहे हैं।

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

भैय्या ! पानी को मंथन करने से घी निकल सकता है, बालू को, कोल्हू में पेरने से तेल भी निकल सकता है ? इन सब असंभवों

का संभव हो सकता है। परन्तु विना रामनाम भजन किए संसार सागर से कभी भी कस्मिन् काल में भी निस्तार नहीं पा सकता। यह निश्चित किया हुआ अटल अकाट्य सिद्धान्त है।

भैय्या बालक वृन्द! "*आदौ मध्ये च प्रान्ते च हरि सर्वत्र गीयते*" आदि वर्ण बोध में यही पढ़ा गया है। सवेरे उठो भगवान् का नाम लो, '*प्रातःस्मरामि रघुनाथ नाम*' मध्य में पुराणादिकों में।

श्रीराम राम रघुनन्दन रामराम श्री रामराम भरताग्रज रामराम।
श्रीराम राम रण कर्कश राम राम श्री राम राम शरणं भव रामराम॥

अतएव राम राम भजो, और अन्त में देखिये। वेदान्त—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
सह देवमात्म बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

जिन परमात्मा ने सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न किए और ब्रह्मा ने वेदों का संप्रदान किया, उन बुद्धि के प्रकाशक परमात्मा की शरण को मैं मुमुक्षु प्राप्त होता हूँ। जिनको आदि में वर्ण बोध मध्य में पुराण, अन्त में वेद सभी कह रहे हैं कि उन्हीं परब्रह्म परमात्मा श्रीराम जी के नाम रूप लीलाधामादि किसी प्रकार शरण लो। "*भजतहि कृपा करिहहिं रघुराई*" भैय्या—

श्रुति पुराण सद्ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।
कमठ पीठ जामहिं वरु वारा। वंध्या सुत वरु काहुहि मारा॥
फूलहि नभ बहुविधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥

सब असंभव का संभव हो सकता है। परन्तु भगवान् से प्रतिकूल जीव कभी भी सुखी नहीं हो सकता।

भैय्या बालक वृन्द! जब यह बिल्कुल निश्चय सिद्धान्त हो चुका है, सर्व सम्मति से ठीक माना गया है। तो हम नहीं मानें, नहीं करें यह हम सबों की कितनी बड़ी भूल है। फिर भी अपनी भूल न मानते हुए '*कालहिं कर्महिं ईश्वहिं मिथ्या दोष लगाइ*''। प्रभु तो राज राजेश्वर ईश्वर हैं, राज्य शासन की दण्ड विधि है। "*साम दाम दण्ड विभेद*'' राजनीति है प्रजा अपराध करे, दण्ड विधान किया जायगा, नियम बना है। यदि राज्य शासन न हो तो प्रजा स्वभाव से ही नष्ट हो जायगी। "*राज कि रहहि नीति बिनु जाने*'' और बिना राजनीति के राज्य भी नष्ट हो जाता है।

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान यथारथ ॥

प्रभु श्रीरामजी सम्पूर्ण नीतिज्ञ हैं। राजराजेश्वर त्रैलोक चक्रवर्ति हैं। इतना बड़ा राज्य कैसे शृंखला शून्य करेंगे। शासन सुरक्षण राजनीति है। राज्य प्रतिज्ञा अटल होती है। "*वाचा सार महीपतिः*'' राजा की प्रतीज्ञा ही सार है, वही धर्म है, भगवान् श्रीरामजी प्रतिज्ञा करते हैं कि जो राज्य की अवज्ञा करेगा, राज्य नियम से प्रतिकूल होगा। "*काल रूप मैं तिन्ह कहँ भ्राता*''। जीव को पाप कर्म का फल चौरासी लक्ष योनियों में नाना नरकों में नाना प्रकार ताड़ना देने वाला मैं हूँ।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानै जोइ ॥

वही हमारा अनन्य सेवक है, वही परम प्रिय है। जो हमारा शासन, हमारी आज्ञा पालन करता है। '*आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा*' आज्ञा से अधिक अन्य सेवा नहीं है।

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो तथा सज्जन वृन्द ! वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास सभी प्रभु की आज्ञा हैं। श्रुति, स्मृति. सभी प्रभु की आज्ञा है। उसी में विधि, निषेध, जो आपके लिये बताया गया है, वही आपका कर्त्तव्य है। भगवान् बता रहे हैं।

जौं परलोक यहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू ॥

भैय्या, यदि इस लोक परलोक में सुख चाहते हैं तो हमारा वचन दृढ़ता पूर्वक हृदय में धारण करें, अर्थात् करें, देखिये, बहुत सुगम उपाय है।

सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुराण श्रुति गाई ॥

बहुत सुलभ और बहुत सुख देने वाली, हमारी भक्ति वेद,शास्त्र पुराणों में बताई गई है।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। योग न मख जप तप उपवासा ॥

केवल *'सरल स्वभाव न मन कुटिलाई। यथा लाभ सन्तोष सदाई'*॥ विचार करो, देखो, समझो, भक्ति मार्ग में क्या परिश्रम है। योग, यज्ञ, तप, उपवास करना नहीं है। एकमात्र कुटिलता को त्याग दो, स्वभाव सरल कर लो और जितना आया उतने ही में सुख से वर्ताव कर लो। *'न शोचति न काँक्षति''* अधिक के लिये न शोच करो न आकाँक्षा ही रखो। और—

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृण सम विषय स्वर्ग अपवर्गा ॥

स्वर्ग वैकुण्ठादि की भी कामना न करते हुये सदा सज्जन सन्तों का संग करो।

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसे॥

भगवान् कहते हैं कि जो प्राणी ऊपर कहे हुए नियम के अनुसार वर्ताव करते हैं। वे परम सज्जन प्राणी मुझे इतने प्रिय हैं जैसे लोभियों को धन प्रिय होता है।

भैय्या बालक वृन्द! प्रिय मित्रो, भगवान् के ही प्रियत्व में अपना कल्याण है. उनकी प्रसन्नता ही अपना मंगल है। और संसार तो "*क्षणे रुष्टाः क्षणे तुष्टाः*"। क्षण भंगुर है। केवल "*स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती*"। स्वार्थ से ही सब प्रेम करता है। परन्तु "*हेतु रहित जग युग उपकारी*"। बिना स्वार्थ के तो दो ही पर उपकार करते हैं एक तो भगवान् दूसरे संतजन, इन सब बातों को मन लगाकर पढ़ना, समझना और करना चाहिए। क्योंकि "*कर्म प्रधान विश्व करि राखा*" संसार में कर्म ही प्रधान कहा गया है, जो जैसा कर्म करेगा वह वैसा फल भोगेगा।

भैय्या बालक गण! तथा प्रिय सज्जनो, जो प्राणी, मानसकार के इतने दृष्टान्त, दार्ष्टान्तों तथा सिद्धान्त को पढ़ते सुनते जानते हुए-

एतेहु पर करिहैं जे अशंका। मोहि ते अधिक ते जड़ मतिरंका॥

यदि उनका संदेह शंका भ्रम निवृत न हुआ तो वे मुझसे भी अधिक पाषाण हृदय जड़ मति अधिक-अधिक बुद्धि के दरिद्र हैं, गए बीते है "*मूरख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहिं विरंचि सम*"। जिनका हृदय शून्य है तो ब्रह्मा ही गुरु क्यों न हो परन्तु उनके हृदय में ज्ञान हो ही नहीं सकता।

भैय्या बालक वृन्द! रामचरित मानस तो आप पढ़ते ही होंगे। मानसके नाना प्रकार के दृष्टान्त एवं दार्ष्टान्तों,तथा सिद्धान्तों के द्वारा

आपको पूरा पता लगा होगा कि संसार के सभी पदार्थ स्त्री पुत्रादि झूठे सम्बन्धी हैं। सच्चा सम्बन्ध तो एक भगवान् से ही है, और बारम्बार मानस का पारायण किया करें इससे और भी दृढ़ता होती जायगी। मानस में यह निश्चय किया हुआ है।

भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीयराम पद प्रेम, अवसि होइ भव रस विरति॥

तुलसीदास जी कह रहे हैं, जे प्राणी नियम से श्रीभरतलाल के परम पावन चरित्र को श्रवण, मनन, पठन-पाठन करते रहेंगे, वे अवश्य, निश्चय करके संसारी विषय स्त्री पुत्रादि से वैराग्य लेकर ऐकांतिक श्रीराम जी के चरण कमलों के प्रेमी होंगे। और शंकर भगवान् कह रहे हैं—

उमा राम प्रभाव जेहिं जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना॥

श्रीरामजी के परम उदार '*अतिकोमल रघुबीर स्वभाऊ*' स्वभावको जानता है। उसको राम भजनके सिवाय कुछ अच्छा ही नहीं लगता—

राम चरण पंकज प्रिय जिनहीं। विषय भोगवश करहिं कि तिनहीं॥
रमाविलास राम अनुरागी। तजत वमन इव नर बड़भागी॥

भैय्या बालक वृन्द! मानस पढ़ने से आप श्रीरामजी के परम पावन उदार स्वभाव को जान लेंगे। फिर तो आप स्वयं ही अनुभव द्वारा निश्चय करके संसार से विरत होकर अन्त में यही कहेंगे। "*सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं*" तब अपनी भूल और त्रुटि याद होगी। दिशा भ्रम छूट जायगा, और यथार्थ मार्ग सामने आ जायगा, विषयानन्द से मुक्त होकर ब्रह्मानन्द सुख अनुभव होने लगेगा। मानसकार कह रहे हैं।

सुनहिं विमुक्त विरत अरु विषयी। लहहिं भक्ति गति संपति नई॥

विषयासक्त गृहस्थ यदि मानस सर्वदा सुनेंगे उन्हें बहुत धन सम्पत्ति मिलेगी परन्तु दैविक सम्पत्ति, "*दैवी सम्पद् विमोक्षाय*" जिस सम्पति से-

सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं॥

"*जहाँ सन्त सब जाहिं*"। यदि विरक्त साधक मानस सुनेंगे तो उनको वह भक्ति मिलेगी जो "*जेहि खोजत योगीश मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव*" अतएव-

सो मणि यदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥

मानस के श्रवण मनन से श्रीराम जी की कृपा साध्य प्रेमाभक्ति मिलेगी। जिस भक्ति की शुक सनकादि याचना करते रहते हैं। "*प्रेम भक्ति अनपायनी, देहु हमहि श्रीराम*'।

यदि मानस परायण विमुक्त प्राणी जो "*त्याग वैराग्य दुर्लभाः*" एवं सर्वारंभ परित्यागी हैं। वे विदेह मुक्त होंगे। कैवल्य परम पद प्राप्त करेंगे। जो-

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। वेद पुराण निगम आगम वद॥

वह परमपद परमधाम को प्राप्त होंगे। इसलिए-

भैय्या बालक वृन्द! कविवर श्रीतुलसीदास जी जीव मात्र, तथा वक्ता श्रोता दोनों के अटल दृढ़ विश्वास के लिए, अपनी सत्य प्रतिज्ञा करके कह रहे हैं "*विनिश्चितम् वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे*" मैं मानस के माहात्म्य तथा यथार्थता का विशेष निश्चय करके सत्य

कहता हूँ, जो रामचरित मानस में लिखा है वह मेरा वचन कस्मिन काल कभी भी अन्यथा नहीं है। सत्यं सत्यं पुनः सत्यम्

भैय्या बालक वृन्द ! सज्जनो, हमारे परम मित्रो आप रामचरित मानस को अनुभव में लाइए। सारे भारत वर्ष से लेकर देश देशान्तर मानस का सत्य ही अनुमान किया है और सहस्त्र सहस्त्र प्राणी एक मुख सत्र सत्य ही कह रहे हैं।

भैय्या बालको तथा सज्जनो ! आप सबों ने भी यदि मानस के यथार्थता को समझकर अनुभव किया तो निश्चयात्मक प्रतीति होगी और आप भी सत्य कहेंगे। शंकर भगवान् यही कह रहे हैं।

उमा कहौं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना ॥

परन्तु यह ध्रुव है।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥

और "*प्रीति बिना नहि भक्ति दृढ़ाई*" इसलिए आप अनुभव करके स्वयं समझ लेगें तो दृढ़ विश्वास आप ही होगा।

भैय्या बालक वृन्द ! मानस आप सदा सर्वदा पढ़ें, मानस में सबसे बड़ा अमूल्य रामनामामृत है। "*यहि महँ रघुपति नाम उदारा*" इसमें परम पावन श्रीरामनाम ही संपुट किया गया है। जो "*रामनाम कलि अभिमत दाता*"। कलिकाल में सब प्रकार मनोरथों को पूर्ण करने वाला है जो रामनाम के माहात्म्य को '*राम न सकहिं नाम गुण गाई*' राम स्वयं नाम महिमा नहीं कह सकते हैं। जो राम नाम के प्रभाव से काक जी कहते हैं। "*सुखी न भयउँ अबहि की नाईं*" और जो राम नाम को उलटा मरा मरा जपते हुए कहा जाता है

"*वाल्मीक भये ब्रह्म समाना*" वाल्मीक ब्रह्म रूप हो गए। तुलसीदासजी स्वयं पूर्व में क्या थे वर्तमान में क्या महत्व प्राप्त किये हैं यह रामनाम ही की महिमा तो है। "*जो बड़ होत सो राम बड़ाई*" राम स्वयं अथवा रामनाम ही से संसार में सुख ऐश्वर्य बड़प्पन प्राणी प्राप्त किए हैं, "*सोइ रघुनाथ भक्ति श्रुति गाई*" वही राम की भक्ति श्रुति वेद पुराण गान करते हैं और हमको आदेश देते हैं कि "*रामहि सुमिरिय गाइय रामहि*" रामही को सुमिरण करो राम नाम ही गान करो, राम ही का गान करो, रामनाम मनन करो, तुलसीदास का मानस तो राम नाम ही का खजाना है।

अन्यान्य कवियों ने भी संसार में स्त्री पुत्रादि के बंधन से मुक्ति पाने के लिए एक मात्र रामनाम ही मार्ग बताया है। देखिये निर्गुण उपासक जगत गुरु श्रीकबीरदास जी अपने बीजक में कह रहे हैं।

जगत है रात का सपना। समुझ मन कोई नहिं अपना।
कठिन है मोह की धारा। बहा सब जात संसारा॥
घड़ा ज्यों नीर का फूटा। पात ज्यों डार से टूटा।
नर ऐसी जान जिन्दगानी। सबेरा शोच अभिमानी॥
देखि मत भूल तनु गोरा। जगत में जीवना थोरा।
त्यागि मद मोह कुटिलाई। रहो निःसंग जग भाई॥

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणेः जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसंगः॥

स्वजन परिवार सुत दारा। सभी एक रोज हो न्यारा।

निकलि जब प्राण जावैगा। कोई नहिं काम आवैगा॥
देखि मति भूल यह देहा। करो तुम राम से नेहा॥
कटै जग जाल की फाँसी। कहैं गुरुदेव अविनाशी॥

भैय्या बालक वृन्द ! मित्रो ! इत्यादि, इत्यादि नाना दृष्टान्त द्राष्टान्त द्वारा मानस में समझाया गया है फिरभी, "*किमि समुझै यह जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ़*" तथा "*तदपि कही गुरु बारहिं बारा*" के अनुसार यथार्थ में मानस में श्रीगुरु कृपा पर ही आधारित है। दृष्टान्त जैसे खेत में हमने अच्छे से खात माटी लगाया और मजबूत मेड़ बाँधा कियारी बनाया हल से जोतकर अच्छे से आवाद किया परन्तु गेहूँ चना मटर अथवा धान का बीज नहीं बोया तो कमाया हुआ खेत है उसमें घास जोर तोर से हुई परन्तु घास हमारे काम की नहीं होगी वह गोरूही खायँगे परन्तु हमने अज्ञानता बश घास को ही देखकर आनन्द मान बैठे हैं, यह भूल है।

भैय्या बालक गण ! द्राष्टान्त देखिए हमारा शरीर ही अथवा हृदय ही खेत है हमने खाद माटी घास आवाद स्वरूप नाना तीर्थ व्रत यज्ञ धर्मानुष्ठान किया। यथा-

तीर्थाटन साधन समुदाई। योग विराग ज्ञान निपुनाई॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संयम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या विनय विवेक बड़ाई॥

इत्यादि फलतः घास स्वरूप नाना धन संपति ऐश्वर्य तथा

पुत्र कलत्र बहुत बिशाल प्राप्त किया तथा-

अर्ब खर्ब तक द्रव्य है उदय अस्त तक राज।
जौं तुलसी निज मरण है फिरि आवे केहि काज॥

वह घास रूपी दूसरे ही के काम में आयेगी अपनी लाभ कुछ भी नहीं। यथा-"*तेरे सफर में सवारी की खातिर काँधे पै ठठरी का ठेला रहेगा*"। मरने के पश्चात् तो पुराना जीर्णशीर्ण बाँस की फठरी का एक ठेला चारजन काँध पर धरकर मसान में पहुँचा देंगे, बस "*मूठी बाँधे आया वन्दे हाथ पसारे जायगा*" यही संसार की लीला है। "*पुनरपि मरणं पुनरपि जननं*' अनादिकाल से आज तक चल रहा है।

भैय्या बालक वृन्द! इस शरीर रूपी क्षेत्र का किसान है श्रीगुरु जी इस शरीर रूपी क्षेत्र में बीज स्वरूप श्रीमंत्रराज का उपदेश करते हैं अर्थात् भक्ति का बीज रूप मंत्र द्वारा श्रीराम नाम का बीज वपन करते हैं। यथा -"*श्रीरामनामाऽखिलमंत्र वीजं*" इसी मंत्र से हृदय क्षेत्र में भक्ति उत्पन्न होती, भक्ति से प्रेम उत्पन्न होता है पुनः प्रेम से भगवान् श्रीराम जी की प्राप्ति होती है। '*तव यह जीव कृतारथ होई*" यही अपना धन है जिससे आत्मा इहलोक और परलोक में सुखी होता है यह श्रीगुरु कृपा से होता है।

श्रीरामः शरणं मम

श्रीरामचन्द्र चरणौ शरणं प्रपद्ये

श्रीरामायनमः

यही मंत्रत्रय श्रीगुरु जी से प्राप्त होता है, यदि कहीं किताब में

पढ़कर मुखस्थ कर लिया तो वह वैसाही विफल है जैसे बिना बछरा के निकाला हुआ गौ का दूध शुद्ध नहीं होता अर्थात् भगवान ग्रहण नहीं करते हैं वह दूध भगवान् को भोग नहीं लगता है। ऐसाही बिना गुरु मुखारविन्द से उच्छिष्ट नहीं होने से अर्थात् गुरु मुख से नहीं सुनने से वह मन्त्र फलदायक नहीं होता है। अथवा गुरु से ही गुरु मंत्र दीक्षा लेना चाहिए और भी "*पंचस्थाने गुरुविप्रो दीक्षा शिक्षाश्च वैष्णवाः*" अर्थात् कुल गुरु, (1) विद्या गुरु, (2) यज्ञादि गुरु, (3) तीर्थ गुरु, (4) (पंडा) और जन्मदाता अर्थात पिता गुरु यथा—"*सर्वेषांच गुरुणांच जन्मदाता परो गुरूः*" इन पंच स्थानों में ब्राह्मण गुरु होगा परन्तु "*दीक्षाशिक्षा च वैष्णवाः*" अर्थात् मुक्ति भक्ति आत्मकल्याण के लिए विरक्त वैष्णव गुरु होगा। यथा—"*विद्यादाता मंत्रदाता ज्ञानदोः हरिभक्तिदः*" आत्म कल्याणकारी विद्या साथही मंत्र, आत्मा परमात्मा का ज्ञान और भगवान श्रीराम जी की भक्ति अर्थात् मंत्र दीक्षा और आत्म कल्याण की शिक्षा देने वाला गुरु विरक्त वैष्णव होना चाहिये।

पुनः षडाक्षर श्रीराममंत्र तथा प्रपत्ति, अर्थात् प्रपत्ति युक्त मंत्रार्थ मनन करते हुए मंत्र जपना चाहिए।

अतः षडाक्षर मंत्रराज श्रीराम मंत्र साधारण प्रति दिन ६००० छः हजार जपना चाहिए।

श्लो०—सीतानाथ समारंभां रामानन्दार्य मध्यमाम्।
अस्मादाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परंपराम्॥

अथ श्रीगुरु पंच संस्कार

मनुष्य जीवन की दिन चर्य्या

मनुष्य मात्र के ही लिए दैनिक अर्थात् प्रति दिन अपने जीवन का सुधार तथा कल्याण करना एकान्त वाँछनीय है। यथा-"*जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवनि सोइ। रामपदारविन्द रति करति स्वभावहिं खोइ*" ॥ अर्थात् आचार्याधीश्वरी श्रीजनकनन्दिनी जिनकी कृपा कटाक्ष को देवता प्रतीक्षा करते रहते हैं। यथा-'*श्लो०-लोके वनस्पति वृहस्पति तारतम्य, यस्याः कटाक्ष परिणाम मुदाहरन्ति। सा भारती भगवती तु यदीय दासी, तां देव देव महिषी श्रियमाश्रयाम्*' ॥ वह जगज्जननी आदि शक्ति श्रीसीता जी भी अपने ऐश्वर्य को त्यागकर जगतपिता परमात्मा भगवान श्रीराम जी अर्थात् अपने प्राण प्रियतम प्रभु की सेवा करती हैं। यथा-"*जानति कृपा सिंधु प्रभुताई। सेवति चरण कमल मनलाई*" ॥ चरण कमल की सेवा करती ही रहती हैं। तथा-'*श्लो०-कोशलेन्द्र पद कंजमंजुलौ, कोमलावज महेश वन्दितौ। जानकी कर सरोज लालितौ, चिन्तकस्य मन भृंग संगिनौ*' ॥ उसी चरण कमल को हम सबों को भी स्मरण वन्दन तथा पूजा करना चाहिए।

पुनः जीवाचार्य श्रीलक्ष्मण जी यथा-"*चापत चरण लषण उरलाए। समय सप्रेम परम स चुपाए* ॥ अर्थात् आदि आचार्य श्रीजानकी जी और जीवाचार्य श्रीलक्ष्मण जी दोनहूँ अपने राज

ऐश्वर्य को त्यागकर परम प्रभु परमात्मा भगवान् श्रीराम जी की सेवा करते हैं।

जगत प्रभु भगवान् श्रीराम जी भी मर्त्यावतार जगत शिक्षणार्थ वर्णाश्रम धर्म १४ वर्ष और विरक्ताश्रम धर्म १४ वर्ष संरक्षण करके देखाए हैं प्रथम वर्णाश्रम यथा-"*प्रातकाल उठिकै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा*" माता पिता की सेवा किए हैं। यथा-श्लो०-*सर्वेषां च गुरुणां च जन्मदाता परोगुरु। पिता शतगुणा माता पूज्यावन्द्या गरीयसी*॥ मानकर माता पिता की सेवा करना चाहिए यह वर्णाश्रम का श्रेष्ठ धर्म है वह श्रीराम जी करके आदर्श देखाए।

पुनः विरक्ताश्रम धर्म यथा-"*भूमिशयन वल्कल वसन अशन कन्द फलमूल। ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल*"॥ तथा-"*पर्णकुटी प्रिय प्रीतम संगा*" घासफूस के गृह में प्रियाप्रीतम निवास किए। इत्यादि विरक्ताश्रम के धर्म को शिक्षण दिए।

तैसेही हम सबों को अपना आश्रम धर्म पालन करते हुए वह परम प्रभु परम पिता भगवान श्रीराम जी की भजन पूजन करना प्रतिदिनचर्या करना आवश्यक है। यथा-"*रामहि भजहिं तात शिव धाता। नर पामर कै केतिक बाता*"॥ हम सब नारकी मनुष्य जीवन को तो अवश्य श्रीराम नाम की भजन करना ही चाहिए। यथा-"*छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम शरीरा*"॥ यह नश्वर है तथा जड़ है इसी का साथ पाकर निर्मल आत्मा भी

ज़ड़ता को प्राप्त हो गया है। यथा-'श्लो० स्थूलानि पंच भूतानि जड़ान्येव स्वभावतः। सृष्टानि भवतैतानि त्वदाज्ञा लंघयन्तिनः' ॥ तथा-'गगन समीर अनल जल धरनी। इनकै नाथ सहज जड़ करनी'॥ पंचभूत स्वभाव से ही जड़ हैं और उन्हीं के सम्बन्ध से आत्मा भी जड़ता धारण कर लिया है।

वही पंच तत्त्व कहा जाता है उसको चैतन्य बनाने को भगवान् का गुरु रूप में अवतार होता है। यथा-"वन्दौं गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि। महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर"। गुरु का उपदेश रूपी सूर्य के प्रकाश से यह जड़ पंचभूत तथा जीव चैतन्य होता है। तथा-"तब यह जीव कृतारथ होई" जीव कृतार्थ हो जाता है अर्थात् अपने कृत्य कर्म को करके संसार से उद्धार हो जाता है। "साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जो परलोक सुधारा"॥ अपना परलोक सुधार लेता है अर्थात् मुक्ति कैवल्य पद प्राप्तकर लेता है।

गुरु का पंच संस्कार

यथा-"क्षिति जल पावक गगन समीरा" यही पंचभूतही पंच तत्त्व पंचविकार हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध, इन पाँचो विकारों को पंच ज्ञानेन्द्रिय भोक्ता हैं। श्रवण, त्वचा हाथ, नेत्र, जिह्वा मुख, और नासिका इन्हीं विकारों को इन्द्रियों के साथ भोगते हुए आत्मा भी विकारी हो गया है। यथार्थ में यथा-"विकारी परिणामि च देह आत्मा कथंवदः" अर्थात् पंचभूतमय देह विकारी ही और परिणामी अर्थात् अमुक दिन जन्म अमुक दिन मृत्यु होती है परन्तु

आत्मा तथा-'*ईश्वर अंस जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराखी*' किन्तु विषयभोग के कारण जड़ हो गया है उसी को विशुद्ध बनाने के लिए गुरु का पंच संस्कार होता है। यथा-श्लो०-*पुन्ड्रमुद्रा तथा नाममाला मंत्रश्च पंचमा। अमीहि पंचसंस्काराः परमेकान्त हेतवः॥*

अर्थात् उर्ध्वपुन्ड तिलक[1] अँचला कौपीन शंखचक्र धनुष वाण[2], नामकरण[3], कन्ठीमाला[4] और मंत्र यही गुरु का पंच संस्कार है

पंच तत्त्व और उसके पंच संस्कार आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी इसका विकार अर्थात् विषय, शब्द स्पर्श, रूप, रस और गंध, और इसके भोक्ता श्रवण, त्वचाहाथ, नेत्र, मुख, जिह्वा, और नासिका, इन्द्रिय हैं, इनके सम्बन्ध से जीव भी भोक्ता है इसीलिए जीव जड़ हो गया है।

तथा-"*कृपासिन्धु नर रूप हरि*" श्रीगुरुदेव दया कृपा करके आकाश तत्व का विकार विषय शब्द है और शब्द विषय का भोक्ता श्रवण इन्द्रिय अर्थात् कान है तो कान में मंत्र देते हैं जैसे काष्ठ अग्नि का स्वरूप होते हुए भी किस दैव योग से काष्ठ जड़ हो गया है अब अपने स्वयं अग्नि रूप होने को समर्थ नहीं है, यदि दैव योग किसी के द्वारा प्राकृत अग्नि दियासलाई लगाकर और पतली सूखी लकड़ी युक्त करके यत्न किया जाय तो वह अग्निशीघ्र प्रज्ज्वलित होकर काष्ट को जलाकर काष्ट का जड़ता गुण खाक छोड़कर काष्ठ का अग्नि गुण अग्नि रूप होकर रूपान्तर अग्नि रूप हो जाता है।

तैसेही काष्ठ अग्नि आप से यह अविनाशी ईश्वर अंस जीव स्वभाव से ही ज्ञान स्वरूप, निर्मल और सुख स्वरूप था परन्तु संसारी विषयियों के साथ विषय भोगते हुए विषय रूप जड़ हो गया है तो श्रीगुरुदेव अग्नि काष्ठ न्याय से कान मार्ग से शब्द रूप मंत्र का संयोग करते हैं। यथा-"*मंत्रोइष्टमूर्तयः*" मंत्र रूप प्रकृत ब्रह्म राम कृष्णादि का प्रयोग करते हैं। तथा-"*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*" परात्परब्रह्म परमात्मा रूप अविकारी जीव हृदय में रहते हुए वह जड़ हो गया है। यथा-"*हृदय जवनिका बहुविधि लागी*" हृदय पर विषय मल जम गया है वह गुरुद्वारा प्राप्त अग्नि रूपी मंत्र और संयम नियम रूपी पतली सूखी लकड़ी युक्त जप रूपी पवन द्वारा मंत्र रूपी अग्नि प्रज्वलित होकर विषय मल रूपी जड़ता को जलाकर अग्नि रूप अप्राकृत ब्रह्म अपने स्वस्वरूप ब्रह्म को प्राप्तकर सत्चित आनन्द परमानन्द रूप हो जाता है। यथा-"*रांइतिज्ञान मात्रेण मोक्ष मोग्धिभवेन्नरः*" रां निर्गुण कारण ब्रह्म है कारण का ज्ञान हो जाने से कार्य स्वभाव से ही ज्ञात हो जाता है। तथा-"*ऋतेज्ञानान्न मुक्तिः*" वह मुक्त जीवन हो जाता है अर्थात् आकाश तत्त्व का विकार शब्द है शब्द को भोक्ता कान है तो कान में मंत्र का संस्कार करते हैं।

पुनः दूसरा आकाश से उत्पन्न वायु तत्त्व है वायु तत्त्व का विकार विषय स्पर्श है इसका भोक्ता त्वचा तथा हाथ इन्द्रिय है, हाथ पर मुद्रा अर्थात् शंख चक्र, धनुष बाण इत्यादि भगवान् का आयुध शाशक रूप में और अचला लंगोटी राजकीय वेष यथा वेष भगवान् का दिया हुआ यथा-"*वेष प्रताप पूजियहि तेहू*" जगत पूज्य होता है.

तथा–"कर नित करहि राम पद पूजा" अर्थात् आयुधों के शाशन भय से अपने सब दुर्गुणों को छोड़कर सर्वांग से भगवान् की पूजा आराधना करके जीव कृतार्थ हो जाता है। यथा अ० रा० कि० काण्डे सर्ग १ श्लोक ६१।

श्लो—त्वत्पाद पद्मार्पित चित्तवृत्ति,
स्त्वन्नाम संगीत कथा सुवाणी।
त्वद्भक्त सेवा निरतौ करौं में,
त्वदंग संगं लभता मदंगम्॥
त्वन्मूर्ति भक्तान् स्वगुरु च चक्षुः,
यश्यत्वजस्रं सश्रृणोति कर्णः।
त्वज्जन्म कर्माणि च पाद युग्मं,
व्रजत्वजस्रतव मन्दिराणी॥
अंगानिते पाद रजो विमिश्र,
तीर्थानि विभ्रत्व हि शत्रु केतो।
शिरस्त्वदीयं भवपद्म जाद्यौ,
जुँष्टं पदं राम ममत्व जस्रम्॥

अर्थात् सर्वांग से प्रभु का सेवक हो जाता है।

पुनः तीसरा अग्नितत्व है अग्नितत्व का विकार विषय, रूप है और रूप का भोक्ता नेत्र इन्द्रिय है तो नेत्र के सामने यथा–"उर्ध्वंड्र" तिलक स्वरूप लगाते हैं तिलक का दोनों भाग भगवान का चरण है और बीच में महाराणी श्रीसीता जी श्रीरूप रहती हैं पुनः नीचे सिहासन श्रीहनुमान रूप है। यथा–"रामचरण पंकज जब देखौं

तबनि जन्म सफल करि लेखौ"। अर्थात् नेत्र के सामने भगवान का चरण कमल दर्शाते हैं। तथा-"*तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः*" अर्थात् रूप भगवान का दर्शन कराते हैं। अतः *जेपरदोष लखहिं सह-साखी*" न करके तथा-"*लोचन चातक जिन करि राखे। रहहि दरस जलधर अभिलाषे*" नेत्र से भगवान के चरण कमल का दर्शन करके जीव कृतार्थ हो जाता है यथा-"*आजु सफल तप तीरथ यागू। आजु सफल जप योग विरागू॥ आजु सफल शुभ साधन साजू। राम तुम्हैं अवलोकत आजू*"। जीवन कृतार्थ तथा सफल हो जाता है।

पुनः चौथा जलतत्त्व है, जलतत्त्व का विकार विषय रस है और रस का मुख और जिह्वा इन्द्रिय भोक्ता है। तो गुरु जी चौथा संस्कार गले में कण्ठी माला बाँधते हैं, जैसे जल वा रस में कुछ गन्दी वस्तु भी रहती है। यथा-"*भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी*" अर्थात् जल वा रस जब किसी घड़े में छाना जाता है तो घड़े के गले में एक छन्ना बाँध दिया जाता है जिससे छनकर घड़े में विशुद्ध रस हो जाता है तैसेही गुरु के द्वारा शरीर रूपी घरके कन्ठ रूपी गले में कन्ठी माला छन्ना रूप बाँधा जाता है जिससे विषय रूपी रस के विकार को छानकर हृदय रूपी घरमें विशुद्ध श्रीरामनामामृत हो जाता है। यथा "*श्लो०-हेजिह्वे रस सारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये। मधुरं मधुराद्त्तरं रामनामामृतं पिव॥ धन्यास्ते कृतिनः पिवन्ति सततं श्रीरामनाभामृतम्*"॥ अर्थात् जीव श्रीराम रामनामामृत पीकर जन्म मरण के दुख से मुक्त हो जाता है। तथा-"*तब यह जीव कृतारथ होई*" जीव कृतार्थ हो जाता है।

पुनः पाँचवाँ पृथवी तत्त्व है पृथवी तत्व का विकार तथा विषय गंध है और गंध विषय का भोक्ता धारण अर्थात् नासिका इन्द्रिय है, यह भौतिक शरीर मज्जा मांस अस्थि सभी दुर्गन्धमय है मल मूत्रादि सब दुर्गन्ध रूप है और पिता दत्त नाम भी गुरहू, कतवारू, झाँटुआ घिनहूँ, झन्डासिंह, फन्दूषसिंह इत्यादि दुर्गन्ध रूप ही हैं इन सब दुर्गन्धों का भोक्ता नासिका है वह नाशिका इन्द्रिय को निग्रह स्वरूप सुगन्धमय रामदास जानकीदास लक्ष्मणदास इत्यादि नाम-करण संस्कार करते हैं जो परम पावन विशुद्ध भगवान का सेवक दास बनाते हैं। यथा-"*दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः* तथा-"*वासना वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम्*" त्रैलोक में सुगन्धमय सुवासित हो जाता है। यही है गुरु जी पंच संस्कार।

इस प्रकार पंच संस्कार युक्त श्रीगुरुदेव से प्राप्त षडाक्षर श्रीराम मंत्रराज अर्थात् संधान करते हुए यथा-"*सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि*" तथा-"*हम सेवक स्वामी सिय नाहू*" सम्बन्ध युक्त मन स्थिर करके यथा-"*मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा*" दृढ़ विश्वास पूर्वक मंत्रराज का जाप प्रतिदिन शौचादि स्नान इत्यादि करके सन्ध्यावन्दन से उपराम पश्चात् मंत्रराज का जाप प्रतिदिन ६००० छ हजार जपकर सेव्यसेवक सम्बन्ध स्थापना के पश्चात् अपना प्रति दिन आत्मा का कृत कर्म श्रीरामनाम का जप २१६०० करना चाहिए यथा-"*श्लो-श्रीरामेतिपरं जाप्यं तारकं ब्रह्म संज्ञकम्। ब्रह्म हत्यादि पापघ्न-मिति वेद विदोविदः॥*" तथा-"*रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरमुक्ति-मुपैति जन्तु कलौयुगे कलमष मानसानामन्यत्र धर्मेखलुनाधिकारः*" एवं

"सुखप्रदं रामप्रदं मनोहरं युगाक्षरं भीतिहरं शिवाकरम् । यशस्करं धर्म-करं गुणाकरं वचोवरं मेहृदयेस्तु सादरम् ॥" अपने आत्मा का सर्वसुख सर्व कल्याणकारी विशुद्ध श्रीराम नाम जप करना चाहिए ।

पुनः अपनी कारपण्यता दीनता रूप पंचरत्न स्तोत्र का पाठ करना । १-श्रीरामहृदय, २-श्रीराम कवच, ३-श्रीरामरक्षा ४-श्रीराम स्तवराज, ५-श्रीरामसहस्र नाम स्तोत्र इन पाँचो स्तोत्रों का पाठ करना चाहिए, पुनः अपराध क्षमा दन्डवत् प्रणाम करना चाहिए ।

इस प्रकार इतनी दैनिक परिचर्या एक बार करने से एक बार भोजन का अधिकार होता है । यथा-*"एकाहारी भूमिशायीजित क्रोधो जितेन्द्रियः"* और यदि इसी प्रकार द्विगुणा करै तो दो बार भोजन कर सकता है पुनः यदि और अधिक तीनिगुणा करै तब भक्तिमुक्ति माँग सकता है इसी प्रकार सकामता या निस्कामता प्रति दिन की दिनचर्या करनी चाहिए ।

श्लो०-दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभो तत्व दर्शनः ।
दुर्लभो सहजावस्था सद्गुरोः करुणा विना॥

अर्थात् विना गुरु कृपा विषय का त्याग दुर्लभ है अर्थात् हो नहीं सकता है । यथा-*"विषय मोरि हरिलीन्हेउ ज्ञाना"* स्त्री पुत्रादि धन ऐश्वर्यादि से ही ज्ञान ढका है यही है विषय, तथा-*"हृदय जवनिका वहुविधि लागी"* हृदय पर मल जम गया है वह विना गुरु के

सद्उपदेश के छूट नहीं सकता है यथा-"*महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर*" गुरु के सदुपदेश द्वारा ही विषय अन्धकार छूट सकता है।

पुनः तत्त्व का दर्शन भी विना गुरु कृपा के दुर्लभ है अर्थात् तत्त्व का भी ज्ञान नहीं हो सकता है। यथा-"*श्लो० अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानंजन शलाकया। चक्षुरुर्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः*"॥ अर्थात् अज्ञान रूपी मोतियाविन्द से अन्धे नेत्र में ज्ञानरूपी अंजन लगाकर सलाका द्वारा नेत्र को खोला है ऐसे गुरु को नमस्कार है अर्थात् गुरु के ज्ञान उपदेश से ही अपनी आत्मा तथा परमात्मतत्त्व का ज्ञान होता है। यथा-"*श्लो०-रकारो रामरूपस्तु मकारस्तस्य सेवकः। आचार्यस्तु ह्यकारस्तयोः संयोजनायच*" ॥ तथा-"*त्रयीसारस्त्यात्मा*" अर्थात् राम शब्द में ही रकार रूप परमात्मा श्रीराम जी हैं, अन्त में मकार जीव रूप है जो परमात्मा का सदा सेवक है। यथा-"*सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि*" अर्थात् जीव का और परमात्मा का सेव्य सेवक सम्बन्ध है जीव सेवक है परमात्मा सेव्य है और र और म अर्थात् जीव और परमात्मा के बीच में अकार रूपा महामायाधीश्वरी जगज्जननी श्रीसीता जी का बोधक है श्रीसीता जी ही आचार्य रूप हैं वही जीव और परमात्मा श्रीराम जी से सम्बन्ध जोड़वाती है वा जोड़ती हैं यही तीनि सार तत्त्व हैं इसी को तत्त्वत्रय भी कहा जाता है परन्तु इन तीनो तत्त्वों का ज्ञान बिना गुरु के दुर्लभ है अर्थात् होइही नहीं सकता।

पुनः सहजावस्था यथा–"ईश्वर अंस जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी"। अर्थात् ईश्वर परमात्मा श्रीराम जी की ही अन्तरात्मा जीव है। यथा–"आत्मा विजायते पुत्रा' तथा–"अखिल विश्व यह मम उपजाया। सब पर मोरि बराबरि दाया" अर्थात् सब संसार का प्राणी मात्र ही मेरी संतान है मैं ही सबको उत्पन्न किया हूँ। इत्यादि बिना गुरु कृपा हो नहीं सकता है अर्थात् यह सब ज्ञान गुरु कृपा पर ही निरधारित है।

श्लो०–अखण्ड मन्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥

अथात् जो परात्पर ब्रह्म अनन्त ब्रह्माण्ड के जड़ चेतन सभी में व्याप्त है ऐसे परम गुप्त ब्रह्म के चरण को जिन्होंने साक्षात् दर्शन कराया ऐसे गुरु को नमस्कार है अर्थात् जब श्रीगुरु जी नेत्र के रोग को हटाकर हृदय का ज्ञान नेत्र खोल देते हैं। यथा–'चक्षुर्मीलितं येन" तब पंच परमेश्वर अर्थात् परम ईश्वर पाँच रूप में विभक्त हैं।

सर्व प्रथम यथा–"वन्दौं गुरु पद कंज कृपासिन्धु नर रूप हरि" साक्षात् परम ईश्वर गुरु रूप में अवतीर्ण है। तथा–"श्लो०–सर्व तीर्थाश्रयश्चैव सर्वदेव समाश्रयः। सर्व वेद स्वरूपी च गुरु साक्षात्हरिः स्वयम्"॥ अर्थात् सर्वतीर्थ जिस गुरु के चरण का आश्रय लिए हैं अतः चरण में निवास करते हैं। यथा–"पृथिव्यां यानितीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे। सागरे यानि तीर्थानि गुरुपादस्य अंगुष्ठये"॥ अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्ड तीर्थ रूपी गुरु के चरण तीर्थ को त्यागकर हम अन्य

एक साधारण तीर्थ की यात्रा करते हैं यह हमारी बुद्धि का भ्रम है। यथा-"राह का गुरु बाट का चेला। साँझे मूड़े सबेरे अकेला॥' अथवा "घर पर भया खटपट, चलो बाबा की मठ पर। बाबा काटे चोटी, तब दिये पेट को रोटी। बाबा मारे लात, चलो जमात के साथ॥" गुरु थोड़ासा संगलाशाशन किए की डन्डा कुन्डा बाँधकर चम्पत हो गए नहीं नहीं, तथा-"गुरु वेदान्तवक्येषु विश्वासः' अतः "बारह वर्ष रही गुरु की टोली। तब गुरु की आवे एक बोली। बारह वर्ष लगातार गुरु की सेवा करने से तब गुरु के एक शब्द का ज्ञान हो जायगा। यथा-"श्रवणं तुगुरोः पूर्वं मननं तदनन्तरम्। निधिध्यासन मित्येतत्पूर्ण बोधस्य लक्षणम्॥" अर्थात् प्रथम गुरु से सुने पुनः मनन करे अर्थात् निश्चय कर तब निधिध्यासन अर्थात् कार्य में प्रवृत करे इस प्रकार करना ज्ञान होने का प्रथम लक्षण है। तथा-"अनेक जन्म संस्कारात्सद्गुरोः सेवतै बुधैः। संतुष्ट सगुरुर्देव आत्मरूपं प्रदर्शयेत्'॥ अनेक जन्म की पुण्य सुकृति होने से जीव गुरु की सेवा करता है और गुरु जी जब शिष्य सेवा से प्रसन्न हो जाते हैं तब आत्मा और परमात्मा दर्शन करा देते हैं। यथा-'अस प्रभु हृदय अछत अविकारी" परन्तु प्रथम ईश्वर तो अपने स्वयं प्राप्ति होते हैं अपने में जब दृढ़ता विश्वास शिष्य का हो जाता है तो द्वितीय ब्रह्मनिर्गुण वीज स्वरूप श्रीशालग्राम शिला को ब्रह्म रूप में साक्षात् कराते हैं। यथा-'पग विनु चलै सुनै विनु काना। कर विनु कर्म करै विधि नाना॥ आनन रहित सकल रस भोगी। विनु वानी वक्ता बड़ योगी॥ इत्यादि 'शालग्राम शिलायत्र यत्र द्वारावती शिला। उभयोः संगमो यत्रमुक्तिस्तत्र न संशयः'॥ गुरु जो

शालग्रामशिला को भगवान रूप में दर्शाते हैं। यथा-*'निर्गुण रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोय। सगुण अगुण नाना चरित सुनि मुनि मनि भ्रम होय'* ॥ प्रथम निर्गुण ब्रह्म का बीज स्वरूप दर्शाकर अर्थात् बीज का ज्ञान होने से सगुण का ज्ञान स्वतः होगा। यथा-*'जिनके अगुण न सगुण विवेका। जल्पहिं…'* अर्थात् बिना निर्गुण ज्ञान के सगुण ज्ञान होता ही नहीं जब निर्गुण में पूर्णब्रह्म भावना दृढ़ हो जाती है तब निर्गुण सगुण मिस्रण अंकुराकार अर्थात् वृक्षकार अर्चा विग्रह का साक्षात् कराते हैं जो तीसरा परम ईश्वर है। यथा-*"न काष्ठे विद्यते देव न पाषाणे न मणमये। भावोहिविद्यतेदेवः तस्मात्भावेहि कारणम्"* ॥ अर्थात् काष्ठपाषाण वा मृतिका की मूर्ति में देवता अर्थात् ब्रह्म परमात्मा नहीं है परमात्मा तो केवल भाव में है अर्थात् यह आर्चाविग्रह में काष्ठपाषाण की भावना विस्मरण होकर साक्षात भगवान श्रीराम जी की ही भावना करना चाहिए जब शिष्य का दृढ़ विश्वास मूर्ति में पक्का हो जाता है अतः मिस्रण सगुण ब्रह्म का विग्रह में तात्पर्य यह है की दर्शन है हाथ पाव है और स्पर्श भी है परन्तु संभाषण आलिंगन का सुख नहीं है। यथा-

कोशलेन्द्र पद्कंज मंजुलौ,
कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोज लालितौ,
चिन्त्यकस्य मनभृंगसंगिनौ ॥

यह कोमलतास्पर्श संभाषण का सुख आर्चाविग्रह में नहीं होता है इसी से मिस्रण सगुण विग्रह है परन्तु जब शिष्य का आर्चाविग्रह में दृढ़ता विश्वास हो जाता है।

पुनः चतुर्थ परम ईश्वर पावना अवतार लीला विग्रह जो पूर्ण सगुण ब्रह्म है। यथा-"*बालक रूप रामकर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना*'॥ ६ वर्ष से ऊर्ध्व और १२ से कम वयस का सुन्दर कोमल सुकुमार राम कृष्णादि पावना अवतार लीला स्वरूप बालक पूर्ण सगुन ब्रह्म रूप हैं उनका स्पर्श संभाषण मधुर मुसुकान यथा-"*नखशिख ते सब अंग अनूपा*" परम सुन्दर शोभा समूह तथा-"*खेलौं सदा बालकन मीला। करौं सकल रघुनायक लीला*" यथा-"*जिन वीथिन विचरहिं सब भाई। चकित होहि सब लोग लुगाई*"॥ वही सुख आनन्द परमानन्द इन पावनाअवतार लीला विग्रह में होता है ए साक्षात् परम ईश्वर ब्रह्म स्वरूप हैं।

पुनः जब पूर्ण श्रद्धा विश्वास शिष्य का लीला स्वरूप में हो जाता है तब श्रीगुरु कृपा से आत्मा की पराशक्ति परमात्मा पंचम परात्परब्रह्म जो अपने हृदय में ही स्थित है। यथा-"*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*" उसका साक्षात्कार होता है। तथा-"*तब यह जीव कृतारथ होई*' जीव कृतकृत्य हो जाता है। परन्तु अनेक जन्मों की सुकृत फल होने से गुरु बचन में विश्वास करके यथा-"*गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान*' चतुर्थ ब्रह्म लीला विग्रह तक सेवा करता है तथा-"*संतुष्टः सद्गुरुर्देव आत्मरूपं प्रदर्शयेत*"। आत्मा का साक्षात् कराते हैं। यथा-"*तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः*"। ऐसे परम-दयालु साक्षात् ब्रह्म स्वरूप श्रीगुरुदेव की सदा सेवा पूजा करना चाहिए। यथा-"*तद्विद्धि प्रणिपातेन परि प्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिन स्तत्वदर्शिनः*"॥ शिष्य की पूर्ण दीनता नम्रता गुरुभक्ति

और यथार्थ भाव को देखकर तब तत्त्व ज्ञाता ज्ञानी श्रीगुरुदेव ज्ञान का उपदेश देते हैं और तभी जीव को अपने अन्तर्यामी आत्मा की पराशक्ति परमात्मा को साक्षात् कराते हैं।

श्लो०–*स्वकन्ठेऽपि स्थितं वस्तु यथा न प्राप्यते भ्रमात्।*
भ्रमन्ति प्राप्यते यद्वदात्मापि गुरु वाक्यतः॥

अर्थात् जैसे कन्ठ में वस्तु होते हुए भ्रम से नहीं मिलती और भ्रम नष्ट हो जाने से मिल जाती है तैसे अपने ही हृदय में स्थित परमात्मा गुरु के उपदेश से भ्रम नाश हो जाता है और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। यथा–"*नगुरोश्च प्रियोधर्मो नगुरोश्चप्रियं तपः। नगुरोश्च प्रियं सत्यं नपुरुषश्च गुरोः परम्*" अर्थात् गुरु से बढ़कर अपना कल्याणकारी कोई धर्म कुछ भी नहीं है। मानस में भी सर्व प्रथम उपक्रम में यथा–"*वन्दउँ गुरुपद पदुमपरागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा॥ अमिय मूरिमय चूरण चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू*"॥ अर्थात् संसारिक सब रोग नाश करने के लिए श्रीगुरु के चरण की धूलि ही एक अमृतमयी संजीवनी बूटियों का चूर्ण हैं तथा–'*काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोधपित्त नित छाती जारा*'॥ इत्यादि त्रिदोष विनाशिनी परममहौषधी है पुनः उपसंहार में कहा जाता है। यथा–"*सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा। संयम यह न विषय की आसा॥ रघुपति भक्ति सजीवनि मूरी। अनोपान श्रद्धा मति रूरी*"॥ अर्थात् सद्गुरु रूपी वैद्य की वचन में विश्वास करके विषयों की आसा त्याग रूपी संयम करना होगा। तब श्रीरघुनाथ जी को भक्तिरूपी संजीवनी बूटी को श्रद्धा रूपी अनोपान द्वारा सेवन करना होगा।

भावार्थ—प्रिय सज्जनो जैसे वैद्य नाड़ी को देख रोग का निदान करता है और वटिका देता है अनुपान बता देता है परन्तु अनुपान संग्रह रोगी करता है। वटिका सेवन करता। परन्तु वैद्य खट्टा मीठा और करुआ मना कर देते हैं तो वैद्य का वचन मानकर औषधि सेवन करता है और खट्टा मीठा कड़ुआ का त्याग करता है तब रोग नाश हो जाता है।

ऐसाही वैद्यरूपी सद्गुरु है उनकी वचन में विश्वास करके यथा-'*गुरु की वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही* ॥ शब्द स्पर्श, रूप, रस और गंध विषय की आसा, तथा आहार निन्द्रा और मैथुन यही तीनि प्रधान विषय हैं खटा, मिठा, कड़ुआ स्थानीय अहारनिन्द्रा और मैथुन छोड़ देना होगा अतः गुरु के वचन में विश्वास करके तीनो विषयों की आसा छोड़ दे, तब वटिका रूपी श्री रघुनाथ जी की भक्ति स्वरूप मंत्रराज औषधी उत्कट श्रद्धा रूपी अनुपान के साथ सेवन करै, यथा-'*मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा*'। तथा-'*यहि विधि भलेहि कुरोग नशाही*' महा कुरोग संसार व्याधि नाश हो जायगी इत्यादि इत्यादि गुरु की बहुत बड़ी महिमा वेद शास्त्र पुराणो में वरणित है। यथा-'*गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई। जौं विरंचि शंकर सम होई*' ॥ तो मनुष्य की गणना ही क्या है।

मानस में प्राणी के मोहा अज्ञाना अन्धकार नेत्र में प्रकाश देने के लिए तीनि मणियाँ बताई गई हैं परन्तु सर्व प्रथम यथा-'*श्री गुरु पद नख मणिगण जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती* ॥ *दलन मोहतम सो सुप्रकासू। बड़े भाग्य उर आवहि जासू* ॥ *उघरहिं विमल*

विलोचन हीके। मिटहिं दोष भव दुख रजनीके॥ सूझहिं रामचरित मणि माणिक। गुप्त प्रगट जहँ जो जेहि खनिक'॥ अर्थात् गुरु के नखमणि प्रकाश से श्रीरामचरित मानस में जो गुप्त और प्रकाशमणि माणिक है वह देखने लगता है अर्थात् श्रीरामनाम प्रकाश मणिक है। यथा-*'सब भरोस तजि जौं भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं॥ सो भव तर कछु संशय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलिमाहीं॥* अर्थात् श्रीराम-नाम प्रगट माणिक्य है। तथा-*'रामनाम मणिदीप धरु जीह देहरीं द्वार॥ तुलसी भीतर वाहेरो जौं चाहसि उजियार'॥* भीतर बाहर *'कोढिसूर्य प्रतीकाशं'* जब गुरु मख मणि और श्रीराम नाम प्रकाशमणि दो प्रकाश होगा तब करोड़ो सूर्य के समान प्रकाश हो जायगा तब गुप्त मणि देख पड़ेगी अर्थात् भक्तिमणि गुप्त है। यथा-*'पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥ मर्मी सज्जन सुमति कोदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी॥ भाव सहित जो खोजै प्रानी। पाव भक्तिमणि सब सुख खानी'॥* अर्थात् परम गुप्त भक्तिमणि वह भी मिल जाती है। तथा-*'परम अविद्या कर परिवारा। मोह आदितम मिटै अपारा'॥* सब अज्ञान अन्धकार नाश हो जाता है परन्तु श्रीरामनाम प्रकाश मणिक और भक्ति गुप्तमणि दोनहूँ का मिलना श्रीगुरु महाराज के नखमणि पर ही आधारित है इत्यादि हमारे जीवन का सूत्रधार श्रीगुरुही हैं। यथा-*'करणधार सद्गुरु दृढ़ नाना'* तथा-*'गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई जो विरंचि शंकर सम होई'॥* तो अलपज्ञ जीव मनुष्य की तो बात ही क्या है अर्थात् मनुष्य को तो अवश्य गुरु की शरण लेना चाहिए। यथा-*'आज्ञा भंग न क्रियतेगुरुः शिष्यं न त्यजेत्'*। शिष्य को चाहिए गुरु

की आज्ञा कभी भी भंग न करै। "*गुरुआज्ञा गरीयसी*" अर्थात् गुरु अवज्ञा हो नहीं सकती है और शिष्य जितना भी करे जितना ताड़ना करे अग्नि में जलावे परन्तु शिष्य त्याग कभी भी न करे, यह गुरु और शिष्य का परस्पर कर्तव्य है। वर्तमान में ऐसे कल्याणकारी गुरु को हम विष दे रहे हैं।

श्रीमद्भागवत में उपमन्यु इत्यादि शिष्यों के अख्यान में मिलता है कि शिष्य को जो कुछ किसी प्रकार मिलना था वह गुरु को अर्पण कर दिया जाता था वर्तमान, यथा-"*गुरु शिष्य अन्ध वधिर कै लेखा। एक न सुनै एक नहि देखा*"॥ श्रीगुरु अन्धे शिष्य के दोष को नहीं देखते हैं और शिष्य वहिरे गुरु की आज्ञा नहीं सुनते हैं इस न्याय से गुरु शिष्य दोनों पतन होते जा रहे हैं। तथा "*हरै शिष्य धन शोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई*"॥ और "*जो शठ गुरुसन इर्षा करई। रौरौ नरक कोटि युग परई*॥" दोनों पर कठिन शासन है फिर भी "*लोभी गुरु लालची चेला*" नरक में तो ठेला ठेली ही होगा अर्थात् शिष्य गुरु दोनों में काल के अनुसार दुर्गुण भर गए हैं।

शिष्यगण जब घर से आते हैं शिष्य होने को तो अपनी चीज वस्तु सुरक्षा के लिए एक सूटकेस लिए आते हैं क्योंकि वैराग्य तो है नहीं। "*घर में भया खटपट। चलो बाबा के मठ पर*" अधिकांस ऐसे ही आते हैं। और कितने जो घर से बक्सा नहीं ले आए हैं वे यहाँ आकर शिष्य होने के बाद देखा देखी बक्सा खरीद लेते हैं। यथा-"*संसर्गजा गुणदोषा भवन्ति*" तथा-"*कलिमल ग्रसे धर्म सब लोभ ग्रसे*

शुभ कर्म'। वैराग्य जाता रहा और गुरु जी भी कह देते हैं कि जाव नाम कीर्तन में नाम लिखावो पैसा मिलेगा अथवा नवाह्न रामायण में नाम लिखा लो, वहाँ ज्यादा पैसा मिलेगा शिष्य पैसा ले आए बक्सा में मजबूत ताला बन्द किए किन्तु बक्सा का ताला नहीं है अपने हृदय में ताला बन्द किया जाता है। यथा "*गुरुनामप्य गम्यं*" जैसा गुरु जी भी न जाने परन्तु परिणाम फल यथा "*सन्त कहहिं अस नीति प्रभु श्रुति पुराण मुनि गाव। होइ न विमल विवेक उर गुरु सन किए दुराव*'॥ ज्ञान वैराग्य जाता रहा। तथा-"*जे बिनु विराग संन्यासी*" तब हाथ में राडी की तरह घड़ी बाँधे, रेडियो खरीदे साइकिल खरीदे पान खाए रंडियों की तरह हाइरवैल लगाए, सनलाइट अथवा चर्बीदार साबुन लगाए, सुवर के खोल का बना हुआ बुरुस और मुत्थ पौडर से दान्त साफ किए इत्यादि साधु धर्म को त्यागकर राक्षस गुण ग्रहण किए और सेवा के लिए शिष्य बनाए तो वह इनसे भी चढ़ा बढ़ा होगा। तथा-"*भए वरण शंकर कलिहि भिन्न सेत सब लोग*" यहीं पूर्ण चरितार्थ हो गया।

अतः "*वरणाश्रमनिजनिधर्म चलहिं वेद पथ लोग। करहिं सदा पावहि सुखहिं नहि भय शोक न रोग*॥" वर्णाश्रम के लिए कहा गया परन्तु हम सब संत महात्माओं का तो विशेष धर्म है। "*सम दम नियम नीति नहि डोलै*' अपने नियम धर्म से कभी भी चलायमान नहीं होना चाहिए। यथा-"*धर्मो रक्षति रक्षितः*' तथा-"*यतो धर्मस्ततो-जयः*" धर्म की रक्षा यदि हम करेंगे तो धर्म हमको निश्चय रक्षा करेगा। जिसके पास धर्म है जप उसी की होती है। यथा-"*महाघोर*

संसार रिपु जीति सकै सोइ वीर" तथा-"*जय पाई सोइ हरि भगति*" अर्थात् हम सबको संसार शत्रु अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह पर विजय करना है और हरि भगवान श्रीराम जी की भक्ति प्राप्ति करनी है।

अतः हम सबको श्रीगुरुजी के दिए हुए पंच संस्कार को सदा सुरक्षित रखना चाहिए और गुरु के बताए हुए नियम का पालन करना चाहिए रामपटल सदा पढ़कर अपनी नियम पद्धति अच्छे से गुरु से शीखना चाहिए और तद्रूप कार्य करना चाहिए।

यथा-"*दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊँ*" इत्यादि अपने साधु लक्षणों की हमेशा पठन पाठन करते हुए ध्यान रखना चाहिए तभी हम सभों की महत्त्व रक्षित रहैगी।

❀ इति पंच संस्कार समाप्त ❀

पुनः—श्रीराम हृदय, श्रीराम कवच, श्रीराम रक्षा, श्रीराम स्तवराज, श्रीराम सहस्र नाम, इन पंच स्तोत्रों का पाठ करना चाहिए।

अर्थात् श्रीराम हृदय साक्षात् परात्परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है यथा-"*अस प्रभु हृदय अछत अविकारी*" तथा-"*निर्गुण निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा*" अतः "*नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञान घनं न प्रज्ञं ना प्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यम-ग्राह्यम लक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्ययसारं प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा, इतिश्रुतेः*"। अर्थात् वह तो न

अन्तर से जाना जाता है, न बाहर से जाना जाता है, न अंदर बाहर के बीच से जाना जाता है, न सुषुप्ति से जाना जाता है, न जागृति से जाना जाता है, न जागृत सुषुप्ति के बीच से जाना जाता है, न जानने योग्य है न अनजानने योग्य है, अदृष्टा है, अग्राह्य है अलक्षण है, अचिन्त्य है, सम्बन्ध रहित है, एकात्मा है और आत्मा की पराशक्ति परमात्मा है, माया का सारतत्त्व, प्रपंच से रहित, जिसके समान तथापर और कोई नहीं है, कल्याण स्वरूप केवल योग समाधी यथा-"*योगिन परमतत्त्वमयभासा। शुद्ध शान्तनय परम प्रकाशा*" अथवा प्रेम के द्वारा अनुभव होता है। तथा -"*अनुभवगम्य भजहि तेहि संता*" वही परमात्मा वास्तिविक तत्त्व है और श्रीराम कृष्णादि शब्द से निर्देश यथा-"*शब्दं ही परब्रह्म*" तथा-"*नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुनाश्रुतेन नमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैषआत्मा विवृणुते तनुँ स्वाम*" अर्थात् वह आत्मतत्त्व, यथार्थ में प्रवचन से, अथवा बहुत सुनने से, न बुद्धि से किसी प्रकार किसी को नहीं प्राप्त होता है।

यथा—*शारद श्रुतिशेषाऋषयअशेषा जाकहुँ कोउ नहिं जाना*" परन्तु अकारण ही जिसके ऊपर वह कृपा करता है, उसको ही अपना कपाट खोल देता है और अपना प्रकाश करा देता है।

तथा—"*सोइ जानै जेहि देहि जनाई*' वही है राम हृदय अर्थात् परमतत्त्व परमात्मा का स्वरूप, यथा-'*जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि वृन्दा। निशिवासर ध्यावहिं हरि गुण गावहिं जयति सच्चिदानन्दा*'॥ वही हैं परापरब्रह्म परमात्मा तथा वह बुद्धि मन और वाणी का विषय नहीं है यथा-'*नैव वाचा न मनसा*

प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्यमनसा सहेति इति श्रुतेः" अर्थात् न वाणी न मन और नेत्र को समर्थ है। जिसको वाणी अप्राप्ति होकर और मन सहित अप्राप्ति है अर्थात् मन वाणी का विषय नहीं है। तथा–'जाकहँ कोउ नहि जाना' वही है ब्रह्म परमात्मा और वही है राम हृदय।

पुनः श्रीराम कवच,

वही ब्रह्म परमात्मा, जब 'भक्त प्रेमवश प्रगट सो होई' यथा– व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन विगत विनोद। सो अज प्रेम भक्ति वश कौशल्या की गोद" ॥ वही ब्रह्म परमात्मा अपने रहने का स्थान किला स्वरूप तथा–'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुण गोपार' वही अपना शरीर जब निर्माण करके भक्तों को सुख देने को लीला करता है तब वही श्रीराम नाम से पुकारा जाता है। यथा–'नाम रूप दोउ ईश उपाधी'। अर्थात् रूप और नाम से भक्तों को मिलता है। तथा– 'समुझत सरिस नाम अरुनामी। प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी' ॥ अर्थात् नाम और रूप वही परात्परब्रह्म के आज्ञाधीन रहते हैं, जब वह निज इच्छा निर्मित होगा, तभी उसका रूप और नाम दो प्रकार से ख्याति होती है। यथा–'सो सुखधाम राम अस नामा तथा रामाख्यमीशं हरिम्' और रूप से नाना लीला करता है, यथा–'परमात्माच्युतोऽनन्तः पूर्णस्त्वं पुरुषोत्तमः। वदन्त्यगोचरं वाचां बुध्यादीनां मतीन्द्रियम् ॥ वह अच्युत और अनन्त परमात्मा है तथा सर्वत्र पूर्ण पुरुषोत्तम है। वही मूर्तिमान होकर अपना गुप्त रहने का स्थान, यथा–'माया मनुष्यो हरिः' वही भगवान् अपनी माया में छिपा हुआ मनुष्य रूप में लीला कर

रहे हैं, यथा-'*नाचत निज प्रति विम्ब निहारी*'। वही आपकी शरीर ही अभेद कवच रूप है।

तथा—*क्षेत्र अगम गढ़गाढ़ सुहावा। सपनेहु नहिं प्रतिपक्षिन पावा*' तथा-'*चिदानन्दमय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी*' अर्थात् सन्तजन छोड़कर शत्रु राक्षस इत्यादि मनुष्य नहीं जानते हैं। वही भगवान श्रीराम जी का शरीर ही श्रीराम कवच है वही शरीर रूपी कवच पहने हैं जो किसी को मालुम नहीं पड़ रहे हैं। '*गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु*' वही सर्व विकार रहित शरीर ही श्रीराम कवच है। ऐसा स्मरण करके श्रीराम कवच का पाठ करना चाहिए।

पुनः--श्रीरामरक्षा, अर्थात् रकार मकार ही द्वारपाल रक्षक रूप है। यथा-'*जगज्जैत्रेक मंत्रेणरामनामाभिरक्षितम्*'। सारे जगत की रक्षा और जय एक मात्र श्रीरामनाम ही करता है, अर्थात् '*विश्व रूप रघुवंशमणि*' अतः श्रीरामजी ही जगत रूप है और राम नाम से ही रक्षित है। यथा-'*नाम पाहरू दिवस निशि*। दिन रात्र पहरा देता है अर्थात नाम और रूप दोनो ईश्वर रूपही है और दोनों अपने प्रभु ब्रह्म आत्मा का रूप कवच रूप और नाम रक्षा रूप में सेवा वा रक्षा करते हैं। तथा-'*दिवारक्षन्तु त्वांसूर्यो रात्रौरक्षतु चन्द्रमा*। दिन में रकार सूर्य रूप और रात में मकार चन्द्र रूप से दिन रात द्वारपाल स्वरूप रक्षा करते रहते हैं श्रीराम रक्षा कवच रूपी किला के द्वार का द्वारपाल रक्षक हैं। यथा-'*पाताल भूतल व्योम चारिणश्चछद्मचारिणः। नद्रष्टुंमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामाभिः*'॥ आकाश पाताल और भू-लोक में यदि कोई शत्रु छद्म रूप से छिपकर भी घूमता होगा

तथापि श्रीराम जी की तरफ आँख उठाकर देख नहीं सकता है अर्थात् श्रीराम रक्षा, 'सेवक कर पद नयन' की तरह श्रीराम जी की अंग भूतही रूप से सदा रक्षा करता है द्वार पर द्वारपाल स्वरूप है यहीं रामरक्षा, ऐसा स्मरण करके श्रीराम रक्षा का पाठ करना चाहिए।

पुनः श्रीरामस्तवराज,

श्रीरामस्तवराज श्रीअयोध्या राजा श्रीरामचन्द्र जी की राज वैभव है। यथा-'*भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोशला*'॥ पूर्ण पृथवी का संम्राट राज राजेश्वर महाराजा श्रीरामचन्द्र थे तथा- '*रामराज कर सुख संपदा। कहि न सिराइ फणीश शारदा*'। इत्यादि यथा अ० रामायणे उ० कान्डे सर्ग १५।

श्लो०-ध्यायन्तस्त्वभिषेकार्द्रं सीता लक्ष्मणं संयुतम्।
सिंहासनस्थं राजेन्द्रं ययुः सर्वेहृदिस्थितम्॥७४॥

अर्थात् सभी देवतागण श्रीराम जी के लीला का गान करते हुए और सिंहासन पर विराजमान राजाभिषेक आदि राजराजेश्वर श्रीसीताराम जी तथा श्रीलक्ष्मण जी के सहित हृदय में ध्यान करके वहाँ से चले, यथा-'*हृदयं श्यामलं रूपं सीता लक्ष्मण संयुतम्। जिह्वा राम रामेति मधुरंगायतिच्चरणम्*'॥ सब चले जा रहे हैं। तथा-'*दिन प्रति सकल अयोध्या आवहि देखि नगर विराग विसरावहिं*'। ऐसी राज वैभव तथा सजाव है। सभी राज वैभव की प्रशंसा करते हैं।

श्लो०—खेवाद्येषुध्वनत्सु प्रमुदित हृदये,
देववृन्दैः स्तुवद्भिः,
वर्षद्भि पुष्पवृष्टि दिविमुनि निकरैः
रीड्यमानः समन्तात् ।
रामः श्यामः प्रसन्नस्मितरुचिर मुखः
सूर्यकोटि प्रकाशः,
सीता सौमित्रि वातात्मज मुनि हरिभिः
सेव्य मानोविभाती ॥७५॥

आकाश में देवता लोग बाजा बजाते हैं, और झुन्ड, झुन्ड स्वर्ग में प्रसन्न हृदय से स्तुति करते हुए फूलों की वर्षा करते हैं। महर्षिगण चारो ओर खड़े हुए स्तुति कर रहे हैं करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान. यथा–'*कोटि सूर्य प्रतीकाशं किरीटेन प्रभासितम्*'। प्रसन्नतायुक्त मधुर मुसुकुरान मनोहर मुखारविन्द श्यामसुन्दर भगवान् श्रीसीताराम जी राजसिंहासन पर विराजमान, श्रीलक्ष्मण श्री हनुमान जी मुनिजन तथा वानरगणों से सेवित होते हुए अत्यन्त सुन्दर शोभायमान हैं ॥ ७५ ॥

'*विश्वामित्र वसिष्ठादि मुनिभिः परि सेवितम् । गायन्ति नामभिर्दिव्यैः*' और विश्वामित्र वसिष्ठ इत्यादि मुनियों से सेवित तथा–'*नाम लीला गुणादीनां उच्चैर्भाषातु कीर्तनम्*'। गायन स्तुति किये जा रहे हैं विश्वामित्र तथा वसिष्ठ जी कहते हैं। यथा–'*यथात्वं मायया सर्वं करोंसि रघुनन्दन । तथैवानु विध्याष्यरमि शिष्यस्त्वं गुरुरप्यहम्*' ॥

यथार्थमें-गुरुगुरुणां त्वं देव पितृणां त्वं पितामह । अन्तर्यामि जगज्जात्रा वाहकस्त्वमगोचरम् ॥ तथा 'जगतगुरुंश्च शाश्वतं, तुरीयमेव केवलम्' । जगत गुरु माता पिता तो सनातन आपही हैं इत्यादि गुणानुवाद गाते हैं ।

यथा—राजा राम जानकी रानी । गावत यश सुर मुनिवर बानी ॥

तथा—गनी गरीब ग्राम नर नागर । पन्डित मूढ़ मलीन उजागर ॥
सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नरनारी ॥
साधु सुजान सुशील नृपाला । ईश अंसभव परम कृपाला ॥
यह प्राकृत महिपाल स्वभाऊ । जानि शिरोमणि कोशलराऊ ॥

सभी देवता, मनुष्य, ऋषिमुनि नाना स्तुति द्वारा स्तवन कर रहे हैं, यही है श्रीराम स्तवराज । इस प्रकार स्मरण करते हुए श्रीरामस्तवराज का पाठ करना चाहिए ।

पुनः श्रीरामसहस्र नाम

श्रीरामसहस्र नाम अर्थात् श्रीरामराज्य की अनन्त वैभव, यथा-'रूम रूम प्रति लागही कोटि कोटि ब्रह्माण्ड परन्तु 'प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा' ।

यथा--कोटिन चतुरानन गौरीशा । अगणित उड़गर रवि रजनीशा ।
अगणित लोकपाल यमकाला । अगणित भूधर भूमि विशाला ।
सागर सरिसर विपिन अपारा । नाना भांति सृष्टि विस्तारा ।
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर । चारि प्रकार जीव सचराचर ।
लोकलोक प्रति भिन्न विधाता । भिन्न विष्णु शिव मनुदिशित्राता ॥

इत्यादि इत्यादि अनन्त ब्रह्माण्ड, अनन्त लीला सर्वत्र हो रहा है और एकही श्रीराम जी सर्वत्र हैं। यथा–'*सोइ शिशुपन सोइ शोभा सोइ कृपालु रघुवीर*' सर्वत्र खेल रहे हैं। यथा '*राम अनन्त अनन्त गुण अमित कथा विस्तार*' तथा–'*राम अनन्त अनन्त गुणानी। जन्म कर्म अनन्त नामानी*'॥ इत्यादि भगवान श्रीरामभद्र जू के अनन्त लीला अनन्त चरित्र और अनन्त वैभव इसी का नाम सहस्र नाम है ऐसा समझकर श्रीराम सहस्र नाम का पाठ चाहिए।

इस प्रकार यह पंचरत्न स्तोत्र है इसको पाठ करके अपने प्रभु श्रीराम जी को अनन्त प्रभुत्त्व जानकर यथा–'*बिनु जाने न होइ परतीती*' प्रीति विश्वास पूर्वक अपनी दीनता, कारपण्यता दुःख अपने प्रभु श्रीराम जी को निवेदन कीजिए।

करुणाष्टक।

यथा––*हे रामचन्द्र करुणाकर दीनबन्धो*
हे राघवेन्द्र रघुनन्दन राज राज,
हे जातकीश जनरंजन कोशलेश,
स्मतु निगृह्य हृदयं मम देहिदास्यम्॥

इत्यादि करके पुनः

दीनबन्धुऽष्टक

यथा––*ध्येयं वदन्ति शिवमेवहि केचिदन्ये,*
शक्ति गणेशमपरे तुदिवाकरं वै,

रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेव,
तस्मात्वमेव शरणं मम दीनवन्धो ।

इत्यादि अपनी दीनता निवेदन करना ।

पुनः भक्त सर्वस्वम्

हे मैथिली हृदय पंकज भृंगराज,
हे स्वीय भक्तजन मानस राजहंस,
हे सूर्यवंश विभु वैभव रामचन्द्र,
त्वत्पाद पंकज रजश्शरणं ममास्तु ॥

इत्यादि शरणापन्न होकर, पुनः अपनी गर्भ स्थान की प्रतिज्ञा यथा श्रीमद्भागवते,

येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश
संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन,
स्वे नैव तुष्यातु कृतेन स दीननाथः
कोनाम तत्प्रति विनांजलि मस्य कुर्यात् ॥

हे प्रभु, इस गर्भास्थान में दश मास के बाद यह त्रिकाल का दिव्य ज्ञान आपका दिया है। आप निरुपम दयासागर हैं हे दीनानाथ अप अपने उपकार से ही संतुष्ट हैं आप केवल नमस्कार छोड़कर आपके उपकार का जीव क्या प्रत्युपकार कर सकता है।

जगत्रैक मंत्रेण रामनामाभिरक्षितम् ।

मैं प्रत्येक श्वास में वही श्रीरामनाम का जाप करूँगा, अर्थात्

अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करना २१६०० श्रीरामनाम का जप करना तब एक बार भोजन का अधिकारी होगा, द्विगुण जप करना तब दो बार भोजन कर सकते हैं और ज्यादा जप करें मुक्ति भक्ति माँगें यदि इस नियम से विपरीत करेंगे तो यथा–"*छूटिवे को यतन विशेष बाँधे जावोगे । होइहहि विष भोजन जो सुधासानीखावोगे*" ॥ वह भगवान का प्रसाद अधरामृत होने पर भी हलाहल विष का काम करेगा । यथा–"*मातु मृत्यु पितु शमन समाना । सुधा होहि विष सुनु हरियाना*" ॥ इत्यादि मधूप्रमेह (चीनी) अथवा कन्सर अथवा कालरा हैजे की बिमारी अकालमृत्यु हो जायगी । यथा–"*ज्ञान का पंच कृपाण की धारा । परत खगेश न लागइ वारा*" ॥ बिलम्ब नहीं होगी गिर जावगे ।

भैय्या बालक वृन्द ! इसलिए बहुत शोच समझकर श्रीगुरु जी के दिए हुए पंच संस्कार तथा उसकी संपूर्ण क्रियायें नियम से करें । यथा–"*सम दम नियम नीति नहि डोलै*" नियम से वंचित नहीं होना । तथा–"*षट दमशील विरति वहु कर्मा । निरत निरंतर सज्जन धर्मा*" ॥ पालन करना चाहिए और गुरु के समीप में ही रहकर यह सब वस्तु शीखना जानना चाहिए । तभी उन सब वस्तु का ज्ञान होगा । यथा–"*चाचरी, भोचरी, खेचरी, अगोचरी, उनमनीर पंचमुद्रा साधे ते साधु राजा*" कैसे साधेंगे और कैसे जानेंगे ।

यथा—*कर्णधारंगुरुंप्राप्य तद्वाक्यं प्लवद् दृढ़म् ।*
अभ्यासवासनाशक्त्या तरन्ति भवसागरम् ॥

अर्थात् कर्णधार (केवट) रूपी गुरु मिलने से उनकी बचन

अर्थात् उपदेश रूपी नौका द्वारा विषयाशक्ति रूपी भवसागर से तर जायेगा। तथा—"इदं सुदुलभंज्ञानं जन्मकोटि शतायुतैः। प्राप्यते पुरुषव्याघ्रै गुरुशुश्रूषणादिना' आत्म ज्ञान की प्राप्ति होना अतिही दुर्लभ है वह गुरु सेवा से ही प्राप्ति होता है। यथा—"दुर्लभोविषपरगो- दुर्लभो तत्व दर्शनः। दुर्लभो सहजावस्था सद्गुरोः करुणा विना"॥ बिना गुरु कृपा से कुछ हो ही नहीं सकता है अतएव अपना कल्याण गुरु कृपा पर ही आधारित है अतः श्रीगुरु की शरण में ही रहकर सब सीखना करना चाहिए। इस प्रकार रामचरित मानस की दिनचर्या सिद्धान्त बताया गया है।

❀ इति मानस दिनचर्या समाप्त ❀

भजन करो मोर भैय्या, जपो रघुरइया, जीवन तेरा दो दिन का।
बीच भँवर में नैयापड़ी है, दीखै न कोऊ खेवैय्या ॥ जीवनतेरा० ॥
बालापन में खेलि के खोए, यौवन युवति जोन्हैय्या ॥ जीवनतेरा० ॥
बूढ़ भए तन काँपन लागे, बेटा न नाति पतोहिया ॥ जीवनतेरा० ॥
यह देही पानी का बुल्ला, पवन लगत फटि जैय्या ॥ जीवनतेरा० ॥
"गंगादास" राम गुण गावो, दूसर न कोऊ सुनवैया ॥ जीवनतेरा० ॥
भजन करो मोर भैय्या, जपो रघुरइया जीवन तेरा दो दिन का॥

भैय्या बालको, तथा सज्जनो! श्रीराम जी का भजन करो, दो ही दिन का जीवन है। बेटा, नाती, बहू, बेटी, कोई काम में नहीं आवेगा। कोई एक वयोवृद्ध माता जी कह रही हैं।

जनि करौ राम पराय की आशा ॥ टेक ॥
बेटा तो पालेउँ बुढ़ाई की खातिर, आई पतोहिया टूटि गए नाता
आम लगायो फल की खातिर, बही परवैया चुवत लागे लाटा ॥
जनि करो राम पराये की आशा ॥
सुत मानहिं मातुपिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जबलौं ॥

कोई किसी का नहीं है *"स्वारथ मीत सकल जगमाहीं"* सारा संसार कुटुम्ब बन्धु स्वार्थ के ही प्रिय हैं ।

भैय्या बालकगण ! देखिए नीच जातियों में भी भगवान को भजन का सिद्धान्त है । वे भी विषय भोग कुटुम्बियों के कपट व्यवहार को बताते हुए निषेध कर रहे हैं ।

राग कहरवा

दुनियाँ माया माँ भुलानि बा, केउ केहू क नाहीं रे ॥ टेक ॥
पर धन लूटि लूटि घर तानेन, खायन सबै कुटुम्बवा ।
मरती बार हाथ नहिं लेहलैं, घर से एकौ दनवाँ ॥
एकै चाललैं ममनवाँ केउ केहू क नाहीं रे ॥
पर तिरिया से नेह लगवलैं, घर तिरिया बेगनवाँ ।
यम के दूत बाँधि जब लेहलैं, करिहैं कौन बहनवाँ ॥
भूलिलैं सारी चतुरनवाँ, केउ केहू क नाहीं रे ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह महँ, खोइलैं सकल जोवनवाँ ।
साधु संत से प्रेम न कइलैं, भजिलैं न भगवनवाँ ॥
भगिलैं नरक यतनवाँ, केउ केहू क नाहीं रे ॥

बालापन में खेलि के खोइलैं, यौवन युवति यौवनवाँ।
बूढ़ भये तन काँपन लागे, ओढ़िलैं अब कफ्फनवाँ॥
मरि कै जरी खतमवाँ, केउ केहू क नाहीं रे॥
रामनाम को भजन न कइलैं, अन्तकाल पछितनवाँ।
"गंगादास" कहैं सुनु मनुआँ, भजिले तूँ भगवनवाँ॥
कटि जइहैं यम यतनवाँ, केउ केहू क नाहीं रे॥
दुनियाँ माया माँ भुलानि बा केउ केहू क नाहीं रे॥

भैय्या बालक वृन्द! तथा सज्जन वृन्द! संसार '*विष्णुमाया-मोहिताः सर्वे स्त्रीपुत्रधनादिषु*'। संसार सिनेमा के खेल में भूला हुआ है, यथार्थ में स्त्री पुत्र कोई किसी का नहीं है। भगवान् ही—

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्व मे रामचन्द्रो दयालु र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने।

सबके सर्वस्व है "*स्वारथ रहित सखा सबही के*"। अन्य किसी को अपना न जान मानकर वही परम दयालु प्रभु श्रीराम जी को ही अपना सर्वस्व जान मानकर, उन्हीं का भजन स्मरण करना चाहिए। वही हमको संसार बंधन, यमपास, कुंभीपाकादि नरक यातना पुनः नाना प्रकार शूकर कूकर योनियातनाओं से मुक्त करेंगे।

भैय्या बालक वृन्द! तथा सज्जनो, आप संसारी कुटिम्बियों की तो कपट चातुरी लीला बराबर देख ही रहे हैं और फलस्वरूप में जीव को जो ताड़ना हो रही है, वह भी देख रहे हैं। देखिए नीच जातियों में भी इस बात का विचार है और परस्पर वे भी कह रहे हैं।

राग कहरवा

तोहके माया घेरे बाटै जैसे जला मकरी ।। टेक ।।
बेटवा बिटिया और मेहरारू एकौ काम न अइहैं ।
सोने का कड़ा नोट का बंडिल इहैं पर रहि जैहैं ।।
साथे जाइ न एकौ दमड़ी ।।जैसे जाला मकर ०।।
प्राण निकलि जब जैहैं तोहरा, तनिक देर नहिं लगिहैं ।
दुश्मन ऐगन बाँधि के तोहिका, घटवा पर लै जैहैं ।
फुकिहैं धरिकै हो लकड़िया ।।जैसेजाला मकरी० ।
प्राण के निकलत देर न लगिहैं, लेइहैं सब धन लूटि ।
बाँस तानि के ऐगन मरिहैं, जाइ खोपड़िया फूटि ।।
जैसे फूटै हो कँकरिया ।। जैसे जाला मकरी० ।।
रामनाम का करो भजनवाँ, होइ जइहैं कल्यान ।
आखिर एक दिन तोहरे माथे, काल विराजे आन ।।
धैके खूबै हो रगरिहैं ।। जैसे जाला मकरी० ।।
तोहके माया घेरे बाटै जैसे जाला मकरी ।।

भैय्या बालक वृन्द ! तथा सज्जनो, ऊपर की लिखी बातों से तो पूरा समझ में आ गया हो ।। । यह सब दुर्दशा आँखों की देखी हुई है और व्यवहार में यथार्थ ऐसा ही प्रत्यक्ष भी है । फिर अपनी भी तो यही दशा होगी, भैय्या हम सबों की क्या दुर्दशा हो रही है

और होती ही रहेगी, "*ब्रह्म सृष्टि अस अचल अनादी*"। परन्तु इसका जो प्रतिकार बताया गया है। उस पर भी ध्यान देना चाहिए, इन सब दुर्दशाओं को देखते हुए, जानते हुए भी न माने और—

श्रीरामोऽत्र विभीषणोऽयमनघो रक्षा भयादागतः,
सुग्रीवानय पालयैनमधुना पौलस्त्यमेवागतम्।
इत्युक्त्वाऽभयमस्य सर्व विदितं यो राघवोदत्तवा-
नार्त्तत्राण परायणः स भगवान्ननारायणो मे गतिः॥

भगवान् श्रीराम जी को रक्षक जानकर उनकी शरण न लें। तो हम सबों से मूर्ख और कौन होगा। तब तो यही चरितार्थ होता है।

जाकर मन इन सन नहिं राता। ते जन वंचित किए विधाता॥

अथवा "*कर ते डारि परस मणि देहीं, काँच किरच बदले ते लेहीं*" इसके सिवाय और क्या होगा।

भैय्या बालक वृन्द! मित्रो! इस भारत भूमि, पुण्य क्षेत्र में मनुष्य शरीर पाकर, हेतु रहित कृपाकारी प्रभु परम सुहृद्।

राम प्राणप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

सभी के अहैतुक मित्रत्व स्वभाव से ही प्रियत्वकारी भगवान् श्रीराम जी की शरण न लेते हुए, अपनी अविवेकिनी दुर्बुद्धि द्वारा इस शरीर से प्राप्त होने वाली पारस मणि रूपी रामभक्ति, उसको मोह अन्धकार में फेंककर इन्द्रिय विलासिता विषय भोग रूपी क्षणिक, फूटी हुई एक काँच की टुकड़ी के समान "*अवगुण मूल शूल प्रद, प्रमदा*

सब दुःख खानि" हलाहल विष को अधरामृत, कहकर स्त्रियों के मुख की लार ही पिया गया। जिसके द्वारा नरककुण्ड में पतन हुआ योनियातना गर्भयातना दुःख को भोगना पड़ा–*'सहसा करि पाछे पछिताहीं, कहहि वेद बुध ते बुध नाहीं'* ॥ इस प्रकार दुर्विचारी प्राणी को वेद पुराण में मूर्ख ही कहा गया है।

भैय्या बालक वृन्द ! यदि जानते-बूझते हुए भी भगवान् की शरण आप नहीं लेते हैं।

सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई ॥

प्रिय मित्रो ! आप भले ही कहें मैं पढ़ा लिखा विद्वान् हूँ, परन्तु विचार करने से आप हैं अबोध बालक ! देखिए, रावण भी तो अच्छा पढ़ा लिखा था, कुलीन ब्राह्मण था, वेद वेदान्त का परम पण्डित भी था। परन्तु *"रामनाम बिनु गिरा न सोहा"* रामनाम भजन बिना वाणी की शोभा नहीं हुई। वरना, यह कहना हुआ–*"विद्या बिनु विवेक उपजाए"* विद्या पढ़ लिखकर भी विवेक नहीं हुआ तो सब व्यर्थ हुआ देखिए, कविवर हरीप्रसादजी का कथन है।

❀ कवित्त ❀

लिखन पढ़न जानै, जल में तिरन जानै,
तुरग चढ़न जानै, चातुरी बखानी है।
जानैं नाड़ी वैदक रसायन छू मन्त्र जानैं,
यन्त्र तन्त्र योग जानै, युवती लुभानी है ॥
चोरी जानै जुआ जानै, ज्योतिष विचार जानै,
नाच गान तान जानै, तोता की कहानी है

जानै न ब्रह्मज्ञान हरिहर न जानै भक्ति,
राम नहिं जानैं तो वृथा ही जिन्दगानी है ॥

भैय्या बालक सब कुछ जानते हुए भी ब्रह्म परमात्मा को न जाना और उनकी भक्ति न किया तथा रामनाम न जाना तो जीवन वृथा है।

एक विस्वा हारे जो न मानै गुरु लोगन को।
तीनि विश्वा हारे खाये खर्चो न दाम को॥
पाँच विश्वा हारे चोरी चुगुली लवारी करैं।
दश विश्वा हारे गए तीरथ न धाम को॥
हरिहर न सेए संत बारह विश्वा हारे सोई।
सोरह विस्वा हारे जो न तजे कोह कामको॥
उन्नीस विश्वा हारे जौन कन्या बेचि धन खाय।
बीस विश्वा हारे जो बिसारे रामनाम को॥

भैय्या सब कुछ में हार भई सो तो साधारण हार हुई परन्तु बीसों विश्वा हार तो उसी की हुई जो रामनाम से हार हुआ अर्थात् रामनाम न प्राप्तकर सका। रावण की सब प्रकार हार क्यों हुई उसके पास केवल राम नाम कवच नहीं था *"राम नाम जपतां कुतो भयम्"* *"जगज्जैत्रेक मंत्रेण राम नामाभिरक्षितम्"* सारा जगत एक राम नाम ही से रक्षित है अंगद कहे-

जौं खल भयसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥

आखिर भया वैसा ही-

एक लख पूत सवा लाख नाती । तेहि रावण घर दिया न बाती ।

रावण का सर्व परिवार के सहित संहार हो जाने के बाद रावण के शव के पास बैठकर मन्दोदरी क्या कह रही है अहह प्राण नाथ !

जगत विदित तुम्हारि प्रभुताई । सुत परिजन बल बरणि न जाई ।।

राम विमुख अस हाल तुम्हारा । रहा न कुल कोउ रोवन हारा ।।

परम उदार शिरोमणि भगवान् श्रीराम जी की परम प्रिया पतिव्रता सीता का हरण किए और परब्रह्म परमात्मा त्रैलोक विजयी उनसे बैर कर लड़ाई ठाने तुम्हारे इतना उत्पात अनीति करते हुए फिर भी तुम्हें सायुज्य मुक्ति अर्थात् अपने मुखारविन्द में स्थान दिये ।

जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं ।
जेहि नमत शिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहिं करुणामयम् ।।
आजन्म ते पर द्रोहरत पापौघमय तव तनु अयं ।
तुमहूँ दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयम् ।।

तुम्हारा पाप मय शरीर होते हुए भी तुम्हें निज धाम दिए ऐसे निर्मायिक ब्रह्म परमात्मा राम को मैं नमस्कार करती हूँ ।

अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपा सिंधु नहिं आन ।
योगि वृन्द दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान ।।

अहह ! प्राणनाथ, श्रीरघुनाथ जी के समान कृपासागर करुणा वरुणालय और कोई नहीं है योगियों को दुर्लभगति सायुज्य मुक्ति भगवान् तुम्हारे सरीखे पापी को दिए, इस प्रकार उदार प्रभु को-

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी ज्ञान रंक नर मंद अभागी ॥

ऐसे प्रभु को जो माया ममता मिथ्या भ्रम को छोड़कर भजन नहीं करते वह मनुष्य ज्ञान के दरिद्री मंद बुद्धि अभागे हैं, प्रभु से विमुख मनुष्यों के लिए कविवर गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी कवितावली में क्या कहते हैं।

तिनते खर शूकर श्वान भले, जड़ता वश तेन कहैं कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं,सो सही पशु पूँछ विषानन द्वै ॥
जननी कत भार मुई दशमास, भई किन बाँझ,गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ, जिए जगमें तुम्हरों बिनु ह्वै ॥

भाइयो, जिन्हें श्रीराम जी से प्रेम नहीं है वे बिना सींग पूँछ के पशु ही हैं इनसे तो सूकर गदहा और कुत्ते ही अच्छे हैं। ये इनसे भी गए बीते हैं, ऐसे नीच संतान को माता दश मास बोझा ढोकर क्यों मरी, बन्ध्या क्यों न रही, गर्भपात क्यों न हो गया, जो जीव जानकीनाथ का सेवक होकर नहीं है, ऐसा मनुष्य जल जाना चाहिए 'नतरु बाँझ भलि बादि बियानी'। प्रिय सज्जनो ऐसे हजार-हजार लाख-लाख कोटि कोटि धिक्कार ग्रन्थों में पुराणों में कवियों ने किया है—

चतुराई चूल्हे परै, भट्ठी परै अचार।
तुलसी रघुबर भजन बिनु, चारौ वरण चमार ॥
राम जपत कुष्टी भलो, चुइ चुइ परत जो चाम।
कंचन देह निकाम है, जेहि मुख आवै न राम ॥

अब इससे और क्या धिक्कार करना चाहिए–

राम राम कहु मोरे सारे। कब लगि रहबे टाँग पसारे ॥
राम राम कहु मोरी ससुरी। कब लगि रहबो कोने घुसुरी ॥

अब देखिए साला ससुरी तक कहा जा रहा है, फिर भी मनुष्य ऐसा बेशर्म निर्लज्ज हो गया है, जो अपना कर्त्तव्य नहीं करते उन्हीं को संसार यातना भोगनी पड़ती है।

भैय्या बालक वृन्द ! ऊपर लिखे हुए शास्त्र विहित कर्तव्य को बारम्बार पढ़ो, समझो और करो, तभी अपना कल्याण होगा। मानस तो आप सब सदा पढ़ते ही होंगे। वह अपने सब मनोरथ को देने वाला कलिकाल में प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है।

राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवनि मूरि सुहाई ॥

राम कथा कलिकाल में सब कामनापूर्ण करती है। सज्जनों की दृष्टि में संजीवनी मूल है। तो मानस–'*यहाँ न विषय कथा रस नाना*' भगवान् के गुणानुवाद के सिवाय किसी प्रकार का विषय नहीं इसमें वर्णन है। श्रीतुलसीदास जी हम सबों अबोध बालकों के प्रति महान् कृपा करके जीवों के हितार्थ नहीं करते तो–

वेद मत सोधि सोधि सोधि कै पुराण सबै,
सन्त औ असन्तन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही क्रूर कलि के कुचाली जीव,
कौन रामनाम हूँ की चर्चा चलावतो ॥

श्री

वना
त्रिन
भारी
बता
निर्गु
उपदे
राम
स्वर्ग
देखु
तरै

तो यह
अपने
जन्म
सन्मुख

अति ही

सिद्धि सदन सुन्दर बदन सेंदुर शोभे भाल।
मंगल मय मंगल करन श्री गिरिजा के लाल ॥

वैवाहिक कार्यक्रम विवरण

पांणिग्रहण संस्कार– माघ शुक्ला १५ सोमवार ता० १२-२-७६
विदा– फागुन बदी १ मंगलवार ता० १३-२-७६

'बेनी' कवि कहैं मानो मानो हो प्रतीति यह,
पाहन हिये में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो॥

भैय्या बालकगण! यदि तुलसीदास मानस रामायण नहीं बनाते तो हम सबों सरीखे निरक्षर अबोध अज्ञान बालकों को कौन बिना पैसे की शिक्षा दे, रामनाम की चर्चा कौन कराता और भारी भवसागर से पार कराता अर्थात् रामनाम रूपी नौका कौन बताता। "*घोर भवनीर निधि नाम निज नाव रे*"। और भी देखिए, निर्गुण उपासक जगद्गुरु श्रीकबीरदास जी भी अपने शिष्यों को उपदेश देते हुये रामनाम की ही नौका बता रहे हैं।

रामहिं नाम विश्राम है जीव को, और विश्राम कछु नाहिं दीषै।
स्वर्ग अरु नरक पाताल छूटै नहीं, जहाँ जीव जाइ तहँ काल पीषै॥
देखु भवसिन्धु में नाम नौका बनी, तासु के बीच जब जीव आवै।
तरै भवसिंधु सुखधाम पहुँचै सही, काल की चोट पुनि नाहिं खावै

यदि जीव किसी उपाय से नाम रूपी नौका में प्रवेश हो सके तो यह घोर संसार सागर से निश्चय करके पार उतर जायगा और अपने सुख स्थान साकेत वैकुण्ठादि में पहुँच जायगा। सदा के लिए जन्म मरण का भय देने वाले काल से मुक्त हो जायगा। "*कालौ सन्मुख गए न खाई*"।

भैय्या बालक वृन्द! तथा सज्जन वृन्द! मैं तो आप सबों से अति ही अबोध बालक हूँ। कहाँ तक लिखूँ? लेखक शिरोमणि श्री

गोस्वामी तुलसीदास जी तो अपने रामचरित मानस में सभी कुछ चित्रण करके लिख गये हैं। उसी को सर्वदा पढ़ो समझो और करो।

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भव निधि तरहीं॥

कोई भी जीव मानस को कहने वाला सुनने वाला अनुमोदन करने वाले सभी भयंकर संसार सागर को गौ पाद के समान बिना परिश्रम के ही तर जाते हैं। परन्तु-

भैय्या बालक वृन्द! कहना लिखना कवियों का है। पढ़ना समझना और करना तो अपने ही सबों को है। भैय्या! करें वा न करें यह तो मरजी आपकी है।

करहु जाइ जा कहँ जो भावा। हम तो आजु जन्म फल पावा॥

परन्तु मैं तो अपना जीवन कृतार्थ समझ रहा हूँ "*हित अनहित पशु पच्छिउ जाना*" हिताहित का ज्ञान तो पशु पक्षी को भी है। "*आपन करनी, पार उतरनी*" मैं तो पुण्यक्षेत्र भारतभूमि में जन्म पाने के फलस्वरूप जो-

सबहि भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥

प्रभु ने अपनी शरण में मुझे अपना लिया।

भैय्या बालक वृन्द! न तो गोस्वामी जी का आपसे कोई वैर विरोध था और न मेरे ही से आपका कोई वैर विरोध है कि आपको कुमार्ग में चलने को कहेंगे। आपको क्यों नीचे गिरावेंगे। सन्तों के लिये भगवान की आज्ञा है "*संत सरल चित जगत हित*" इसलिए गोस्वामी जी ने इतना परिश्रम करके हम सब अनभिज्ञों के लिए "*कल्याणानां निधानम्*" कल्याण का मार्ग बनाया है। और मैं उसी को दोहरा रहा हूँ। इसका कारण यह है मैं क्यों दोहराता हूँ। तो-

पर उपकार बचन मन काया। संत सरल सुभाव खगराया॥

यदि मैं सन्त नहीं हूँ, फिर भी चेरा तो संत का ही किया हूँ। इसलिये दोहरा रहा हूँ।

भैय्या बालक वृन्द! गोस्वामी जी तो चार सौ वर्ष की शाक्षी दे रहे हैं।

एक दिन तुलसी वो रहे, घर घर माँगहिं चून।
कृपा भई रघुनाथ की, लुचई दोनों जून॥

परन्तु गोस्वामी जी को आप प्रत्यक्ष नहीं देखे हैं। वह आज चार सौ वर्ष की बात कह रहे हैं। परन्तु भैय्या! मैं तो आपके सामने प्रत्यक्ष वर्तमान हूँ। मैं आज को साक्षी दे रहा हूँ कि *"सुखी न भयउँ अबहि की नाईं"* एवं-

जबसे प्रभु पद पद्म निहारे। मिटे दुसह दुःख दोष हमारे॥

भैय्या! जब से मैं प्रभु के चरणों की शरण लिया हूँ, तभी से हमारे सारे पाप दुःख दोष सभी मिट गए। *"कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ"*।

कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भे भूषण सरिस, सुयश चारु चहुँ ओर॥

आज मेरे सारे दुरित दुर्गुण दोष नष्ट होकर संसार में परम यशस्वी कह रहे हैं। चारों तरफ सुयश कीर्ति गान करते हुए साधु शिरोमणि बने हैं। सुग्रीव की तरह *"तनु बहुवर्ण चिन्ता जर छाती"* परन्तु *"सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ'* इसी प्रकार *'निज जन जानि राम*

मोहि, संत समागम दीन्ह ' जो "*सतसंगति दुर्लभ संसारा* ' और "*संत समागम राम धन तुलसी दुर्लभ न दोय* ' परन्तु "*सो सब आज सुलभ मोहिं स्वामी*" वह सभी आज मुझे सुलभ हैं।

भैय्या बालक वृन्द ! पुण्य क्षेत्र भारतवर्ष में मनुष्य शरीर बहुत भाग्य से प्राप्त होता है। "*यह संघट तब होइ जब पुण्य पुराकृत भूरि*" मनुष्य शरीर का सर्व प्रथम कर्तव्य वर्णाश्रम धर्म कहा जाता है।

वरनाश्रम निज-निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहि भय शोक न रोग॥

वर्णाश्रम धर्म पालन करने का फल है। स्त्री, पुत्रादि विषयाशक्ति से वैराग्य, वैराग्य का फल है आत्मा परमात्मा का ज्ञान का फल है आत्मा परमात्मा की एकता योग, योग का फल है आत्मा की परमात्मा में भक्ति, भक्ति का फल है आत्मा का परमात्मा में प्रेम, प्रेम का फल है आत्मा के द्वारा परमात्मा की सेवा, का फल है, इष्टदेव आत्मा के प्रति परमात्मा की प्रसन्नता इष्टदेव परमात्मा की प्रसन्नता का फल है। आत्म मिलन, जो–"*पूर्णमदः, पूर्णमिदं पूर्णात्* ' पूर्ण काम "*तब यह जीव कृतारथ होई* '। वही पूर्ण काम।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥

वही सुख सच्चिदानन्द परमानन्द है। और "*जीव पाव निज सहज स्वरूपा*" वही जीव अपने स्वस्वरूप को प्राप्त हो जाता है वही जीवन मुक्त है। "*स जीवन मुक्तो भवति*"।

भैय्या बालक वृन्द ! वहीं तक जीव को पहुँचना है। यथा–

सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

और यही प्रभु भगवान् श्रीराम जी की आज्ञा है।

मम दर्शन फल परम अनूपा। जोल पाव निज सहज सरूपा ॥

यह जीव प्रभु श्रीराम जी के चरणकमलों का दर्शन प्राप्त करते ही अपना स्वरूप प्राप्त कर सकता है। और अपना यथार्थ "*ईश्वर अंस जीव अविनाशी*" हो सकता है।

भैय्या बालक गण ! इसलिये मैं तो धन्य धन्य हो चुका हूँ कि प्रभु "*निज जन जानि लीन्ह अपनाई* । अपने चरणों की चरण में स्वीकार कर लिए हैं। अब तो यही आशा है।

रामचरण पंकज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं ॥

वर्णाश्रम के जो ३८ सोपान बताये गये हैं, वह तो उत्तीर्ण होकर प्रभु के चरणों की शरण तक पहुँच गया हूँ, अब जो निवृत्ति के २८ सोपान बताये गये हैं। उनमें से वैराग्य कें प्रथम सोपान पर अर्थात् नाम वैराग्य पर आरूढ़ हूँ और आगे बढ़ाने को प्रभु की इच्छा जैसी होगी। प्रभु तो कह रहे हैं। "*ददामि बुद्धि योगं तं येन मामुपयान्तते*" अर्थात् "*उर प्रेरक रघुवंश विभूषण*" एवं "*योगक्षेमं वहाम्यहम्*" अर्थात् अब मेरे ऊपर उत्तरदायित्व नहीं है हाँ प्रार्थी हूँ, कृपा का दया का आकाँक्षी हूँ। "*जासु कृपा नहिं कृपा अघाती*" वही प्रभु की ही कृपा से मोह जाल से मुक्त होकर यहाँ तक आया हूँ। वही प्रभु की ही कृपा से चरणकमलों तक पहुँचने का साहस करता हूँ और वारम्बार अहर्निशि यही श्री चरणों में प्रार्थना करता हूँ हे प्रभु-

मेरे राम मुझे अपना लेना ॥ टेक ॥
अपने चरणों का दास बना लेना ॥

ठोकरें खाई बहुत इस जग के झूँठे प्यार पर।
इस लिए आया हूँ सीतापति तुम्हारे द्वार पर॥
अब मुझे तारो न तारो यह तुम्हारे हाथ है।
यदि न तारोगे तो बदनामी तुम्हारी नाथ है॥
जरा नाम की लाज बचा लेना। मेरे राम मुझे अपना लेना॥

गीध गणिका गज अजामिल की खबर ली आपने।
भक्ति द्वारा भीलनी को मुक्त कीन्हा आपने॥
भक्त कितने आप पै जीवन निछावर कर गए।
नाम लेकर आपका पापी हजारों तर गए॥
उन्हीं पतितों के साथ मिला लेना। मेरे राम मुझे अपना लेना॥

काम क्रोधादिक लुटेरों का हृदय में वास है।
पातकों का बोझ है अधमो की संगति पास है।
पवन माया का चला है, भ्रम भवँर रहता है साथ।
बीच भवसागर में बेड़ा बिन्दु का बहता है नाथ॥
जरा धार से पार लगा देना। मेरे राम मुझे अपना लेना॥

हमारे दीन के प्रभु, भैय्या श्रीरामभद्र! मैं संसार सागर के बीच भँवर में पड़ा हूँ, मुझे इस अपार भवसागर से पार करके अपने चरणों की शरण सेवा में लगा लीजिए।

अपराध सहस्र भाजनं पतितं भीम भवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥

हे प्रभु ! मैं सर्व प्रकार निरुपाय हूँ, मेरे उपाय से अति अधिक है। कृपा करो हे प्रभु कृपा करो, कोटि कोटिन हजारों पापों के कारण भयंकर भवसागर में माता की योनि यातना रूप भवकूप में पड़ा हूँ रक्षा करो।

राम सुनि ले मेरी, मैं शरण हूँ तेरी वेगि आओ।
आओ आओ न देरी लगावो ॥टेक॥

रूप श्यामल सलोने सुहावन।
जन्म लीन्हा करन जग को पावन ॥
तुम दया आगरे, राम हो चातुरे, जनि भुलावो।
आओ आओ न देरी लगाओ ॥१॥

दीन दुखियों के धन प्राण तुम हो।
अपने भक्तों के भगवान तुम हो ॥
डूबै नैय्या नहीं, हो खिवैया तुम्हीं, पार लगावो ॥
आओ आओ न देरी लगावो ॥२॥

पातकों की घटा घोर घमसान है।
और जग सिंधु का बेग बलवान है ॥
काम मद क्रोध माया का तूफान है।
देह जलयान का जीर्ण सामान है ॥
डूबौ नय्या नहीं हो खेवैय्या तुही पार लगावो ॥
आओ आओ न देरी लगाओ ॥३॥

क्या तुम्हें दीन गज ने पुकारा नहीं।
क्या दुखी गीध था तुमको प्यारा नहीं॥
क्या यवन पिंगला को उधारा नहीं।
क्या अजामिल अधम तुमने तारा नहीं॥
फिर बताते हो क्योंकर बहाने मुझे।
नाथ अब आपही दो ठिकाना मुझे॥
वेगि आओ, आओ आओ न देरी लगाओ॥४॥
किसके चरणों पै नीचा ये शिर मैं करूँ।
आह का किसके दिल पै असर मैं करूँ॥
किसका घर है कि जिस घर में घर मैं करूँ।
आँख का बिन्दु किसकी नजर मैं करूँ॥
आखिरी है ये विनती सुनाना मुझे।
नाथ अब आपही दो ठिकाना मुझे॥
वेगि आओ, आओ आओ न देरी लगाओ॥५॥
दासगंगा के गोदी दुलारे, न रहो मेरे नयनों से न्यारे।
शिष्य है तूँ मेरा मैं गुरु हूँ तेरा, मत रुलाओ॥
आओ आओ न देरी लगाओ
राम सुनि ले मेरी, मैं शरण हूँ तेरो, वेगि आओ॥६॥
भैय्या हो! रामलाल हो! प्यारे हो! गुरु के दुलारे हो!
सरकार हो! गुरु के मनोरथ पूर्ण करने हारे! प्राणों के प्यारे।
नयनों के तारे! मेरे हृदय के सहारे॥ वेगि आओ०॥
भैय्यारे! प्यारेरे! दुलारेरे! अब मत सताओ! मत रुलाओ०॥

दशरथ नृप लाल लीजै खबरिया हमारी हो ॥ टेक ॥
गर्भ वास में कीन्हेउ करारिया अब काहे करत अबरिया हो।
त्रिविध ताप से अति तापित हूँ छूटत नाहिं तिजरिया हो ॥
काम क्रोध मद लोभ सतावत काहे न सुनत गोहरिया हो।
"गंगादास" तृषित भयो भारी देखत भव की डगरिया हो ॥
दशरथ नृपलाल लीजै खबरिया हमारी हो ॥

भैय्या रामभद्र ! आप तो सदा ही प्रतिज्ञा करते हैं कि-

करौं सदा तिनकी रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी ॥

तो क्या मेरे लिए यह नियम कुछ अदल बदल हो गया है, अथवा-

तारि तारि अधमन थके, अब गणेश की बेर।
आना कानी करत हौ, देखि पाप को ढेर ॥

भैय्या, अधमों को तारते-तारते कुछ परिश्रम के कारण थक गए हो क्योंकि आप तो अति ही सुकुमार कोमल बालक हो, इसी से तो आना कानी अर्थात् सुनते हुए भी न सुनने के समान देख रहे हो। तभी तो कौशल्या देवी कह रही हैं।

अति सुकुमार युगल मम वारे। कवनि भाँति लंका पति मारे ॥

तो भैय्या, रावण से भी बलवान हमारे पापों को देखकर तो नहीं डर रहे हो। परन्तु मैं तो *"श्रवण सुयश सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर"*। कानों में आपकी बड़ी भारी कीर्त्ति सुयश उदारता सुना

हूँ कि प्रभु, भवभीर, अर्थात् संसार की योनियातना, जन्मयातना, यमयातना अर्थात् जन्म मरण के दुःख से जीव को मुक्त कर देते हैं। ऐसा जानकर शरण में आया हूँ परन्तु मेरे प्यारे, तुम तो कुछ भी कष्ट मत करो, मैं तो जीव हूँ। "*जीव कर्मवश दुःख सुख भागी*"। कर्माधीन हूँ, सुख दुःख भोगता रहूँगा, अपने कर्माधीन जन्मता मरता रहूँगा, परन्तु भैय्या, तुमतो सुखी हो रहो, परन्तु–

इतना तो करना स्वामी जब प्राण तन से निकलें।

श्री गंगा जी का तट हो, मेरे मुख में तुलसी दल हो ॥

मेरे प्यारे तुम निकट हो ॥ जब प्राण तन से निकलें॥

और भैय्या ! आगे के लिये भी और प्रार्थना यह है।

जेहि योनि जन्मों कर्म वश, तहँ राम पद अनुरागहूँ।

मैं कर्माधीन जहाँ भी शूकर कूकर जिस योनि में जन्म लूँ, तहाँ तहाँ आपके चरणों में प्रेम करूँ और भी—

कठिन कर्म लै जाहिं माहिं जहाँ, जहँ अपनी बरियाई।

तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ अंड की नाईं॥

मैं जहाँ भी जाऊँ परन्तु "*गुरु निठुर बिसरि जनि जाहीं*"। मुझे भूल मत जाना।

अशरण शरण विरद संभारी। मोहि जनि तजहु भक्त भय हारी॥

भैय्या रामभद्र ! भक्त भयहारी विरद को स्मरण करते हुए, मेरी सदा ही रक्षा करते रहना, मैं चरणों से दूर न होने पाऊँ। भैय्या, मैं भले ही तुम्हें भूल जाऊँ, परन्तु आप मत भूलना।

राग, रसिया

मैं भूलूँ तो भूलूँ प्यारे तूँ मत मुझको भूल।
मैं भूला तेरी माया जाल में तूँ काहे में भूल॥

दोहा—तव माया वश जीव जड़, संतत फिरैं भुलान।
तिन पर दया न छाँड़िया, कृपासिन्धु भगवान॥
मैं भूलूँ तो भूलूँ प्यारे तूँ मत मुझको भूल० ॥

दोहा—एक मंद मैं मोह वश, कुटिल हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि विसरेहु, दीनबन्धु भगवान। मैं भूलूँ तो० ॥
व्याकुल भौंरा मधु बिना, कोयल बिना वसंत।
तैसे हम तुम्हरे बिना, जानहुँ श्री भगवन्त ॥ मैं भूलूँ तो० ॥
सूरज बसैं आकाश में, कमल सरोवर तीर।
हम पै कृपा न छाँड़ियो, क्या नियरे क्या दूर ॥ मैं भूलूँ तो० ॥
रामचन्द्र तूँ चन्द्र है, नयना मेरे चकोर।
अष्ट प्रहर निरखत रहूँ, इन नयनन की कोर ॥ मैं भूलूँ तो०
शशि के तारा बहुत हैं, तारा के शशि एक।
हमसे तुमको बहुत हैं, तुमसे हमको एक ॥ मैं भूलूँ तो० ॥
चन्द्रा बसैं अकाश में, बन में बसैं चकोर।
गुरुदेव देखत रहैं, ज्यों घन चातक मोर ॥ मैं भूलूँ तो० ॥

बार बार पद लागहूँ. विनय करौं कर जोरि।
भक्त कामना कामधुक् सुयश होहिं प्रभु तोरि ।।मैं भूलूँ तो०।।
राम सीय शोभा सुखद, महिमा गुण आगार।
प्रभु के दासहिं नाम बल, चाहत चरण तुम्हार ।।मैं भूलूँ तो०।।
एक भरोसा नाम को, राम तुम्हरिहि आस।
विनय यही श्री चरण में, लघु मति गंगादास ।मैं भूलूँ तो०।।

भैय्या, रामभद्र ! मैं सब प्रकार अनाश्रित, अनाथ, अरक्षित हूँ। अपढ़, अज्ञानी, अबोध हूँ। वैराग्य, ज्ञान, भक्तिहीन हूँ। सर्व साधनहीन केवल तुम्हारे नाम का ही बल सहारा है। यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं तुम्हारी माया वश भले ही तुम्हें भूल जाऊँ, परन्तु प्यारे तुम मुझे मत भूल जाना।

कवित्त

काहू के अधार जप योग पूजा पाठ नेम,
काहू के अधार होम संध्या प्रात शाम की।
काहू के अधार देश देशन के पुण्य क्षेत्र,
काहू के अधार वेद भाषैं चारों धाम की ।।
काहू के अधार काम क्रोध मोह देह गेह,
काहू के अधार निज मित्र सुत वाम की।
मोहिं तो भरोसो एक कोशलेश सीताराम,
प्रीति औ प्रतीति है गणेश रामनाम की ।।

भैय्या रामभद्र ! मुझे तो तुम्हारी तथा तुम्हारे नाम ही की गति है । श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी हमारे सरीखे अनभिज्ञ अपढ़ मूर्खों के लिए सरल उपाय अपना अन्तिम मन्तव्य बता गए हैं कि "*राम नाम लीजिए*" मैं तो उसी पर जीवन बलिदान किया हूँ ।

कवित्त

अल्प तो अवधि जीव, तामें बहु शोच पोच,
करिबे कहँ बहुत है पै काह काह कीजिए ।
पार ना पुराणन को, वेदहू को अन्त नाहिं,
वाणी तो अनन्त मन कहाँ कहाँ दीजिए ॥
काव्य की कला अनन्त छंद को प्रबंध बहु,
राग तो रसीले रस कहाँ कहाँ पीजिए ।
सब बातन की एक बात तुलसी बताए जात,
जन्म जो सुधारा चाहो तो श्रीरामनाम लीजिए ॥

भैय्या रामभद्र ! मैं तो यही श्रीगोस्वामी जी की आज्ञा शिरोधार्य करके अपना जीवन आपके चरणकमलों में समर्पण किया हूँ ।

राम जी, तुम्हरे लिए हम कीन साधु का वेष ॥ टेक ॥
सुख ऐश्वर्य सबहिं कुछ त्यागा, फिरत विराने देश ।
शान शौक भूषण सब त्यागे, जटा बनाये केश ॥ रामजी ॥

खान पान इन्द्रिय सुख त्यागे, पावा न अपना रमेश।
बन बन में तुम्हें खोजत डोलूँ, सबसे पूछूँ संदेश रामजी०॥
दिन नहिं भूख रात नहिं निदिया, सहतहूँ कठिन कलेश।
"गंगादास" दुःखित भयो भारी, पावत नहिं सरेश। रामजी०॥

भैय्या रामलाल! सब कुछ पाया हूँ, केवल तुम्हें नहीं पाया। परन्तु—

तुम बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥

भैय्या! तुम्हारे बिना सभी सुख निरर्थक हैं। केवल एक ही बल, आसा रक्खे हूँ। श्रीगोस्वामी जी कहते हैं।

रामनाम कामतरु जोई जोई माँगिहै,
तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै॥

रामनाम कल्पवृक्ष है, जो ज़ो माँगोगे. स्वार्थ चाहे परमार्थ कुछ भी कम न होगा। तो भैय्या, स्वार्थ में तो यह माँगता हूँ।

तव पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर फल यह सुन्दर॥

नहीं तो कहा गया है। भैय्या तुम्हारे चरणों में प्रेम न हो तो।

सो सुख कर्म धर्म जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥

इसलिये—

योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहाँ न राम प्रेम परधानू॥
अब करि कृपा देहु वर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

प्रथम, स्वार्थ में तो यह माँगना है कि आपके चरणों में सहज प्रेम हो पुनः—

पुनि दूसर माँगौं कर जोरे। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरे॥

दूसरा, परमार्थ में यह माँगता हूँ सो हे नाथ, मेरे मनोरथ को पूर्ण करो।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अकथ अनादि अनूपा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रणतारति मोचन॥

परमार्थ स्वरूप जो आप हैं वही आपका परम मंगलमय विग्रह अनादि अप्राप्त, तुम्हें मैं सदा सर्वदा नेत्रों से देखता रहूँ।

भैय्या! रामभद्र! प्राण प्यारे! हृदय दुलारे! नयनों के तारे! "*तुम हमैं देखो न देखो, हम तुम्हैं देखा करें*"। जीवन धन, "*रामचरण पंकज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं*"। जीवन तो तभी सफल है जब तुम्हारे चरण पा जाऊँ, नहीं तो "*प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू*"। परम पद भी मेरे लिये निरर्थक ही है। इसलिए सदा, "*तव नाम जपामि*"। नाम जपता हूँ।

भैय्या रामभद्र! तुम्हीं को सदा सर्वत्र पुकार रहा हूँ।

राम रामा पुकारूँ बन बन में। राम प्यारे बसो मेरे मनमें॥टेक॥
बन में पुकारूँ सघन में पुकारूँ। पुकारूँ मैं पल्लव लटन में॥
जल में पुकारूँ औ थल में पुकारूँ। पुकारूँ मैं तारा गगन में॥
पशु-पच्छी ऋषि-मुनि में पुकारूँ। पुकारूँ मैं हीरा रतन में॥
"गंगादास" तन मन में पुकारूँ। हारेउँ मैं अपनी यतन में॥
राम रामा पुकारूँ बन बन में। राम प्यारे बसो मोरे मन में॥

भैय्या रामभद्र ! मेरे उपाय तो सारे निरर्थक हो गए, मेरे यतन से तुम बहुत दूर हो, मैं तो हार गया।

राम तुम्हें कौने वन खोजन जाऊँ ॥ टेक ॥

घर वन में सब खोजत हारेउँ । खोज कतहुँ नहि पाऊँ ॥
पर्वत नदी ताल सब खोजेउँ । खोजि थकेऊँ सब गाऊँ ॥
बाग बगीचा फूलबातिन में । खोजत हूँ सब ठाऊँ ॥
हौं हतभाग्य अधम शठ जड़मति । कैसे मैं तुम्हहिं सोहाऊँ ॥
गंगादास तुमहिं बिनु प्यारे । बृथा मैं जन्म गँवाऊँ ॥
राम तुम्हें कौने वन खोजन जाऊँ ॥

भैय्या मेरे उपाय से बहुत दूर हो प्यारे-

जेहि पूँछौं सो मुनि अस कहई । ईश्वर सर्व भूतमय अहई ॥
सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा । वारि वीचि इव गावहिं वेदा ॥
देश काल दिशि विदिशिहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जग मय सब रहित विरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥

भैय्या, अब प्रेम कहाँ से लाऊँ, कोई ऐसा भी कहते हैं ।

पुर वैकुंठ जान कह कोई । कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥

राम वैकुण्ठ में रहते हैं, कोई कहते हैं क्षीर समुद्र में रहते हैं ।

राम तुम्हें कौने वन खोजन जाऊँ ॥

जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि शंभु नचावन हारे ॥
तेऊ न जानहिं मर्म तुम्हारा। और तुमहिं को जाननि हारा ॥

भैय्या ! तुम्हें विधि हरिहर भी नहीं जानते तो मैं कैसे जानूँ।

राम तुम्हें कौने वन खोजन जाऊँ ॥

भैय्या रामभद्र ! तुमहिं बिना जाने सभी निरर्थक हैं।

काम से रूप प्रताप दिनेश से सोम से शील गणेश से माने।
हरिचन्द से साँचे बड़े विधि से मघवा से महीश विषय रस साने॥
शुक से मुनि नारद से वक्ता चिरजीवन लोमस से अधिकाने।
ऐसे भए तो कहा तुलसी जो पै राजिव लोचन राम न जाने ॥

भैय्या रामभद्र ! सब कुछ होते हुए, सब कुछ जानते हुए भी, जब तक तुम्हें नहीं जाने तो सभी झूठा है। भैय्या तुम्हें जानने के लिए तो गोस्वामी जी यही बता रहे हैं। तो "*सोइ जानै जेहि देहु जनाई*" अथवा—

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥

तुम्हारा गूढ़ तत्त्व, अर्थात् तुम्हें जो जानना चाहें तो आपके नाम को जप कर जान सकते हैं। तो भैय्या तुम तो अपने परम प्यारे भक्तों को ही जनाओगे वही जानेंगे।

तुम्हरी कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन। जानहिं भक्त भक्त उर चन्दन ॥

भैय्या, तुम्हारी कृपा से तो तुम्हारे भक्त ही तुम्हें जानेंगे, हे राम ! जिनके हृदय में आप भक्ति रूप होकर सदा ही चन्दन की तरह शीतल

करते रहते हो। परन्तु मेरे सरीखे अभागे अभक्तों को तो तुम्हारा नाम ही अर्थात् राम नाम ही एक मात्र आधार है।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥

भैय्या रामभद्र! मैं तुम्हारे वही नाम की शरण लेता हूँ जो-

तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पुंज नशावन॥

जो श्रीरामनाम हमारे सरीखे घोर पापियों के सारे पाप ताप को नाश करते हुए पावन करता है। भैय्या! "*एक भरोसा नाम को राम तुम्हारिहि आस*" अतएव-

रति रामहिं सों, गति रामहिं सों, मति राम सों रामहिं को बलहै॥

भैय्या रामभद्र, तुम्हीं से रति है, तुम्हीं में मति है, तुम्हारी ही गति है, और तुम्हारा ही बल है। हा राम!

राम रामा पुकारूँ वन वन में, राम प्यारे बसो मेरी गोदी में।

दो० जिनहिं न चाहिय कबहुँ कछु, तुमसन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु उर, सो राउर निज गेह॥
राम प्यारे बसो मेरी गोदी में॥

सब कर माँगहि एक फल राम चरण रति होउ।
तिनके मन मन्दिर बसहु सिय रघुनन्दन दोउ॥
राम प्यारे बसो मेरी गोदी में।

यश तुम्हार मानस विमल हँसनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुण गण चुगइ राम बसहु हिय तासु॥

राम प्यारे बसो मेरी गोदी में ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु जिनके सब तुम तात।
तिनके मन मन्दिर बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥
राम प्यारे बसो मेरी गोदी में ॥
राम सीय शोभा सुखद महिमा गुण आगार।
गंगादासहिं नाम बल चाहत चरण तुम्हार॥
राम रामा पुकारूँ वन वन में। राम प्यारे बसो मेरी गोदी में ॥

भैय्या रामभद्र ! मैं तो सर्व प्रकार निर्गुण हूँ। ऊपर कहे हुए तो कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ रहे हैं। मैं कैसे अपनी आशापूर्ण करूँ। "*निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं*" अथवा "*मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं*" निज बुधि बल हीन हूँ, इसलिए हृदय में दृढ़ता नहीं होती है। "*नाथ सकल साधन मैं हीना*" अथवा '*जानौं नहि कछु भजन उपाई*' भैय्या तुम्हारी सत्य प्रतिज्ञा '*तिन्हहि मोर बल*" श्रीमुखारविन्द से कहा गया है, उसी पर जीवन बलिदान किया हूँ। भैय्या, मुझे तुम्हारा ही बल है, तुम्हारा ही विचार है। "*यदिच्छसि तथा कुरु*' मुझे तो केवल "*एक भरोसा नाम का राम तुम्हारिहिं आश*" भैय्या हो, रामलाल हो, प्यारे हो, दुलारे हो, "*रामनाम कलि अभिमत दाता*" जानकर नाम ध्वनि लगाता हूँ।

राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी।
राम चरण पंकज जब देखौं। तब निज जन्म सुफल करि लेखौं॥
नतरु बाँझ भलि बादि वियानी। राम विमुख सुत ते हित हानी॥

जाइ जियत जग सो महिभारू । जननी यौवन बिटप कुठारू ॥

राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी

जे पद परसि तरी ऋषि नारी । दंडक कानन प वन कारी ॥

जे पद जनकसुता उर लाए । कपट कुरंग सङ्ग धरि धाए ॥

हर उर सर सरोज पद जेई । अहो भाग्य मैं देखब तेई ॥

राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी ।

मोरे जिय भरोस दृढ़ नाहीं । भक्ति न विरति ज्ञान मन माहीं ॥

नहिं सतसंग योग जप यागा । नहिं दृढ़ चरण कमल अनुरागा ॥

एक बानि करुणानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥

राम ध्वनि लागी मोरे राम ध्वनि लागी ॥

हे विधि दीनबंधु रघुराया । मोसे शठ पर करिहहिं दाया ॥

सहित अनुज मोहिं राम गोसाईं । मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥

फिरिहि दशा विधि बहुरि की मोरी । देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥

भैय्या रामभद्र ! सदा सर्वदा यही ध्वनि लगी है कि प्यारे तुम्हें कब देखूँ, गोदी में खिलाऊँ, लाड़ लड़ाऊँ, भोग लगाऊँ, जन्म सफल करूँ, भैय्या, श्रीराम नाम का फल मुझे कब मिलेगा, मैं कब अपने श्रीप्रिया प्रीतम को गोदी में प्यार करते हुए यह प्रार्थना करूँगा, भैय्या ।

चितवत पंथ रहेउँ राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥

नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्हीं कृपा जानि जन दीना॥
सो न देव कछु मोर निहोरा। निजपन राखेउ जन मन चोरा॥
आजु सफल तप तीरथ त्यागू। आजु सफल जप योग विरागू॥
सुफल सकलशुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरश आस सब पूजी॥
सबहिं भाँति मोहिं दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होंहि सहसदश शारद शेषा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥
मोर भाग्य राउर गुण गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहौं एक बल मोरे। तुम रीझहु सनेह सुठि थोरे॥
बार बार माँगौं कर जोरे। मन परिहरै चरण जनि भोरे॥
अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

भैय्या रामभद्र ! यह मनोरथ मेरा कब पूर्ण होगा, भैय्या अपने गुरु जी की गोद में कब खेलोगे।

अपने गुरु जी की गोदियाँ, भैय्या कब खेलिहौ ना।
गुरुजी सूखो गैलेना तुम्हरे चरणके वियोगिया गुरुजी सूखी गैलेना॥
जैसे बाग में लकड़ी सुखानी, प्यारे लकड़ी सुखानी, मैं वैसे सूखूँ ना
तुम्हरे चरण के बिछोहवाँ, भैय्या मैं वैसे सूखूँ ना॥ तुम्हरे०॥
जैसे बाग में कोइली कुहुँकै भैय्या मैं वैसे कुहूकूँ ना।

हा राम ! हा राम ! बोली मैं वैसे कुहुँकूँ ना ।।तुम्हरे चरण०।।
जैसे बादलकूँ देखि चातक पुकारैं, भैय्या, मैं वैसे पुकारूँ ना।
हा श्यामसुन्दर,श्यामसुन्दर तुम्हें मैं वैसे पुकारूँ ना ।। तुम्हरे०।।
जैसे मेघकूँ देखि मोरवा टिहूँकैं, भैय्या, मैं वैसे टिहूँकूँ ना।
तुम्हरे मेघ मुख मंडलवा देखि, मैं वैसे टिहूँकूँ ना ।। तुम्हरे० ।।
जैसे पावसभैले दादुर कलोलैं,भैय्या दादुर कलोलैं,मैंवैसे कलोलूँना
तुम्हार करुणानयन पावसवा देखि मैं वैसे कलोलूँ ना।।तुम्हरे०।।
'गंगादास'तुम्हेंहाथ जोड़ोविनती करैं,हाथजोड़ीपैयाँपरैं,कबखेलिहौना
अपने गुरु जी की गोदियाँ, भैय्या, कब खेलिहौ ना ।। तुम्हरे ।।

अहा, भैय्या रामभद्र ! गुरु जी की यह आशा कब पूर्ण होगी, अथवा यों ही मर जाऊँगा।

जौं पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा। तौ कस मरण न माँगे दीन्हा।

भैय्या, रामभद्र ! रामलाल ! अहा प्राण प्यारे !

हा रघुनन्दन प्राण पिराते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ।।

हा रघुनन्दन ! हा प्राणप्यारे ! तुम्हारे बिना जीते हुए बहुत दिन व्यतीत हुए।

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूक पुनि का पछिताने ।।
तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करै का सुधा तड़ागा ।।

भैय्या रामभद्र ! कृषी नष्ट हो जाने पर वर्षा होने से क्या लाभ है।

प्राणी पियासा से मर गया, पीछे अमृत के तालाब में डुबा दो तो क्या लाभ है। भैय्या, जब मैं मर ही जाऊँगा तो आकर क्या करोगे।

कारण कवन नाथ नहिं आये। जानि कुटिल किधौं मोहिं बिसराये॥
जौं करनी समुझैं प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप शत कोरी॥
जन अवगुण प्रभु मान न काऊ। दीनबन्धु अति मृदुल स्वभाऊ॥

भैय्या, रामभद्र! अज्ञानी हूँ, अविचारी हूँ, अपराधी हूँ, क्षमा करो

मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे।
मेरे राम चरणियाँ धरा लो मुझे॥
हम तुम्हें देखि श्रीराम जिया करते हैं।
धन प्राण दान चरणों पै किया करते हैं॥
जिस तरह मत्त गजराज चुआ करते हैं।
उसी तरह हमारे नयन बहा करते हैं॥
जरा नाम की लाज बचा लो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे॥
नित प्रेम बेलि पै पानी दिया करते हैं।
कब फूलेगी यह बाग तका करते हैं॥
कोई पूँछे क्या गुरुदेव किया करते हैं।
राम! तुम्हें आने की रास्ता सफा किया करते हैं॥

जरा गुरु की लाज बचालो मुझे।
मेरे राम हृदय से लगा लो मुझे

भैय्या रामभद्र ! क्या गुरु को हृदय से नहीं लगाया जाता। भैय्या रामलाल ! आओ मैं तुम्हें हृदय से लगाऊँ।

भैय्या रामभद्र ! तुम तो प्राणहूँ के प्राण, जीवन हूँ के जीवन हो। गोस्वामीजी तो यही कह रहे हैं।

जानत प्रीति रीति रघुराई ॥ टेक ॥

नाते सब हाते करि राखत राम सनेह सगाई ॥
नेह निबाहि देह तजि दशरथ कीरति अटल चलाई।
ऐसेहु पितु ते अधिक गीध पर ममता गुण गरुआई ॥
तिय विरही सुग्रीव सखा लखि प्राण प्रिया बिसराई।
रण परेउ बन्धु विभीषण ही को शोच हृदय अधिकाई ॥
घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भई जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि शबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई ॥
सहज स्वरूप कथा मुनि वर्णत रहत सकुचि शिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत वानर बन्धु बड़ाई ॥
प्रेम कनावड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तुम्हरो ऋणी हूँ कहेउ कपि सों ऐसी को मानिहि सेवकाई ॥
तुलसी राम सनेह शील लखि जो न भक्ति उर आई।

तौ तोहिं जनमि जाइ जननी जड़ तनु तरुणता गँवाई ॥
जानत प्रीति रीति रघुराई ॥

भैय्या रामभद्र ! तुम तो सब प्रीति रीति जानते हो। 'सबके *उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव*"। सबके हृदय में अन्तरात्मा होकर विराजमान हो और सबके भाव-कुभाव को जानते हो। भैय्या मैं तो सब प्रकार निर्गुण हूँ। कैसे कहूँ ? क्या कहूँ ?

नाथ सों अब केहि भाँति कहूँ ॥ टेक ॥

समुझौं अति करणी अपार हिय ताते मौन रहूँ।
अघसागर प्रभु ! प्रबलदण्ड यदि होइ मोहिं तबहूँ ॥
नाहिंन कछु भय नरक परत मोहिं अति अघ अवगुण हूँ।
यमयातना जो होइ विविध विधि योनिन जाल बहूँ ॥
औरौ कठिन काल यमदंडन जो कछु दंड लहूँ।
सो सब सहौं कहौं न आन कछु तुमसन सत्य कहूँ ॥
एकहि दुःखकरि दुःखित दिवसनिशि कैसे मैं दुःसह सहूँ
तव वियोग अति प्रबल अनल हिय तेहिते दहत अहूँ।
दीनदयाल विरद जनहित तुव तेहिते धीर लहूँ ॥
प्रभु का दास कहत कर जोरे दीनन दीन जहूँ।
तुम्हरो नाम दयासागर प्रभु काहे न मैं निबहूँ ॥
नाथ सों अब केहि भाँति कहूँ ॥

भैय्या ! तुम तो प्रभु हो, दयासागर हो, मैं क्यों नहीं निस्तार पाऊँगा।

पापिहु जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं ॥
मरतहु जासु नाम मुख आवा। अधमौं मुक्त होइ श्रुति गावा ॥
विवशहु जासु नाम नर कहहीं। जन्म अनेक संचित अघ दहहीं ॥

भैय्या रामभद्र ! मैं तो तुम्हारे नाम की ही शरण लिया हूँ, क्यों नहीं संसार सागर से निस्तार पाऊँगा !

यदि नाथ का नाम दयानिधि है तो दया भी करेंगे कभी न कभी।

भैय्या रामभद्र ! यदि तुम्हारा नाम दयानिधि है तो कभी न कभी दया करनी ही पड़ैगी। "*अरिहुक अनभल कीन्ह न रामू*" अथवा "*प्रभु अपने नीचहु आदरहीं*" भैय्या, हूँ तो आपही का हूँ, भले ही नीचहूँ, पतित हूँ।

जासु पतित पावन बड़ वाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना ॥

यह तो छिपी हुई बात नहीं हैं वेद शास्त्र पुराण, इतिहास, सभी में कवियों ने "*रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम*" गान किया है।

स्वपच शवर खस यमन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥

भैय्या रामभद्र ! यह तुम्हारी पतितपावनि कीर्त्ति की सारे लोक लोकान्तरों में ख्याति हो रही है कि "*मैं हरि पतित पावन सुने*" अथवा

राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥

राम राम कहकर जो जम्हाई लेते हैं पाप समूह उनका सामना

तक नहीं करता, तो भैय्या मैं तो तोता मैना की तरह रटता ही रहता हूँ ।

जिस अंक की सोभा सुहावनि है, जिस श्यामल रंग में मोहनि है ।
वही रूप सुधा से सनेहियों के दृग, प्यासे भरेंगे कभी न कभी ॥
जहाँ गीध निषाद का आदर है,जहाँ व्याध अजामिल का घर है ।
वही रूप बना के वही घर में हम जा बैठेंगे कभी न कभी ॥
करुणानिधि नाम सुनाया जिन्हें, कर्णामृत पान कराया जिन्हें ।
सरकार अदालत में ये गवाह सभी गुजरेंगे कभी न कभी ॥
हम द्वार पै आपके आके पड़े मुद्दत से यही जिद पर हैं अड़े ।
भवसिंधु तरे जो बड़े से बड़े तो ये "बिन्दु" तरेंगे कभी न कभी॥
यदि नाथ का नाम दयानिधि है तो दया भी करेंगे कभी न कभी ॥

रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम ।
रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम ।
रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम ।
रामराम रामराम रामराम राम,
रामराम रामराम रामराम राम ।
रामराम रामराम रामराम राम,

रामराम रामराम रामराम राम।

रामराम रामराम रामराम राम।

रामराम रामराम रामराम राम।

सदा सर्वदा राम नाम ही रट रहा हूँ तो क्या मैं निष्पाप नहीं होऊँगा। हो न हो। '*राम निकाई रावरी है सबही को नीक*"।

भैय्या रामभद्र! यदि तुम्हारा सुन्दर उदार स्वभाव सभी के लिए मंगल है तो क्या मेरे ही लिये अमंगल हो जायगा।

भैय्या! मैं तो सदा सर्वदा तुम्हारी ही जय जयकार मनाता हूँ। तुम्हारा ही नाम राम राम रटता हूँ।

राम भजो सियरामा, जय जय सियारामा।

जय रघुवंश वनज वन भानू। गहन दनुजकुल दहन कृशानू॥
जय सुर विप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रम हारी॥
विनय शील करुणागुण सागर। जयति वचन रचना अति नागर॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय शरीर छवि कोटि अनंगा॥
करौं काह मुख एक प्रशंसा। जय महेश मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। क्षमहु क्षमा मन्दिर दोउ भ्राता॥

राम भजो सियरामा, जय जय सियारामा।

भैय्या रामभद्र! अज्ञानी हूँ, सदा पातकी हूँ, सदा अनुचित ही करता हूँ। क्षमा करो, क्षमा करो, क्षमा करो।

भैय्या पापात्मा जीव ! सुमन ! तुम आर्त्त स्वर से अपने प्रभु को पुकारते ही *"राम भजे हित होइ तुम्हारा"*। प्रभु को मिलने में विलम्ब होने से घबरावो मत—

राम नाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान।
कबहूँ दीन दयाल के, शब्द परैगी कान॥

भैय्या सुमन ! जब तक तुम राम नाम भजन नहीं करोगे तब तक न तो तुम्हारे हृदय का अन्धकार ही दूर होगा, और न विषय से ही निवृत्ति होगी। परन्तु मरना जरूरी है, कहा जाता है।

न बचै कोउ पंडित वेद पढ़े न बचै कोउ ऊँचे चिनाए अटा।
न बचै कोउ जंगल वास किये न बचै कोउ शीश बढ़ाए जटा॥
दिन चारि छलावन यों तुलसी नर नाहक को सब ठाठ ठटा।
भला जो चहो तो सियराम रटो नहिं आइ अचानक काल डटा॥

भैय्या सुमन ! इस काल बली से कोई नहीं बचैगा।

अंड कटाह अमित लय कारी। काल सदा दुरति क्रम भारी॥

तुम एक ही नहीं, अनन्त ब्रह्मांड काल के आधीन है काल सदा सर्वदा दुरत्यय है। वह अचानक ही आकर हमारे सारे उद्योगों को समाप्त करके हमको लेकर चला जायगा। हमको और कुछ करने का एक निमेषहूँ का समय न होगा। इसलिये—

काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब्ब॥

बस पलक मात्र का ही समय है जो करना हो अभी करो, पलक पड़ते पड़ते काल आकर तुम्हारा संसार रूपी शरीर फोड़ फाड़कर महाप्रलय कर देगा। फिर तो तू माटी का ढेर बन जायगा फिर करोगे कब ? अतएव।

श्वाँस श्वाँस प्रति राम कहु वृथा श्वाँस मत खोय।
न जाने केहि श्वाँस से, आवन होय न होय॥

न जाने किस समय श्वाँसा बाहर जाकर अन्दर न आवै, तो जीवन निरर्थक न करते हुए श्वाँस श्वाँस प्रति राम राम कहो, भैय्या, माता के गर्भ में भगवान् से हम यह चुकती किए हैं कि प्रत्येक श्वाँस में आपका नाम लूँगा। श्वाँस श्वाँस राम कहो, श्वाँस वृथा मत जाने दो, आप देखते ही हैं श्वाँसा बारम्बार बाहर जाता है भीतर आता है, अगर बाहर जाकर भीतर न आवै तो क्या अपने वश की बात है। वह तो जैसे इलैक्ट्रिक बत्ती का स्विच बन्द होते ही बत्ती बुत जाती है ऐसे ही श्वाँस बन्द होते ही तुम्हारे सब कर्त्तव्य समाप्त हो जायँगे फिर राम नाम कब्ब करोगे। भैय्या !

रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा।
कायम न जग का झमेला रहेगा॥
किस काम का ऊँचा जो महल तूँ बनाएगा।
किस काम का लाखों का जो तोड़ा कमाएगा॥
रथ हाथियों का झुंड भी किस काम आएगा।

तूँ जैसा यहाँ आया था वैसा ही जायगा ॥
तेरे सफर में सवारी के खातिर काँधै पै ठठरी का ठेला रहेगा ॥
रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा कायम न जग का झमेला रहेगा॥

कहता है ये दौलत कभी आएगी मेरे काम।
पर यह तो बता धन हुआ किसका भला गुलाम ॥
समझा गए उपदेश हरिश्चन्द्र कृष्ण राम।
दौलत तो नहीं रहती है रहता है केवल नाम ॥

छूटैगी सम्पति यहाँ की यहीं पर तेरी कमर में न धेला रहेगा ॥
रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा कायम न जग का झमेला रहेगा ॥

साथी हैं मित्र गंग के जल बिन्दु पान तक।
अर्धांगिनी बढ़ेगी तो केवल मकान तक ॥
परिवार के सब लोग चलैंगे मसान तक।
बेटा भी हक निबाहेगा तो अग्नि दान तक ॥

इससे तो आगे भजन ही है साथी हरि के भजन बिनु अकेला चलेगा॥
रे मन ये दो दिन का मेला रहेगा कायम न जग का झमेला रहेगा ॥

भैय्या प्राणी ! यह स्त्री पुत्र वा तुम्हारा निज शरीर सदा तैय्यार नहीं रहेगा। अन्त में तुम्हारे हाथी घोड़े कोठा बगात धन सर्वस्व यहाँ का यहाँ ही रह जायगा और तुम्हारे लिए जब मसान में हवा खाने के

सफर में चलोगे तो घर के जीर्ण शीर्ण रद्दी पुराने बाँस के फट्टे की ठठरी बनाई जायगी और चार आदमी लेकर मसान तक पहुँचा देंगे, बस तुम्हारी यात्रा समाप्त हो गई। हाथी, घोड़ा, दौलत किस काम की हुई इसलिए "*भजन करौ मोरे भैय्या, जपो रघुरैया जीवन तेरा दो दिन का*'।

भैय्या मन ! तुम्हारे जीवन की अवधि दो दिन की ही है "*राम भजे हित होइ तुम्हारा*"। राम राम भजन करो।

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी,
देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी।
सोवत सपनेहूँ सहै संसृति सन्ताप रे,
बूड़ेउ मृग वारि खायो जेंवरी को साँप रे॥
कहैं वेद बुध तूँ तो बूझि मन माहिं रे,
दोष दुःख सपने के जागे ही पै जाहिं रे।
तुलसी जागे ते जाइ ताप तिहुँ ताप रे,
राम शुचि रुचि सहज सुभाय रे॥

भैय्या प्राणी ! स्वप्न का दुःख तो जागने ही से निवृत्त होता है। हम मोह रूपी रात्रि में सोए हैं स्वप्नवत् स्त्री पुत्रादि देख रहे हैं। नाना प्रकार दुःख अनुभव कर रहे हैं। इससे छुटकारा तो तभी होगा, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होंगे और ममता रूपी नींद छूट जायगी भगवान् के भजन सेवा रूपी कार्य में लग जायेंगे। दुःख की निवृत्ति एवं सुख शान्ति तभी होगी।

जो पै रहनि राम से नाहीं ॥ टेक ॥

तौ नर खर कूकर शूकर सम वृथा जियत जग माहीं ॥
काम क्रोध मद लोभ नींद भय भूख प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पिय के॥
सूर सुजान सुपूत सुलच्छण गनियत गुण गरुआई।
बिनु हरि भजन इँदारुणि के फल तजत नहीं करुआई॥
कीरति कुल करतूति भूति भल शील स्वरूप सलोने।
तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने॥
जो पै रहनि राम से नाहीं ॥

भैय्या मन ! यदि राम से प्रेम नहीं है, तो वह जीवन गदहा, शूकर, के समान है। वृथा संसार में जीवित है। भैय्या–"*राम भजे हित होइ तुम्हारा*"।

भैय्या मन ! देखो, विचारो और रामराम भजन करो, तुम देखो, तुम्हारे लिए ग्रन्थकारों ने क्या क्या धिक्कार दिया है। शाला वहनचाद क्या इससे अधिक होगा।

भैय्या मित्रो ! यह तो मैं एक दिग्दर्शन मात्र करा रहा हूँ वह भी "*स्वान्तः सुखाय*" वा "*करन पुनीत हेतु निज वाणी*"। यही बात तो श्री वेदव्यास जी अपने अठारह पुराणों में भूरि भूरि वर्णन किये हैं ! आदि कवि श्रीवाल्मीकि जी शतकोटि रामायण रचना करके धर गए हैं और बाकी जो कुछ था वह "*नाना पुराण निगमागम सम्मतम्*"

सब एकत्र करके श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी लिखकर अपने बाहर ग्रन्थों में धर गये हैं। जिसमें सर्वोपरि रामचरित मानस है। जो वर्त्तमान काल में वेद मन्त्र कहकर पूज्य हो रहा है। कहा जाता है-

जे यह कथा सनेह समेता। कहिहहिं सुनहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं रामचरण अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

पुनः अधिक से अधिक फलदायक, निश्चय किया जाता है।

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेम, अवसि होइ भवरस विरति॥

इत्यादि कहा जा रहा है और यह भी कहा गया है।

मज्जन फल पेखिय तत्काला। काक होहिं पिक बकहु मराला॥

और यदि पढ़ते सुनते हुए भी किसी अभागे को वैराग्य न हुआ तो उनके लिए यह कहा जा रहा है।

कहत सुनत सतिभाव भरत को। सोय राम पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को। जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को॥

भरतलाल के सतभाव को कहते सुनते हुए किसका श्रीसीताराम के चरणों में प्रेम न होगा अर्थात् सभी को होगा और भरत को श्रीरामजी के चरणों का प्रेम कहते सुनते हुए और स्मरण करते हुए भी प्रेम राम में न हुआ तो—"*कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती*"। अर्थात् उससे विधाता ही विमुख है और क्या कहा जा सकता है। भैय्या प्राणियो! आप तुलसीदास कृत रामायण तो पढ़ते ही हैं अगर न पढ़ते हों तो आज से ही शुरू करें। यह तुलसी कृत रामायण

पढ़ते पढ़ते जब इसके यथार्थ तात्पर्य को समझ लेंगे। बारम्बार पढ़ने का कारण ऐसा है कि तुलसीदास स्वयं कह रहे हैं-"*तदपि कही गुरु बारहिंबारा*" क्योंकि "*किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ़*" कलिकाल के नाना पापों से "*हृदय जवनिका बहु विधि लागी*"। हृदय के विचार नेत्रों पर तो मल जड़ीभूत होकर "*पाप पयोनिधि जन मन मीना*"। पाप समुद्र में मन डूब गया है। परन्तु इस मानस के प्रभाव से आपके हृदय नेत्र धुलके साफ हो जायेंगे। "*जिन यहि वारि न मानस धोये*"। और हृदय नेत्र कपाट खुल जायगा। यह रामायण नहीं है यह तो साक्षात् राम स्वरूप है। भैय्या यदि तुलसीदास की रामायण पढ़कर भी आपकी शंका सन्देह भ्रम निवृत्त न हो तो "*मोहि ते अधिक ते जड़ मति रंका*" आप हमसे भी बुद्धि के दरिद्र हैं, गए बीते हैं और अधिक क्या कहा जा सकता है। "*मूरख हृदय न चेत. जौ गुरु मिलहिं विरंचि सम*"। ब्रह्मा स्वयं गुरु होने से भी मुष्क हृदय में ज्ञान हो नहीं सकता। इस मेरे लिखे हुए वा कहे हुए से होता ही क्या है। भैय्या—

करहु जाइ जाकहँ जो भावा। हम तौ आजु जन्म फल पावा॥

जिनकी जो इच्छा सो करो। मैं तो गोस्वामीजी के मानस सिद्धान्त-

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय राम गुन ग्रामहिं॥

पर ही राम नाम का आश्रय लेकर प्रभु श्रीराम जी के चरण कमलों में इस जीवन का समर्पण किया है। समर्पण ही नहीं बल्कि बलिदान किया है और यह दृढ़ता पूर्वक सत्य कहता हूँ कि "*सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं*"। यह मेरे लिए संपूर्ण चरितार्थ हो रहा है।

कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भे भूषन सरिस, सुयश चारु चहुँ ओर॥
जो सुख सुयश लोकपति चहहीं।
करत मनोरथ सकुचत अहहीं॥
सो सुख सुयश सुलभ मोहिं आजू।

आज मेरे लिए सब सुख सब ऐश्वर्य सुगम हुआ है मैं सदा परमानन्दित हूँ परन्तु इस सुख का मार्ग मुझे मानस रामायण से मिला है।

हमें निज धर्म पर चलना बताती रोज रामायण।
सदा शुभ आचरण करना बताती रोज रामायण॥
जिन्हें संसार सागर से उतर कर पार जाना है।
उन्हें सुख से किनारे पर लगाती रोज रामायण॥
कहीं छवि विष्णु की बाँकी कहीं शंकर की झाँकी है।
हृदय आनन्द झूले पर झुलाती रोज रामायण॥
सरल कविता की कुंजों में बना मन्दिर है हिन्दी का।
जहाँ प्रभु प्रेम का दर्शन कराती रोज रामायण।
कभी वेदों के सागर में कभी गीता की गंगा में।
कभी रस बिन्दु में मन को डुबाती रोज रामायण॥
हमें निज धर्म पर चलना बताती रोज रामायण।

भैय्या सुमन ! रामायण तुम्हें क्या बता रही है। उसी में तन्मय हो जावो।

मम गुण गावत पुलक शरीरा। गद्गद गिरा नयन बह नीरा ॥

पुलकगात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जपु लोचन नीरू ॥

भैय्या मन ! पुलकित रोमांचित होकर रोते हुए और अपने हृदय में विराजमान श्रीराम लक्ष्मण जानकी का स्मरण करते हुए प्रेम मग्न होकर जिह्वासे रामराम रामराम बोलो रटो और रम जावो।

राम बोल मोरी रसना घड़ी घड़ी ॥टेक॥

वृथा बिताती है क्यों जीवन मुख मन्दिर में पड़ी पड़ी।

अहर्निशा श्रीरामनाम ध्वनि श्वाँस श्वाँस से लड़ी लड़ी ॥

जाग उठेगी तेरी ध्वनि पर इस काया की कड़ी कड़ी।

वर्षा दे प्रभु नाम सुधारस बिन्दु बिन्दु से झड़ी झड़ी ॥

राम बोल मोरी रसना घड़ी घड़ी ॥

भैय्या ! तुलसी कृत रामायण तो यही बता रही है और भी तुलसी कृत रामायण में रामनवमी आती है। वह क्या कहती है देखो-

नौमी तिथि मधुमास पुनीता। शुक्लपच्छ अभिजित हरि प्रीता ॥

वह हमारे लिए क्या क्या स्मरण कराती है और कहती है।

हिन्द में प्रति वर्ष यह आती है नौमी राम की।

राम का सुमिरण करा जाती है नौमी राम की।

किस तरह माँ बाप का सत्कार करना चाहिए।
किस तरह भाई से अपने प्यार करना चाहिए॥
किस तरह दीनों के प्रति उपकार करना चाहिए।
किस तरह इस देश का उद्धार करना चाहिए॥
राम के यह गुण को बता जाती है नौमी राम की।
राम सुमिरण को बता जाती है नौमी राम की॥
चक्रवर्ती राजपद को त्यागने में तीव्र त्याग।
निषाद भील गीध से मिलने में था श्रद्धानुराग॥
वन चौदह वर्ष बस जाने में था उत्तम विराग।
बज रहा था जिस्म की रगरग में सच्चाई का राग॥
याद यह बातों की दिला जाती है नौमी राम की।
राम का सुमिरण करा जाती है नौमी राम की॥
प्रेम करने में भरत दृग विन्दु का आदर्श लो।
शरण जाने में विभीषण भाव का उत्कर्ष लो॥
दास बनने में सदा हनुमान का सा हर्ष लो।
मन्त्र यह प्रति पक्ष लो प्रति मास लो प्रति वर्ष लो॥
यह सन्देश शुभ सुना जाती है नौमी राम की।
राम का सुमिरण करा जाती है नौमी राम की॥

भैय्या सुमन ! यह सब बातें तो रामायण में ही लिखी हैं। तुम सदा (सर्वदा) मानस पढ़ो समझो और करो, रामनवमी तो राम का इहलोक में अवतीर्ण होने का शुभ जन्म दिवस है। बाकी सारी लीला तो आगे है। रामनवमी से पतित पावन श्रीरामचरित प्रारम्भ हुआ है।

नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥

इसी शुभ दिवस से कौशल्या आदि से लेकर रावण आदि राक्षस तक पावन किये गये हैं "*जिन रघुनाथ चरण रति मानी। तिनकी यह गति प्रगट भवानी*'॥ भैय्या सुमन !

है आँख वो जो राम का, दर्शन किया करै,
वो शीश है चरणों में, जो वन्दन किया करै।
बेकार वो मुख है जो, रहै व्यर्थ बाद में,
मुख वह है जो, हरि नाम का सुमिरण किया करै॥
हीरों के कड़ों से नहीं, शोभा है हाथ की,
है हाथ वो जो, राम का पूजन किया करै।
मर कर भी अमर नाम है, उस जीव का जग में,
प्रभु प्रेम में बलिदान जो, जीवन किया करै॥
कविवर है वही राम के सुन्दर चरित्र का,
रसना के जो रस विन्दु से वर्णन किया करै॥

भैय्या सुमन !

इस अपार संसार सिन्धु में रामनाम आधार है।
जिसने मुख से श्रीराम कहा उस जन का बेड़ा पार है॥

इस भवसागर में तृष्णा नीर भरा है,
फिर कामादिक जल जीवों का पहरा है।
यदि कहीं कहीं पर भक्ति सीप होती है।
तो उसके अन्दर राम नाम मोती है॥
इन्हीं मोतियों से नर देही का सुन्दर शृङ्गार है।
जिसने मुख से श्रीराम कहा उस जन का बेड़ापार है॥

कलिकाल महानद अगम विषय जलधारी।
उठती है माया लहर भँवर भ्रम भारी॥
इसमें जब नर हरिनाम नाव पाता है।
वो पलभर में ही पार उतर जाता है॥
रामनाम रस बिन्दु कुशल केवट ही खेवनहार है।
जिसने मुख से श्रीराम कहा उस जन का बेड़ापार है॥

भैय्या सुमन! इस रामनाम की महिमा तो मानस रामायण से ही मनुष्य सीखता है व जानता है। तो मानस अवश्य करके पारायण करना चाहिए, मानस कल्पतरु है।

श्रीराम भजन में जब तक मन तू न मगन होगा।
जग जाल छूटने का तब तक यतन न होगा॥

व्यापार धन कमाकर तू लाख साज सजले।
होगा सुखी न जब तक संतोष धन न होगा॥

जप यज्ञ होम पूजा व्रत और नेम कर ले।
सब व्यर्थ हैं जो मुख से श्रीराम भजन न होगा॥

संसार की घटा से क्या प्यास बुझ सकैगी।
चातक दृगों का जब तक घनश्याम घन न होगा॥

तूँ तौल कर जो देखै आँखों का प्रेम मोती।
एक विन्दु पर त्रिलोकी भर का वजन न होगा॥

अहा क्या कहना है भैय्या! '*रामहिं केवल प्रेम पियारा*" त्रैलोक की संपदा से प्रभु प्रसन्न नहीं होते हैं। परन्तु भक्ती के एक विन्दु प्रेमाश्रु से बिक जाते हैं भक्तों के आधीन होकर "*अहं भक्त पराधीन*" कहते हुए साकेत बैकुण्ठ से दौड़े आते हैं। भैय्या सुमन! यह प्रेम भक्ति भी तो आप को रामायण ही बता रही है।

प्रेम भक्ति जल बिनु रघुराई। अभिअन्तर मल कबहुँ न जाई॥

अपने प्यारे श्रीरामजी से रो रो कर प्रेम भक्ति माँगो। प्रेम भक्ति तो सरकारी ही देन है अन्यत्र नहीं मिलती, "*राम कृपा काहू एक पाई*" बारम्बार याचना करो बारम्बार माँगो चरणों में पड़ो, प्रार्थना करो।

न शुभ कर्म धर्माधिकारी हूँ भगवन्।
तुम्हारी दया का भिखारी हूँ भगवन्॥

न विद्या न बल है न सुन्दर सुमति है।
न जप है न तप है न सद्ज्ञान मति है॥
न भवदीय चरणों में श्रद्धा सुरति है।
दुरात्मा मई दुष्चरित प्रकृति की है॥

अधमहूँ अकल्याण कारी हूँ भगवन्। तुम्हारी दया का० ॥

जो अनमोल नर जन्म था मैंने पाया।
उसे तुच्छ विषयादिकों में गँवाया॥
न परलोक का दिव्य साधन कमाया।
किसी के न यह लोक में काम आया॥

वृथा भूमि का भार भारी हूँ भगवन्॥ तुम्हारी दया का० ॥

किसी का न उपदेश कुछ मानता हूँ।
न अपने सिवा और को जानता हूँ॥
कथन शुद्ध सिद्धान्त मय छानता हूँ।
सभी से सदा दंभ हठ ठानता हूँ॥

कठिन क्रूर दंडाधिकारी हूँ भगवन्॥ तुम्हारी दया का० ॥

विकृत वृत्ति है पूर्व कृत कर्म फल में।
पड़ा आवरण शुद्ध चेतन विमल में॥

बँधी आत्म सत्ता अविद्या प्रबल में।
मन मृग फँसा मृगतृषा बिन्दु जल में॥

महा दीन दुर्बल दुखारी हूँ भगवन्॥ तुम्हारी दया का०॥

भगवन्! मैं कोई शुभ कर्म नहीं किया हूँ फिर भी वाचालता वश धृष्टता से तुम्हारी दया की भीख माँगता हूँ। प्रभु कृपा करो! प्रभु कृपा करो!! प्रभु कृपा करो!!!

अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करौ जग याचक बानी॥

"*श्रवण सुयश सुनि आयऊ*" अर्थात् '*मंगल लहहिं न जिनके नाहीं*' भैय्या रामभद्र! "*तुमहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं*" "*एक भरोसा नाम को राम तुम्हारी ही आस*"।

भैय्या सुमन! तुम तो रामनाम का आश्रय लेकर अपनी जिह्वा को उत्साहित करते रहो। हे जिह्वे-

रामनाम रटते रहो, जब लगि घट में प्रान।
कबहूँ दीनदयाल के, भनक परैगी कान॥

चातक की तरह बल्कि उससे भी अधिक रट लगाए रहो।

रुचिर रसना तू राम, राम क्यों न रटत।
सुमिरत सुख सुयश बढ़त, अघ अमंगल घटत॥
बिनु श्रम कलिकलुष जाल, कटु कराल कटत।
दिनकर के उदय जैसे, तिमिर तोम फटत॥

योग याग जप विराग, तप सुतीरथ अटत।
बाँधिबे को भौ गयन्द, रेणु की रजु बटत॥
परिहरि सुरमणि सुनाम, गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि, तुलसी तोहि हटत॥
रुचिर रसना तूँ राम, राम क्यों न रटत॥

हे रुचिकर मधुर स्वाद जानने वाली रसना, तूँ *"मधुरं मधुराक्षरम्"* जो *"स्वाद तोषसम"* सदा के लिए संतोष दायक स्वाद देने वाला राम राम रट कर क्यों सन्तुष्ट नहीं होती। इसकी परीक्षा स्वरूप जब नौरस षटरस सभी फीका लगने लग जाय तो जानना कि मैं रामनाम का स्वाद पा रही हूँ। हे जिह्वे! तूँ देख तुलसीदास जी क्या कह रहे हैं।

रामराम रामराम रामराम जपत,
मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत॥
कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत,
हारहि जनि जन्म जाइ गाल गूल गपत।
काल कर्म गुण स्वभाव सबके शीश तपत,
राम नाम महिमा की चर्चा चले चपत॥
साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत।
कलियुग वर वणिज विपुल नाम नगर खपत॥

नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत।
पावन किए रावणरिपु तुलसीहु से अपत ॥

रामराम रामराम रामराम जपत ॥

भैय्या सुमन ! तुम मन लगाकर रामरामराम की ध्वनि लगाओ, रामनाम के भजन से तुम्हें सुख शान्ति मिलेगी। मंगल, आनन्द उदय होगा और कलिकाल के सभी पाप, ताप, छलछिद्र, काम, क्रोधादि नष्ट हो जायेंगे। देखो निर्गुण उपासक जगद्गुरु श्रीकबीर दास जी भी तो यही कह रहे हैं। यथा–

जियरा जाहुगे हम जानी ॥ टेक ॥
राज करन्ते राजा जइहैं रूप धरन्ते रानी ॥
चाँदौ जइहैं सूर्यौ जइहैं जइहैं पवन औ पानी।
मानुपजन्म अहै अति दुर्लभ तुम समुझौ अभिमानी ॥
लोभ लहर की नदी बहत है बूड़ोगे बिनु पानी।
योगी जइहैं जंगमजइहैं औ जइहैं बड़ ज्ञानी।
कहैं कबीर एक संत न जइहैं जिन रामनाम चित ठानी ॥

"न मे भक्ताः प्रणश्यन्ति' एवं 'ताते नाश न होइ दास कर"।

जियरा जाहुगे हम जानी ॥

भैय्या सुमन ! राजा, प्रजा, यती, सती, योगी, जंगम, ज्ञानी, विज्ञानी सभी चले जायँगे।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा॥

सभी संसार लोक लोकान्तर काल का ग्रास बन जाता है। परन्तु जो बड़भागी जन श्रीरामनाम का आश्रय लिये हैं उन्हीं के लिए "*श्रीराम नाम जपतां कुतो भयम्*" अथवा "*कालौ सन्मुख गए न खाई*" "*जगज्जैत्रेक मंत्रेण राम नामाभि रक्षितम्*"। केवल रामनाम ही सारे संसार का रक्षक है वही रामनाम की शरण जो लिया है वही त्रिकाल रक्षित है। "*जग में राम भजा सो जीता*"।

भैय्या सुमन! इसको पढ़ो, समझो और करो, देखो मनुष्य शरीर अति ही दुर्लभ है। "*नर समान नहि कौनिहुँ देही*"। भैय्या! यह नर शरीर पाते हुए भी मोह अज्ञानता वश इसमें अभिमान लोभ की तरंगें उठ रही हैं। यह सदा शुष्क जल न होते हुए भी मृग-तृष्णा जल में हम डूब रहे हैं। हे प्राण! हे मन! '*तुम राम भजन करु प्राणी*' तुम राम भजन करो, अज्ञानता अन्धकार को दूर करो। "*रामनाम मणि दीप धरु*' भैय्या सुमन! देखो विचारो–

अपने घट में दियना बार रे।
ध्यान का तेल सुरति की बाती ब्रह्म अग्नि उद्गार रे॥
झूठा जान जगत का नाना बारम्बार विचार रे।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो रामनाम चित धार रे॥
अपने घट में दियना बार रे॥

भैय्या सुमन! आगे पढ़ो, अपनी यही सेवा है।

लगन यह राम सो लागो, प्रीति कर सकल छल त्यागी।
करो पद बंदिगी सेवा, तजो सब इष्ट अरु देवा॥

मिलन है रूप अरु रेखा, सकल घट वस्तु निज देखा।
जाहि सुर शंभु अज ध्यावैं, वेद बुध ताहि सब गावैं॥
नाम इक रूप है सोई, लखावे ताहि नहिं कोई।
मिलै जब तत्त्व का भेदं, मिलावे चक्र को छेदा॥
पिया जब प्रेम का प्याला, हुआ रस चाख मतवाला।
अमर रस भक्ति का भीना, झुके चहुँओर ह्वै मीना॥
कटी जब नयन की झाईं, लखा प्यारा गगन साईं।
गुरुदेव शब्द कहि भाषा, निरखि पद शीश पर राखा॥

"प्रभु पद पंकज कपि कर शीशा" भैय्या सुमन! वही प्रभु के चरण कमलों तक तुम्हें भी पहुँचना है। प्रभु के चरणों में पहुँच जाने से तुम्हारा सब काम पूरा हो जायगा।

लगन अपनी उनसे लगाए हुए हैं।
जो सब दिन से दिल में समाए हुए हैं॥
उठावैंगे हाथों से मुझको न क्यों कर।
जो गोदी में पच्ची खिलाए हुए हैं॥
निकालूँ भी उनको तो कैसे निकालूँ।
तो अंग अंग के भीतर समाए हुए हैं॥
वो रूठें भी हमसे तो चिन्ता नहीं है।
हम उनके हृदय को मनाए हुए हैं॥

लगन अपनी उनसे लगाए हुए हैं।
जो सब दिन से मन में समाए हुए हैं॥

भैय्या सुमन! यही प्रेम है, अपने प्यारे से प्रेम लगाए रहो। कबीरदास जी प्रेम के स्वरूप को बता रहे हैं वैसे ही तुम भी बनो, देखो प्रेम में क्या आनन्द है। यथा—

आठौं प्रहर मस्तान लागी रहै, ज्ञान वैराग्य सुधि लिया पूरा।
श्वाँस उश्वाँस में प्रेम प्याला पिया, गगन गर्जे तहाँ बजे तूरा॥
पीठ संसार से नाम राता रहे, यतन भक्ती लिए तहाँ खेलैं।
कहैं गुरुदेव यह प्रेम का खेल है, परम सुखधाम तहाँ प्राण मेलै॥

....

आठहू प्रहर मतवाल लागी रहै, आठहू प्रहर की छाक पीवै।
आठहू प्रहर मस्तान माता रहै, राम की गोद लै साधु जीवै॥
साँचही कहत अरु साँचही गहत हैं, काँच को त्यागि कै साँच लागा।
कहैं गुरुदेव यह साधु निर्भय भया, जन्म अरु मरण का भरम भागा॥

....

छका सो छका फिर देह धारै नहीं, कर्म कपाट सब दूर किया।
श्वाँस उश्वाँस का प्रेम प्याला पिया, राम दरियाव तहँ बैठ जीया॥
चढ़ी मतवाली हुआ मन सावटा, स्फटिक ज्यों फेरि जनि फूटि जावै।
कहैं गुरुदेव जिन प्रेम प्याला पिया, बहुरि संसार में नाहिं आवै॥

....

सुखी सब संत हैं दुखी सब जगत है, रैनिदिन पचत नहिं भूख भागी।
सदा निर्द्वन्द्व कोई द्वन्द्व व्यापै नहीं, गुरु के शब्द में सुरत लागी॥
प्रेम आसक्त अरु विरत संसार से, प्रगट ज्ञानाग्नि सब भरम भागी।
कहैं गुरुदेव संसार सब सूख है, ज्ञान का ओढ़ना सदा नाँगी॥

....

छका हरि नाम में प्रेम प्याला पिया, मुक्ति मैदान में दिया डेरा।
प्रेम का पारखी सन्त सुमिरण करे, धारणाकाश बीच एक धारा॥
प्रेम के मस्त में मेल ठाढ़े किया, खंड ब्रह्मण्ड तूँ देख सारा।
नीर में नीर मिलि पवन में पवन मिलि, तेज में तेज मिलि भूमि छारा।
स्वर्ग अरु नरक संसार की भरमना, मोह जंजाल में कौन मुआ।
कहैं गुरुदेव यह नीर का बुद्बुदा, नीर में नीर मिलि नीर हुआ॥

....

छके मन प्रेम जब फैल सब मिट गया, हुआ जब ज्ञान तब कौन मारे।
कालहू देख कर हरषाइ मिलै, मणी मुरदार को दूर डारै॥
ध्यान अरु सुरत को एक एकान्त कर, सहजके सुखमें ध्यान धारै।
कहैं गुरुदेव कोइ सन्तजन जौहरी, कर्म की रेख पर मेख मारै॥

....

और व्यापार तो बड़े व्यापार हैं, प्रेम व्यापार की राह न्यारी।
साँप के डसे की सात सौ जड़ी हैं, प्रेम के डसे की पीर भारी॥

खड्ग के घाव को ढालकी ओट है, प्रेम के घाव गढ़ तोरि मारी।
कहैं गुरुदेव चित चेतु मन बावरे, प्रेम के घाव हैं बहुत भारी ॥

....

तर्क संसार से फरक फारक सदा, गरक गुरु ज्ञान में युक्त योगी।
अर्धअरुऊर्ध्वके बीच आशन किया,प्रेम प्याला पिया अमृत भोगी॥
प्रेम दरियाव तहँ जाइ डोरी लगी, महल बारीक का भेद पाया।
कहैं गुरुदेव सोइ सन्त निर्भय भया, राम सुखधाम तहँ प्राण लाया।

भैय्या सुमन ! "*रामहिं केवल प्रेम पियारा*' ॥

योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहाँ न राम प्रेम परधानू॥
सो सुख करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। सीयराम पद सहज सनेहू॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू॥
प्रभु पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर फल यह सुन्दर॥
वेद पुराण सन्त मन एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

भैय्या सुमन ! हे जिह्वे !

सुमिरु सनेह से तू नाम रामराय को।
सम्बल असम्बल को सखा असहाय को॥
भाग है अभागहू को गुण गुण हीन को।
ग्राहक गरीब को दयालु दानी दीन को॥

कुल अकुलीन को सुनो है वेद साखी है।
पाँगुरे को हाथ पाँव आँधरे को आँखी है॥
माई बाप भूखे को आधार निराधार को।
सेतु भवसागर को हेतु सुखसार को॥
तुलसी तिलोक तिहुँ काल तोसे दीन को।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को॥

....

राम राम राम जीह जौलौं तूँ न जपिहै।
तौ लौं तूँ कहूँ जाइ तिहूँ ताप तपिहै॥
सुरसरि तीर बिनु नीर दुःख पाइ है।
सुर तरु तरे तोहिं दारिद सताइ है॥
जागत बागत सुख सपने न सोइ है।
जनमि जनमि युग युग जग रोइ है॥
छूटिबे को यतन विशेष बाँधो जायगो।
होइहै विष भोजन जो सुधा सानि खायगो॥
पतित पावन रामनाम सो न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी को उसरो॥

....

राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
रामनाम नव नेह मेह को मन हठि होहु पपीहा॥
सब साधन फल कूप सरित सर सागर सलिल निरासा।
रामनाम रति स्वाति सुधा शुभ सीकर प्रेम पिपासा॥
गरजि तरजि पाषाण बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर पर परमिति पहिचानै॥
रामनाम गति रामनाम मति रामनाम अनुरागी।
होइगै, हैं, जो होइहैं आगे तेइ त्रिभुवन बड़भागी॥
एक अंग मग अगम गमन करि विलम न छिन छिन छाहै।
तुलसी हित अपनो अपनो दिशि निरुपधि नेम निबाहै॥

भैय्या सुमन! "*चातक रटनि घटे घटि जाई*" चातक का नियम कभी न भी पूरा हो सकै परन्तु तुम्हारा तो '*बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई*' प्रेम सदा बढ़ने ही से भला होगा "*नित नव प्रेम राम ते होई*" दिन प्रति नवीन नवीन प्रेम बढ़े। प्रेम मग्न होकर उच्चस्वर से राम राम रटो कभी मौन होकर राम नाम जपो, और कभी एकान्त चित्त होकर मन ही में राम नाम मनन करो, स्मरण करो, रमो, इस प्रकार सर्वदा "*राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे*" भैय्या सुमन! जैसे मिश्री अपने स्वरूप को जल में लीन करके जलाकार हो जाती है ऐसे ही तुम राम में रम जावो और राम को अपने मनमें रमा लो तुम भी राम में

मिलकर रामाकार हो जावो। मन वचन कर्म से अर्थात् मन से मनन करो राम में रमो, वचन से जप करो, कर्म से उच्चस्वर से रटो।

भर्जनं भव बीजानामर्जनं सुख संपदाम्।
तर्जनं यम दूतानां राम रामेति गर्जनम्॥

मन से मनन करने से मन में जो जन्म-मरण बीज का अंकुर है वह भुन जाता है। अतएव पुनः संसार में जन्म नहीं होता। वचन से जप करने से दैवी संपत्ति ब्रह्मानन्द सुख दोनों संग्रह होकर आप ही आप मिलता है जो *'दैवी संपद् विमोक्षाय"* संपद और सुख मोक्ष को देने वाला होता है और उच्चस्वर से राम नाम रटने से वा गर्जन करने से यमदूत ताड़ना पाकर भाग जाते हैं। *"इह लोके सुखी भूत्वा परलोके विजयी भवेत्"* भैय्या सुमन! राम नाम के सहारे से इहलोक में यावज्जीवन नाना प्रकार सुख संपत्ति भोगते हुए अन्त समय परलोक में यमदूतों पर विजय, अर्थात् यम यातना से निर्भय होते हुए साकेत वैकुण्ठादि में पहुँच जावोगे। *"यत्गत्वा न निवर्तन्ते"* अर्थात् *'जहां सन्त सब जाहि"* जहाँ जाने से पुनरावर्ति अर्थात् मर्त्यलोक में योनियातना जन्म यातना में नहीं आना होता। बारम्बार माता की योनि में वीर्य बोया जाता है, और शरीर रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है पुनः मृत्यु रूपी कुल्हाड़ी से काटा जाता है वह जन्म मरण का बीज रामनामाग्नि से जल जाता है।

रकाराऽनलबीजस्थाद्ये सर्वे वाडवादयः।
कृत्वा मनो मलं सर्वं भस्मं कर्म शुभाशुभम्॥

पुनः जन्म मरण नहीं होता जीवन मुक्त हो जाता है। भैय्या

सुमन, राम नाम ही की गति, रामनाम हीं में मति और राम नाम ही से अनुराग प्रेम करो यही अपना परम कल्याण है। यही साधन है-

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू। रामनाम अवलंबन एकू॥

यह महा भयंकर कराल कलिकाल में ज्ञान वैराग्य भक्ति किसी प्रकार का कुछ कर्म नहीं है एकमात्र रामनाम ही का अवलम्ब है।

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तून।
कलौयुगे कल्मषमानसानामन्यत्र धर्मे खलु नाधिकारः॥

यह घोर कलियुग में अन्य धर्मों में किसी प्रकार जीव का कुछ अधिकार ही नहीं है। केवल दो अक्षर रामनाम ही हृदय से स्मरण करो, वाणी से जप करो, अथवा उच्चस्वर से गान करो, यही एक मात्र जीव के लिए मुक्ति का मार्ग है।

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। संतत सुनिय रामगुणग्रामहिं॥

भैय्या सुमन! तुम कुमन मत बनो, सुमन ही रहो और सुमन तभी हो जब हमारी बात मानो और हमारी बात मानोगे तभी तुम्हारा सब प्रकार भला होगा। तुम्हारी सब इच्छा पूरी होगी, देखो पढ़ो समझो और करो-

भलो भली भाँति है जो मोरे कहे लागि है।
मन रामनाम से सुभाय अनुरागि है॥
रामनाम को प्रभाव जानि जूड़ी आगि है।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है॥

रामनाम सों विराग जोग जप जागि है।
बाम विधि भालहूँ न कर्म दाग दागि है॥
रामनाम मोदक सनेह सुधा पागि है।
पाइ परितोष न तूँ द्वार द्वार बागि है॥
रामनाम कामतरु जोइ जोइ माँगि है।
तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगि है॥

रामनाम कर अमित प्रभावा। संत पुराण उपनिषद गावा॥
रामनाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥

भैय्या सुमन! अब तो अच्छे से समझ लिए होंगे अब रामराम कहो।

रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम॥
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम॥
रामराम रामराम रामराम राम।
रामराम रामराम रामराम राम॥

दोहा—एक भरोसो नाम को, राम तुम्हारिहि आस।
विनय यही श्री चरण में, लघुमति गंगादास॥

शुभमस्तु! मंगलमस्तु!! शान्तिरस्तु!!!

भैय्या सुमन ! तूँ रास्ता का पथिक है।

सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम—

सीताराम सीताराम जपु रे बटोहिया।

भ्रमत भ्रमत बहुकालतोहिं बीति गए अजहूँ तो निजघर चेतु रे बटो०

करुणानिधान उपकारी बिनु हेतु प्रभु नर तनु कृपाकरि दीन्ह रे ब०

मायामोह जगजाल साथी दिन पाँच चार इनहिं बिहाइ प्रभु भजु रे ब०

पाइ सब जगजाल प्रभुके मिलन हेतु धीरे धीरे मन ताहि मेटु रे ब०

कौशिलाकुमार सिय संग गलबाहें दिए मृदु मुसुका। उर आनु रे ब०

जनक लड़ैती छबिखानि स्वामिनी सियतिनहिं रिझाइ मति माँगु रे ब०

प्रेम लाइ 'गंगादास' रामनाम डोरीगहि नेहकी नगरि चलु बसु रे ब०

❀ सवैया ❀

क्षण भंगुर जीवन है जग में, मन "मंजुल" पुण्य कमाते चलो।

फिर औसर ऐसा मिलेगा नहीं, परलोक का पन्थ बताते चलो॥

सत्सङ्ग करो पर पीर हरो, हरि को सुमिरो हर्षाते चलो।

निशियाम सदा सियराम सिया, सियराम सिया बस गाते चलो॥

श्रीराम हृदयम्

(महात्म्य)

तत्र श्रीरामहृदयं यः पठेत्सुसमाहितः,
स ब्रह्मघ्नोऽपि पूतात्मा त्रिभिरेव दिनैर्भवेत् ।
श्रीराम हृदयं यस्तु हनुमत्प्रतिमान्तिके,
त्रिः पठेत्प्रत्यहं मौनी स सर्वेप्सित भाग्भवेत् ।
पठन् श्रीरामहृदयं तुलस्य श्वत्थयोर्यदि,
प्रत्यक्षरे प्रकुर्वीत ब्रह्महत्या निवर्तकम् ॥

* श्रीराम उवाच *

ततो रामः स्वयं प्राह हनूमन्तमुपस्थितम् ।
शृणु तत्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्म परात्मनाम् ॥ १ ॥
आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।
जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।
प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥ २ ॥
बुद्ध्यवच्छिन्न चैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥ ३ ॥
सभास बुद्धेः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ।
साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्याजीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥ ४ ॥

अभासस्तु मृषा बुद्धिरविद्या कार्यमुच्यते।
अविच्छिन्नं तु तद्ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पतः ॥५॥

अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते।
तत्वमस्यादि वाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥६॥

ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः।
तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥७॥

एतद्विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते।
मद्भक्ति विमुखानां हि शास्त्रगर्तेषु मुह्यताम्।
न ज्ञानं न च मोक्षःस्यात्तेषां जन्म शतैरति ॥८॥

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो,
मयैव साक्षात् कथितं तवानघ।
मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया,
दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥९॥

एतत्तेऽभिहितं दैवी श्रीराम हृदयं मया।
अति गुह्यतमं हृद्यं पवित्रं पाप शोधनम् ॥१०॥

साक्षात्रामेण कथितं सर्व वेदान्त संग्रहम्।
यः पठेत्सततं भक्त्या स मुक्तोनात्र संशयः ॥११॥

ब्रह्म हत्यादि पापानि बहुजन्मार्जितान्यपि।
नश्यन्त्येव न सन्देहो रामस्य वचनं यथा ॥१२॥

योऽति भ्रष्टोऽति पापी परधन पर-
दारेषु नित्योद्यतो वा,
स्तेयी ब्रह्मघ्न मातपितृ वधनिरतो
योगि वृन्दापकारी ।
यः संपूज्याभिरामं पठति च हृदयं,
रामचन्द्रस्य भक्त्या ।
योगीन्द्रै रप्यलभ्यं पदमिह लभते,
सर्वदेवैः स पूज्यम् ॥१३॥

इति श्रीमध्यात्म रामायणे उमामहेश्वर संवादे बालकान्डे श्रीराम हृदयं स्तोत्र समाप्तः ।

श्रीराम गीता

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गल मङ्गलात्मना, विधाय रामायण कीर्ति मुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो, राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा ॥१॥

सौमित्रिणा पृष्टउदारबुद्धिना, रामः कथाः प्राह पुरातनी शुभाः ।
राज्ञः प्रमत्तस्यनृगस्य शापतो, द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥२॥

कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं, रामं रमालालितपादपंकजम् ।
सौमित्ररासादित शुद्ध भावनः, प्रणम्यभक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ।३

त्वंशुद्ध बुद्धोऽसि हि सर्व देहिना, मात्मास्यधीशोऽसि निराकृतिःस्वयम्
प्रतीयसे ज्ञान दृशां महामते, पादाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम् ॥४॥

अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो, भवापवर्गं तव योगिभावितम् ।
यथांजसा ज्ञानमपारवारिधिं, सुखं तरिष्यामि तथानुशाधिमाम् ।५।

श्रुत्वाऽथ सौमित्रि वचोऽखिलं तदा, प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः।
विज्ञानमज्ञानतमःप्रशान्तये, श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥६॥

आदौ स्व वर्णाश्रम वर्णिताःक्रियाः, कृत्वा समासादित शुद्ध मानसः।
समाप्य तत्पूर्वमुपात्त साधनः, समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥७॥

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता, प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं, पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः॥८॥
अज्ञानमेवास्य हि मूल कारणं, तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी, न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम्॥६।
नाज्ञानहानिर्न च राग संक्षयो, भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत्।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता, तस्माद्बुधो ज्ञान विचारवान्भवेत्।१०
ननु क्रिया वेद मुखेन चोदिता, तथैव विद्या पुरुषार्थ साधनम्।
कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता, विद्या सहायत्वमुपैति सा पुनः।११
कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ, तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा।
ननुस्वतन्त्राध्रुवकार्यकारिणी, विद्या न किञ्चिन्मनसाऽप्यपेक्षते १२
न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः, प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान्
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितैर्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये॥१३॥
केचिद्वदन्तीति वितर्क वादिनस्तदप्यसद्दृष्ट विरोध कारणात्।
देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया, विद्यागताहं कृतितः प्रसिद्ध्यति।१४
विशुद्ध विज्ञानविरोचनांचिता, विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते।
उदेति कर्माखिल कारकादिभिर्निहन्ति विद्याखिलकारकादिकम् १५
तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीर्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत्।
आत्मानुसन्धान परायणः सदा, निवृत्त सर्वेन्द्रिय वृत्ति गोचरः।१६

यावच्छरीरादिषु माययाऽऽत्मधीस्तावद् विधेयो विधिवादकर्मणाम्
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य तज्ज्ञात्वा परात्मानमथत्यजेत्क्रियाः १७
यदा परात्मात्म विभेद भेदकं, विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम्।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा, सकारका कारणमात्म संसृतेः।। १८।
श्रुति प्रमाणाभिविनाशिता च सा, कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी।
विज्ञानमात्रादमला द्वितीयतस्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति। १९।
यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते, कर्ताऽहमस्येति मतिः कथं भवेत्।
तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते, विद्या विमोक्षाय विभाति केवला २०
सा तैत्तिरीय श्रुतिराह सादरं, न्यासं प्रशस्ताखिल कर्मणां स्फुटम्।
एतावदित्याह च वाजिनां श्रुतिर्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम्। २१
विद्या समत्वेन तु दर्शितस्त्वया, क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः।
फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः, संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम्। २२।
स प्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी रज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्व दर्शिनः।
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभि र्विधानतःकर्मविधि प्रकाशितम् २३
श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो गुरोःप्रसादादपि शुद्धमानसः।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोःसुखी भवेन्मेरुरिवा प्रकम्पनः। २४
आदौ पदार्थावगति हिं कारणं, वाक्यार्थ विज्ञान विधौ विधानतः।
तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवका, वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत्। २५

प्रत्यक् परोक्षादिविरोधमात्मने विहाय संगृह्य तयोश्चिदात्मताम् ।
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ।२६

एकात्मकत्वाज्जहती न संभवेत्, तथाजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयं पदार्थाविव भागलक्षणा, युज्येत तत्वंपदयोरदोषतः ।।२७।।

रसादिपंचीकृतभूतसंभवं, भोगालयं दुःख सुखादि कर्मणाम् ।
शरीरमाद्यं तवदादिकर्मजं, मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः २८।।

सूक्ष्मं मनोबुद्धि दशेन्द्रियैर्युतं, प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।
भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं, भवेच्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ।२६।

अनाद्य निर्वाच्यमपीह कारणं, माया प्रधान तुपरं शरीरकम् ।
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितं, स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात ३०

कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृति, विभाति संगात्स्फटिकोपलो यथा ।
असंग रूपोऽयमजो यतोऽद्वयो, विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ३१

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते, स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
अन्योऽन्यतोऽस्मिन् व्यभिचारतो मृषा, नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ३२

देहेन्द्रिय प्राणमनश्चिदात्मनां सङ्घादजस्रं परिवर्तते धियः ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा, यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ।।३३।।

नेति प्रमाणेन निराकृताखिलो, हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः ।
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं, पीत्वा यथाऽम्भः प्रजहाति तत्फलम् ।३४।

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते, न क्षीयते नापि विवर्धतेऽनवः।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः, स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ।३५।
एवं विधे ज्ञानमये सुखात्मके, कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते।
अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते, ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात्।३६
यदन्यदन्यत्र विभाव्यते प्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः।
असर्प भूतेऽहि विभावनं यथा, रज्ज्वादिके यद्वदपीश्वरे जगत्।३७।
विकल्पमायारहिते चिदात्मकेऽहङ्कार एषः प्रथमः प्रकल्पितः।
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे, निरामये ब्रह्मणि केवले परे।३८।
इच्छादि रागादि सुखादिधर्मिकाः, सदा धियः संसृतिहेतवः परे।
यस्मात् प्रसुप्तौ तदभावतः परः, सुख स्वरूपेण विभाव्यते हि नः।३९।
अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो, जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः।
आत्माधियः साक्षितया पृथक् स्थितो, बुद्ध्या परिच्छिन्न परः स एव हि ४०
चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गतस्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत्।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते, जडाजडत्वञ्च चिदात्मचेतसोः।४१
गुरोः सकाशादपि वेद वाक्यतः, सञ्जात विद्यानुभवो निरीक्ष्यतम्।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधि वर्जितं, त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम्।४२
प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः, सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः।४३।

सदैव मुक्तोहमचिन्त्यशक्तिमानतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधै, र्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः॥४४॥
एवं सदात्मानमखण्डितात्मना, विचारमाणस्य विशुद्धभावना।
हन्यादविद्यामचिरेणकारकै, रसायनं यद्वदुपासितं रुजः॥४५॥
विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो, विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः।
विभावयेदेकमनन्य साधनो, विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ४६।
विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं, विलापयेदात्मनि सर्व कारणे।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते न वेद बाह्यं न च किञ्चिदान्तरम्॥४७।
पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोङ्कारमात्रंसचराचरं जगत्।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः ४८
अकारसंज्ञ पुरुषो हि विश्वको ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात्।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलः, समाधि पूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत्॥४९
विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम्।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं, द्वितीय वर्णं प्रणवस्य चान्तिमे।५०।
मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे, विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम्।
सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ् मुक्त उपाधितोऽमलः।५१
एवं सदा जातपरात्मभावनः, स्वानन्द तुष्टः परिविस्मृताखिलः।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकःसाक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत्५२

एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो निवृत्त सर्वेन्द्रियगोचरस्य हि।
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा, दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः।५३।
ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनिस्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्त बन्धनः।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो, मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः।५४।
आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो, भवं विदित्वा भयशोककारणम्।
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं, भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम्५५
आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं, भवत्यभेदेन मयात्मना तदा।
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः, क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिलः।५६
इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो, जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः।
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो, यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः।५७
यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं, तावन्मदाराधनतत्परो भवेत्।
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो, यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि।५८
रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं, मयाविनिश्चित्य तवोदितं प्रिय?।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्, स मुच्यते पातकराशिभिःक्षणात्५९
भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्, मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावित शुद्धमानसः, सुखी भवानन्दमयो निरामयः।६०।
यः सेवते मामगुणं गुणात्परं, हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिःस्पृशन्, पुनाति लोकत्रितयं यथारविः।६१
विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं, वेदान्तवेद्य चरणेन मयैव गीतम्।
यः श्रद्धया परिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो, मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषुभक्तिः६२

❀ इति श्रीरामगीता ❀

श्री करुणाष्टकम्

हे रामचन्द्र ! करुणाकर ! दीनबन्धो !,
हे राघवेन्द्र ! रघुनन्दन ! राजराज !
हे जानकीश ! जनरंजन ! कोशलेश !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥१॥
हे रावणान्तक ! दयाकार ! वारिजाक्ष !,
ब्रह्मादिदेवमुकुटार्चितपादपद्म ! ।
हे लक्ष्मणाग्रज ! दयाकर ! शान्तमूर्ते !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् । २॥
हे राजपुत्र ! सुखसागर ! श्री निवास !,
हे वेदवेद्य ! पुरुषोत्तम ! ज्ञानगम्य ! ।
हे सत्यसंध ! भरताग्रज ! शीलसिन्धो !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥३॥
हे भक्तवत्सल ! कृपाकर ? राक्षसारे !,
हे अंजनी तनय हृत् कमलाधिरूढ़ ! ।
हे शत्रुतापन ! भवार्तिहरावतार !,
स्मर्तुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥४॥

हे तातसत्यपरिपालक ! पाद पद्म,
दारुण्य मार्ग गमनोत्सुक ! धर्मनिष्ठ ! ।
हे शेष सेव्य विमलानन पूर्णचन्द्र !
स्मतुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ५ ॥

हे ब्रह्मनिष्ठ ! गुणकर्म ! विभिन्नमूर्ते !
हे बोध बोधित ! प्रबोधित बोधरूप ! ।
हे भावगम्य ! सनकादि मनः प्रबोध !
स्मतुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥६॥

हे चित्रकूट गिरि गूढ़ गुहानिवास !
हे धर्मपाल ! मुनिमानस राजहंस ! ।
हे इन्दिरारमण ! शायकचाप हस्त !
स्मतुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥७॥

हे मैथिली विरह भंजन ! सेतुकारिन् !
हे रावणानुज मनोरथ कल्पवृक्ष ! ।
हे देव ताप परिमोचन ! विष्णुमूर्ते !
स्मतुं निगृह्य हृदयं मम देहि दास्यम् ॥८॥

* इति श्री करुणाष्टकम् *

....

श्री भक्त-सर्वस्वम्

हे मैथिली हृदय पंकज भृङ्गराज !

हे स्वीय भक्तजन मानस राजहंस ! ।

हे सूर्यवंश विभु वैभव रामचन्द्र !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥१॥

हे मैथिली हृदय पंकज कंज नाथ !

हे भक्तवत्सल कृपाकर राघवेन्द्र ! ।

हे दीनरक्षक शरण्य सुखस्वरूप !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥२॥

हे मैथिली हृदय भूषण कान्तिकान्त !

हे नील पद्म रुचिरांघ्रि युग स्वयम्भो ।

हे विश्वनाथ रघुनाथ वरेण्यकीर्ते !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥३॥

हे मैथिली हृदय मन्दिर शुभ्रमूर्ते !

हे वायुपुत्र परिसेवित पादपद्म ! ।

हे आशुतोष जगदीश्वर भक्ति लभ्य !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥४॥

हे मैथिली हृदय राजमणे ! रमेश !

हे सर्वग ! प्रणतपालक ! दीनबन्धो ! ।

सृष्टि स्थिति प्रलय लील महानुभाव !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥५॥

हे मैथिली हृदयवल्लभ रूपराशे !

हे सर्वद ! श्रुति वचस्तुत राघवेश ! ।

हे पापपुंज दहनानल देव देव !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥६॥

हे मैथिली हृदयहार ! मनोजमूर्ते !

हे सर्वरीश ! विमलानन सर्वशक्ते ! ।

हे भक्तवश्य करुणालय नित्य भूते !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥७॥

हे मैथिली हृदयवास जगन्निवास !

हे भूमिभार हृदनीश जगच्छरण्य ! ।

हे राम ! हे रघुपते ! रघुवीर ! धीर !

त्वत्पाद पंकजरजश्शरणं ममास्तु ॥८॥

* इति श्री भक्तसर्वस्वम् *

श्रीब्रह्मा कृत स्तोत्र

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं
त्वमध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम्।
हेयाहेयद्वन्द्वविहीनं परमेकं
सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशिरूपम् ॥१॥

प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान्।
पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥२॥

मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं
मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम्।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं
वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥३॥

भावाभावप्रत्ययहीनं भवमुख्यै-
र्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम्।
नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं
वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥४॥

त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी
मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी।

भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी
योगाभ्यासैर्भावितचेतः सहचारी ॥५॥

त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं
लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम्।

भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं
वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥६॥

को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं
मायासक्तो माधवशक्तो मुनिमान्यम्।

वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं
वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥७॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं
नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम्।

मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं
वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥८॥

श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं
ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः।

रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं
ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥९॥

श्री इन्द्र कृत स्तोत्र

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं
भवारण्यदावानलाभाभिधानम् ।
भवानीहृदा भावितानन्दरूपं
भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥१॥

सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं
नराकारदेहं निराकारमीड्यम् ।
परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं
हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥२॥

प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं
प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम् ।
तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं
कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥३॥

सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं
सदा योगभाजामदूरे विभान्तम् ।
चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं
विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये ॥४॥

महायोगमायाविशेषानुयुक्तो
विभासीश लीलानराकारवृत्तिः ।

त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः
सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके ॥५॥

अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो
न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः।

इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात्
त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥६॥

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं
धराभारभूतासुरानीकदावम् ।

शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं
दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥७॥

सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्ति
विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम् ।

किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं
भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ८॥

लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे
समासीनमङ्के समाधाय सीताम् ।

स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां
भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥९॥
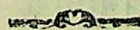
श्रीराम-मंगलशासनम्

मङ्गलं कोशलेन्द्राय महनीय गुणाब्धये,
चक्रवर्ति तनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥१॥

वेद वेदान्त वेद्याय मेघश्यामल मूर्तये,
पुंसां मोहन रूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥२॥

विश्वामित्रान्तरंगाय मिथिलानगरी पतेः,
भाग्यानां परिपाकाय भव्य रूपाय मङ्गलम् ॥३॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया,
नन्दिताऽखिल लोकाय रामभद्राय मङ्गलम्॥४॥

त्यक्त साकेत वासाय चित्रकूट विहारिणे,
सेव्याय सर्व यमिनां धीरोदयाय मङ्गलम् ॥५॥

सौमित्रिणा च जानक्या चाप बाणासिधारिणे,
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम्॥६॥

दण्डकारण्य वासाय खरदूषण शत्रवे,
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥७॥

सादरं शवरी दत्त फलमूलाभिलाषिणे,
सौलभ्य परिपूर्णाय सत्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥८॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्ट दायिने,
बालि प्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥९॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लंघित सिन्धवे,
जित राक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥१०॥

विभीषण कृते प्रीत्या लंकाभीष्ट प्रदायिने,
सर्व लोक शरण्याय श्री राघवाय मङ्गलम् ॥११॥

ब्रह्मादि देव सेव्याय ब्रह्मण्याय महात्मने,
जानकी प्राणनाथाय रघुनाथाय मंगलम् ॥१२॥

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्व देव नमस्कृते,
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१३॥

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताऽकल्पयत्पुरा,
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१४॥

अमृतोत्पादने दैत्यान्घ्नतो वज्रधरस्य यत्,
अदितिर्मङ्गलं प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१५॥

त्रिविक्रमाप्रक्रमतो विष्णोरतुल तेजसः,

यदासीन्मङ्गलं राम ! तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१६॥

ऋतवःसागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ताः,

मङ्गलानि महाबाहो ! दिशन्तु शुभमङ्गम् ॥१७॥

मयार्चिता देवगणाः शिवादयो महर्षयो भूतगणाः सुरोरगाः।
अभिप्रयातस्य वनं चिराय ते हितानि काङ्क्षन्तु दिशश्चराघव।१८

* समाप्तम् *

श्रीरामनाम परत्वम्

श्री रामनामाऽखिलमन्त्र बीजं,
सञ्जीवनं चेद्धृदये प्रविष्टम् ।
हलाहलं वा प्रलयानलं वा,
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतोभिः ॥१॥

रामेति वर्णद्वयमादरेण सदास्मरन् मुक्तिमुपैति जन्तुः ।
कलौयुगे कल्मष मानसानामन्यत्र धर्मे खलुनाधिकारः ॥२॥

इदं शरीरं शतसन्धि जर्जरं पतत्यवश्यं परिणाम दुर्वहम ।
किमौषधं पृच्छसि मूढ दुर्मते ! निरामयं राम रसायनंपिव ॥३॥

सुखप्रदं राम पदं मनोहरं युगाक्षरं भीति हरं शिवाकरम् ।
यशस्करं धर्मकरं गुणाकरं वचोवरं मे हृदयेऽस्तु सादरम् ॥४॥

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनंपावनानां,
पाथेयंयन्मुमुक्षोः सपदिपरपद प्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवर वचसां जीवनं सज्जनानाम्,
बीजं धर्म द्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥५॥

ब्रह्मांभोधिसमुद्भवं　　कलिमल,
　　　　　　　　प्रध्वंसनं　चाव्ययं,
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दुसुन्दर　　वरे
　　　　　　　　संशोभितं　सर्वदा।
संसारामयभेपजं　　　सुखकरं
　　　　　　　　श्रीजानकी जीवनं,
धन्यास्ते कृतिनःपिबन्ति सततं
　　　　　　　　श्रीराम नामामृतम्।६॥

पेयंपेयं　　श्रवण　　पुटके
　　　　　　　　राम　नामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं सतति मनिशं
　　　　　　　　तारकं　ब्रह्मरूपं।
जल्प्यं जल्प्यं प्रकृति विकृतौ
　　　　　　　　प्राणिनां कर्ण मूले,
वीथ्यां वीथ्यां अटति जटिलः
　　　　　　　　कोऽपि काशी निवासी॥७॥

अहंभवन्नाम　　　गृणान्कृतार्थो
　　　　　　　　वसामि काश्यामनिशं भवान्यैः।

मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामिमन्त्रं तव रामनाम॥८॥

त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनोमम।
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन्स्थास्मि भूतले॥९॥

यावत्स्थास्यति ते नामलोके तावत्कलेवरम्।
ममतिष्ठतुराजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाँक्षते॥१०॥

पाताल भूतलव्योम चारिणश्छद्मचारिणः।
नदृष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥११॥

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये।
मधुरं मधुराक्षरं रामनामामृतं पिव॥१॥

हृदयेश्यामलंरूपं सीतालक्ष्मण संयुतम्।
जिह्वा रामरामेति च मधुरं गायतिक्षणम्॥१३॥

* समाप्तम् *

❀ भजन नं० १ ❀

राम राम राम, श्रीराम राम राम श्रीराम राम राम।
प्रेम मुदित मन से कहो राम राम राम ॥

पाप कटै दुःख मिटै लेत राम नाम।
भव समुद्र तरन सुखद एक राम नाम ॥
राम राम राम श्रीराम राम राम श्रीराम राम राम,। प्रेम मुदित० १ ॥

परम शान्ति सुखनिधान एक राम नाम।
काशी मरत मुक्ति करत कहत राम नाम ॥
राम राम राम श्रीराम राम राम० ॥२॥

मात पिता बन्धु सखा सबइ राम नाम।
भक्त जनन जीवन धन एक राम नाम ॥
राम राम राम श्रीराम राम राम० ॥३॥

नारदादि शिव विरंचि कहत राम नाम।
प्रभु के दास प्राण सम्बल एक राम नाम ॥
राम राम राम श्रीराम राम राम श्रीराम राम राम,
प्रेम मुदित मनसे कहो राम राम राम ॥४॥

❀ भजन नं० २ ❀

....

राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।
मंगल-मुद उदित होत कलि-मल छल छपत ॥१॥
राम राम, राम राम, राम राम. जपत ।
कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत ।
हारहि जनि जनम जाय गाल गूल गपत ॥२॥
राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।
काल करम गुन सुभाउ सबके सीस तपत ।
राम-नाम-महिमा की चरचा चले चपत ॥३॥
राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।
साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत ।
कलिजुग वर बनिज विपुल नाम-नगर खपत ४॥
राम राम, राम राम, राम र म, जपत ।
नाम सों प्रतीति-प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किए रावन-रिपु तुलसिहु से अपत ॥५॥
राम राम, राम राम, राम राम, जपत ।

❀ भजन नं० ३ ❀

राम जपु, राम जपु राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ़ मन बारबारं ।
सकल सौभाग्य सुखखानि जिय जानिशठ, मानि विश्वासवद वेदसारं। १
कोशलेन्द्र नवनील कंजाभतनु, मदनरिपु-कंजहृदि-चंचरीकं ।
जानकीरमन सुखभवन भुवनैक प्रभु समर भजन परम कारुणीकं। २।
दनुजवन धूम धुज पीन आजानुभुज, दण्ड कोदंड वर चंड बानं ।
अरुनकर चरणमुख नयन राजीव गुन-अयन बहु मयन शोभानिधानं। ३
वासनावृन्द-कैरव दिवाकर काम-क्रोध-मद कंज-कानन-तुषारं ।
लोभ अति मत्त नागेन्द्र पंचाननं भक्त-हित हरण संसार-भारं ।४।
केशवं क्लेशहं केश-वन्दित पद द्वन्द्व मन्दाकिनी-मूलभूतं ।
सवदानन्द-सन्दोह, मोहापहं घोर संसार पायोधि-पोतं ।।५।।
शोक-सन्देह-पाथोदपटलानिलं, पाप पर्वत कठिन-कुलिशरूपं ।
सन्त-जन कामधुक-धेनु, विश्रामप्रद नाम कलि-कलुप भंजन अनूपं।६
धर्म कल्पद्रुमाराम हरिधाम-पथि सम्बलं मूलमिदमेव एकं ।
भक्ति-वैराग्य-विज्ञान-शम-दान-दम, नाम-अधीन साधन अनेकं।७।
तेन तप्तं तेन दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्म-जालं ।
येन श्री रामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं ।।८।।

श्वपच, खल-भिल्ल यवनादि हरिलोक गत,
नाम बल विपुल मति मल न परसी।
त्यागि सब आस, संन्त्रास भवपास-
असि निसित हरि नाम जपु दास तुलसी ॥६॥

❀ भजन नं० ४ ❀

भजन बिना कैसे तरिहौ प्राणी।
रामनाम मुख गान न कीन्हो, सुने न सद्गुरु बानी।
नयनन सन्त दरश नहिं देखे, खोये सब जिन्दगानी ॥ भजनबिना०
काम, क्रोध, मद, लोभ मोह में, अन्धा भयो गुमानी।
हरि कीर्तन हरिभजन स्मरण, बुद्धिबल सबहिं भुलानी भजनबि०।
तीर्थाटन स्नान गङ्गजल, स्वपनेहुँ नहिं अनुमानी।
योग यज्ञ जप दान विविध विधि, सन्ध्या कर्म सिरानी ॥ भजनबि०।
ज्ञान भक्ति वैराग्य कर्म सब, कीन्हेऊ नहिं अभिमानी।
'गंगादास' कान लगि कहते, राम भजहु सुख मानी ॥ भजनबि०।

❀ भजन नं० ५ ❀

भजन कर मोरे मन सीताराम।
गोड़वा कहैं हम तीरथ करबै, हँथवा कहैं हम देबै दान।
अँखियाँ कहैं हम रामजी को देखबै, कनवाँ कहैं हम सुनबै पुरान॥

जिभिया कहै हम रामनाम रटवै, रामजी लागे हैं हमारो अभिमान।
'गंगादास' जोरिकर बिनवत, रामजी राखो अपने गुरुजी का मान ॥

❁ भजन नं० ६ ❁

दिवाने मन भजन बिना दुःख पइहौ ॥
पहिला जन्म भूत का पइहौ, सात जन्म पछि इहौ।
काँटा पर का पानी पइहौ, प्यासन ही मरजइहौ ॥दिवानेमन०।
दूजा जन्म सुआ का पइहौ, बाग बसेरा लइहौ।
टूटे पंख बाज मँड़राने, अधफर प्राण गँवइहौ ॥दिवानेमन०।
बाजीगर के बानर होइहौ, लकड़िन ना। नचइहौ।
ऊँच नीच सों हाथ पसारिहौ, माँगी भीख न पइहौ ॥दिवानेमन०।
तेली के घर बैना होइहौ, आँखिन ढाँप ढँपइहौ।
कोस पचास घरही में चलिहौ, बाहर होन न पइहौ ।दिवानेमन०।
पाँचवाँ जन्म ऊँट का पइहौ, अतुलित बोझ लदइहौ।
बैठे से तो उठन न पइहौ, घुरुचि घुरुचि मरि जइहौ दिवाने मन॥
धोबी के घर गदहा होइहौ, काटो घास न पइहौ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे, लै घाटे पहुँचइहौ ॥दिवाने मन॥
पक्षिन में तो कौआ होइहौ, करर करर गोहरइहौ।
उड़ि के जाय बैठ मैला पर, गहरी चोंच लगइहौ ॥दिवाने मन॥

रामनाम से प्रेम न कीन्हो, अन्तकाल पछितइहौ ।
कहैं 'कबीर' सुनो भाई साधो, नरक निशानी पइहौ ॥ दिवाने मन ॥

❀ भजन नं० ७ ❀

छका सो छका फिर देह धारे नहीं, कर्म कपट सब दूर किया ।
श्वाँस उश्वाँस से प्रेम प्याला पिया, राम दरियाव तहँ बैठ जिया ॥
चढ़ी मतवाली अरु हुआ ममसाँवता, स्फटिक ज्यों फेरि नहिं फूट जावै
कहैं 'गुरुदेव' जिन बास निर्भय किया, बहुरि संसार में नाहिं आवै ॥

राम जपु राम जपु राम जपु० ॥

❀ भजन नं० ८ ❀

भैय्या राम बिना कछु नाहीं ॥ टेक ॥
रामहिं आगे रामहिं पीछे, रामहिं चोले माहीं ॥
उत्तर रामहिं दच्छिण रामहिं, पूरब पश्चिम रामा ।
स्वर्ग पाताल महीतल रामा, राम सकल विश्रामा ॥
उठत रामहिं बैठत रामहिं, जागत सोवत रामा ।
राम बिना कछु और न दरशै, सकल राम के कामा ॥
सकल चराचर पूरण रामा, निरखौं शब्द सनेही ।
कायम सदा कबहुँ ना विनशै, बोलनहारा येही ॥
एक राम को भजै निरन्तर, एक राम मिलि गावै ।
कहैं 'गुरुदेव' राम के परशे, आपा ठौर न पावै ॥

❀ भजन नं० ९ ❀

नाम ही ज्ञान पुनि नाम ही ध्यान है, नाम ही भक्ति वैराग्य भाई।
नाम ही सूर्य अरु नाम ही तेज है, नाम से योग की युक्ति पाई॥
नाम ही शील अरु साँच पुनि नामही नामही याग जपतप कीन्हा।
कहत 'गुरुदेव' कर्त्तव्य कछु ना रहा रोम ही रोम जब नाम चीन्हा॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ।

❀ भजन नं० १० ❀

राम ही नाम विश्राम है जीव को, और विश्राम कहूँ नाहिं दीसै।
स्वर्ग अरु मर्त्य पाताल छूटे नहीं, जहाँ जीव जावै तहाँ काल पीसै॥
देखु भवसिन्धु में नाम नौका बनी, तासु के बीच जब जीव आवै।
तरै भवसिन्धु सुखधाम पहुँचै सही, कालकी चोट फिर नाहिं खावै॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ।

❀ भजन नं० ११ ❀

आठहू प्रहर मतवाल लागी रहै, आठहू प्रहर में छाक पीवै।
आठहू प्रहर मस्तान माता रहै, ब्रह्म आनन्द में साधु जीवै॥
साँच ही कहत अरु साँचही गहत हैं, काँच को त्यागिकर साँच लागा।
कहैं 'गुरुदेव' यों साधु निर्भय भया जन्म अरु मरण का भरम भागा॥
राम जपु राम जपु राम जपु० ।

❋ भजन नं० १२ ❋

और व्यापार तो बड़े व्यापार हैं, प्रेम व्यापार को राह न्यारी।
कहें 'गुरुदेव' चित चेत मन बावरे, प्रेम का घाव है बहुत भारी॥
साँप के डँसे की सात सौ जड़ी हैं, प्रेम के डँसे को जड़ी नाहीं॥
खड़ग के घाव को ढाल की ओट है, प्रेम के घाव को ओट नाहीं।
राम जपु राम जपु राम जपु०।

❋ भजन नं० १३ ❋

प्रेम करना सहज न समझो, कठिन प्रेम का करना है।
करना चाहो प्रेम राम मे, फिर क्या मौत से डरना है
प्रेमबाज मजबूत वही जो, कभी मौत से नाहिं डरे।
लाखों आपद् पड़ें शीश पर, कभी न दिल से आह करे॥
शरद होय चाहे गरम होय, चाहे चारों ओर से आग जले।
प्रेमी जन उनहीं को कहिये, बेधड़क उसमें कूद पड़े॥
चढै बरै या जरै उसी में, फिर भी उसमें गिरना है।
करना चाहो प्रेम राम से०॥
प्रेम किया है ब्रज की गोपिन, वर पाये सुन्दर घनश्याम।
उसी प्रेम में आनन्द लूटे, रकम रकम के लिये आराम॥

प्रेम किया प्रह्लाद भक्त ने, सुमिरण करके आठौ याम।
"गंगादास" कर जोर कहें, वह बिना प्रेम नहिं मिलहहिं राम ॥
करना चाहो प्रेम राम से० ॥

* भजन नं० १४ *

राम तुम्हें कौने बन खोजन जाऊँ ॥ टेक ॥
बन बन में मैं खोजत हारेउँ, पावत नहिं कोउ ठाऊँ।
पर्वत नदी ताल सब खोजेउँ, खोजि थकेउँ सब ठाऊँ ॥
बाग बगीचा फूल बनन में, खोज कतहुँ नहिं पाऊँ।
हौं हतभाग्य अधम शठ जड़मति, कैसे तुमहिं सोहाऊँ ॥
"गंगादास" अभाग्य तुम्हारेहि, जीवन वृथा गँवाऊँ ॥

* भजन नं० १५ *

राम तुम्हें कौन भाँति अपनाऊँ ॥
विषय विलास भोग तृष्णारत, मन लोलुप भरमाऊँ।
काम क्रोध मद लोभ मगन मन, सन्तत दिवस बिताऊँ ॥
जो मन मुदित चरण चिन्ता कर, सो मन रहत न ठाऊँ।
हारि परेउँ चुचुकारि प्यार करि, मन तरंग नहिं पाऊँ ॥
तुमहीं करौ उपाय दयानिधि, जानत भाव कुभाऊ।

परधन परदारा चिन्तित चित, चंचल चपल स्वभाऊ ॥
रामनाम ध्वनि करत आलसो, ऐसो दुष्ट स्वभाऊ।
"गंगादास" के गोद दुलरुआ, तुमहिं हृदय लिपटाऊँ ॥
राम तुम्हें कौन भाँति अपनाऊँ ॥

❀ भजन नं० १६ ❀

धीरे धीरे चले जात दोनों भैय्या ॥ टेक ॥
मिथिला नगरियाकी चिकनी डगरिया सो ।
चले जात दोनो भैय्या सो धीरे धीरे ॥

दाँये बाँये गौर श्याम, ठुमुकि ठुमुकि धरत पाँव ।
चितवत महला अँटरिया सो धीरे धीरे० ॥ १ ॥

संग लिये बाल सखा, देखत हैं धनुष मखा ।
चितवत चित्रा चितरिया सो धीरे धीरे० ॥ २ ॥

राजा सब देखि देखि, हारे मन रूप पेखि ।
बैठे हैं ऊँची मचरिया सो धीरे धीरे० ॥ ३ ॥

'गुरुदेव' अति आनन्द, गोद लषन रामचन्द ।
सुखी भैली सारो नगरिया सो धीरे धीरे ॥ ४ ॥

चले जात दोनों भैय्या, सो धीरे धीरे ।
मिथिला नगरिया की चिकनी डगरिया सो
चले जात दोनो भैय्या सो धीरे धीरे ॥

❀ भजन नं० १७ ❀

कहीं नजरी न लागै गुरु जी के गोद खेलौना हो ॥ टेक ॥
हँसत चलत बतरात परस्पर, सुन्दर कुँमर सलोना हो ॥ कहीं ॥
पियरी धोती केशरिया जामा, जरकसी टोपी सोहान हो ॥ कहीं ॥
कोमल वयस किशोर मृदुल मुख, मन्द मन्द मुसुकान हो ॥ कहीं ॥
मिथिला नगर की नारी छिनारो बबुआ पै मारै जादू टोना हो ॥ कहीं ॥
जदुही टोनही और टुटुकिनो सबही करैं शुभदान हो ॥ कहीं ॥
श्रीगुरुदेव के प्राण जीवनधन मिथिला नगर मनमोहना हो ॥ कहीं ॥

❀ भजन नं० १८ ❀

मैया सुनयना के पाहुनरे कोई नजरो न लागे ।
प्रेमिन जीवन धन रे कोई नजरो न लागे ॥

कवन सुकृत हम परसल पायल कौशिल्या के चारु खेलौना रे ।
बाम नयन भुज फरकन लागे पायऊँ छबीले नृप छौना रे ।
छमकरी नित भड़रत आँगन देखलौं मैं श्याम सलोना रे ।
मोद न भूलि लड़ैहौं नयना, चितवनि में मनमोहना रे ।

❀ भजन नं० १९ ❀

जेहले सलोनी सिय तेहने सलोना हे दुलरुवा दुलहा, कनि

हँसि हेरू हमरी ओर ॥ अपने दुलरुवा शिर मोरिया सम्हारब हे दु०, मोतिया लगायब चहुँओर ॥ जुलुफ अतरवा भाल केशर की खौरवा हे दु०, कजरा लगायब दृगकोर ॥ धनि धनि प्यारी मोरी धन मनमोहना हे दु०,मड़वा बैसायब गांठ जोर॥ मुखचूमि चूमि दुलहा लेइबे बलैया हे दु०, कनि बोली बोलू रस बीर॥ दोनो दुलरुवा के हिय में बसायब हे दु०, सिया अली सरबस तोर ॥

❀ भजन नं० २० ❀

मोरा लालन कनेक मुसुका दे नयनवाँ माने नहीं ।
सुन्दरलाल भाल पर चानन, काजर कयल नयन छवि आनन, मौरिया के लड़ हटवा दे ॥ नयनवा०॥ दाड़िम दसन हँसन बिच टोना, त्रिभुवन मोहन श्याम सलोना, मुसुकैत नैना उठादे ॥ नयनवा० ॥ हीरक हार मउर लर मोती । चपकन चारु वियहुती धोती, चरणक महावर दिखादे ॥ नयनवा ॥ स्नेहलता लखि रूप मनोहर, राखि लेल हिय बीच धरोहर, माँगव न हम किछु जादे ॥ नयनवां ॥

संक्षिप्त रामायण–१

श्लोक–आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वा मृगं काञ्चनम् ।
वैदेही हरणं जटायु मरणं, सुग्रीवसम्भाषणम् ॥
वालीनिर्दलनं समुद्रतरणं, लंकापुरीं दाहनम् ।
पश्चाद्रावण कुम्भकर्ण हननमेतद्धि रामायणम् ॥

संक्षिप्त रामायण–२

रघुपति राघव राजाराम जय सीताराम,
जय सीताराम पतित पावन ॥ टेक ॥
दिव्य धाम श्री अवध पुरी में, कनक भवन अति सुन्दर धाम ॥
जय सीताराम जय सीताराम पतित पावन० ॥१॥
तेहि महँ कल्पवृक्ष के नीचे, दिव्य सिंहासन शोभित राम ।
जय सीताराम जय सीताराम० ॥२॥
रतन जटित अति रुचिर मनोहर, कोटि सूर्य्य परकाशित राम ।
जय सीताराम जय० ॥३॥
तेहि महँ सहस्र कमल दल ऊपर, सीताराम विराजित राम ।
जय सीताराम जय० ॥४॥
शोभाधाम राम सुखसागर, सब गुण आगर सीताराम ।
जय सीताराम जय० ॥५॥

अखिल लोक के नायक हो प्रभु, भक्तों के सुखदायक राम।
जय सीताराम जय० ॥६॥

भक्तों के दुःख दूर करन हित, मर्त्यलोक पगु धारे राम।
जय सीताराम जय० ॥७॥

सरयू के तीर अयोध्या नगरी, रामचन्द्र अवतारित राम।
जय सीताराम जय० ॥८॥

बाल चरित्र किये अति सुन्दर, नगर नारि नर मोहित राम।
जय सीताराम जय० ॥९॥

नृप दशरथ के पुत्र भये हैं, घर घर बजत बधाई राम।
जय सीताराम जय० ॥१०॥

छोटे छोटे करन में धनुही सोहैं बाल सखा संग शोभित राम।
जय सीताराम जय० ॥११॥

कोमल गात पीताम्बर सोहैं उर मोतिन की माला राम।
जय सीताराम जय० ॥१२॥

विश्वामित्र अवधपुर आए नृप से माँगे लछमण राम।
जय सीताराम जय० ॥१३॥

मुनि नायक के संग सिधाए, मगु ताड़का उधारे राम।
जय सीताराम जय० ॥१४॥

बक्सर जाइ यज्ञ करवाए, त्रिभुवन में यश छायो राम।

जय सीताराम जय० ॥१५॥

परशत चरण शिला भई सुन्दरि, गई पति लोक प्रफुल्लित राम

जय सीताराम जय० ॥१६॥

गौतम तिय गति दे मुनिन संग, जनकपुरी पगु धारे राम।

जय सीताराम जय० ॥१७॥

देखत जनक नगर की शोभा, सुख सागर सुख पाए राम।

जय सीताराम जय० ॥१८॥

सब भूपन को मान मन्थन करि, धनुष तोरि देखराए राम।

जय सीताराम जय० ॥१९॥

राजा जनक अतिहि सुख पायो, ब्याह की लगन धराए राम।

जय सीताराम जय० ॥२०॥

दूलह रूप बने रघुनन्दन, कोटि काम छवि लाजित राम।

जय सीताराम जय० २१॥

मंडप में सिय संग विराजें, ऋषि मुनि मंत्र उचारें राम।

जय सीताराम जय० ॥२२॥

सफल मनोरथ भये जनक के, पाहुन अति प्रिय पाए राम।

जय सीताराम जय० ॥२३॥

सीता ब्याहि अवधपुर आए, घर घर मंगल गाए राम।
जय सीताराम जय० ॥२४॥

मातु पिता की आज्ञा पाले, तापस वेष बनाए राम।
जय सीताराम जय० ॥२५॥

भक्तन के हित वनहिं सिधाए, लच्मण के संग सीताराम।
जय सीताराम जय० ॥२६॥

चित्रकूट में जाय विराजे, बहु विधि चरित रचाए राम।
जय सीताराम जय० ॥२७॥

ऋषिन मुनिन के नयन सफल करि, पञ्चवटी प्रभु छाए राम।
जय सीताराम जय० ॥२८॥

सूपणखा रावण की बहिनी ताहि कुरूप कराए राम।
जय सीताराम जय० ॥२९॥

खरदूषण त्रिशिरादि चतुर्दश असुर सैन्य संहारे राम।
जय सीताराम जय० ॥३०॥

कंचन मृग मारीचहिं मार्यो: तेहि निज धाम पठाए राम।
जय सीताराम जय० ॥३१॥

सीता हरण कीन्ह दशकन्धर, यती वेष में आयो राम।
जय सीताराम जय० ॥३२॥

सीता विरह अतिहि दुःख पायो, नर लीला दरशाये राम।

जय सीताराम जय० ॥३३॥

जूठे फल शबरी के खाए, नवधा भक्ति सुनाए राम।

जय सीताराम जय० ॥३४॥

महाबली बाली संहारे, सुग्रीवहिं निस्तारे राम।

जय सीताराम जय० ॥३५॥

सागर में प्रभु सेतु-बँधायो, कपि दल पार उतारे राम।

जय सीताराम जय० ॥३६॥

बीश भुजा दश मस्तक छेदे, निशिचर गण संहारे राम।

जय सीताराम जय० ॥३७॥

रावण मारि विभीषण थाप्यो, सिया सहित पुर आए राम।

जय सीताराम जय० ॥३८॥

सीताराम सिंहासन बैठे, राज तिलक प्रभु धारे राम।

जय सीताराम जय० ॥३६॥

राजाराम जानकी रानी, त्रिभुवन में सुख छायो राम।

जय सीताराम जय० ॥४०॥

जो नर भक्ति सहित यह गावैं, राम धाम सुख पावैं राम।

जय सीताराम जय० ॥४१॥

'गंगादास' के गोद खेलैय्या राम लषण मन भाये राम।
रघुपति राघव राजाराम जय सीताराम जय सीताराम पतित पावन सीताराम ॥

॥ पद ॥

तोहिं राम मिलैंगे कपट के पट खोलरे।

घट घट में वह प्यारा रमता,
कटुक बचन मत बोल रे ॥ तोहिं राम मिलैंगे०॥ १॥

धन यौवन का गर्व न करियो,
झूठा पँच रंग चोल रे ॥ तोहिं राम मिलैंगे०॥ २॥

रामनाम मणि दियना बारो,
आज्ञा से मत डोल रे ॥ तोहिं राम मिलैंगे०॥ ३॥

भाव भक्ति से हृदय कमल में,
राम मिलहिं अनमोल रे ॥ तोहिं राम मिलैंगे०॥ ४॥

"गंगादास" परम सुख पावत,
राम खेलैं जाकीकालरे ॥ तोहिं राम मिलैंगे०॥ ५॥

कपट के पट खोल रे तोहिं राम मिलैंगे ॥

संक्षिप्त रामायण-३

श्री रामचन्द्रौ साकेतनाथौ, हा राम! हे राम! हा राम प्यारे।
हा कौशिलाचंद अंकाविहारी! हा राम! हे राम! हा प्राण प्यारे॥

गुरु के गोद में श्री राम लक्ष्मण

विश्वामित्रस्तु संपूज्य पूजार्हं रघुनन्दनम् । अङ्कं निवेश्य चालिङ्ग्य भक्त्या बाष्पा कुलेक्षणः ॥

भोजयित्वा सहभ्राता रामं पक्व फलादिभिः ॥

हे हे जनक तात ! प्रनताप परिताप ! हे वंश भृगुदाप खंडन कठिन चाँप।
हे जानकी प्राण ! जयमालधारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राण प्यारे॥
हे कैकेई कुंठि वचनानुरागी ! हे सूर्यकुल राज्य वैभव विरागी।
हे ! हे ! भरतभक्ति भावालचारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे
हे दण्डकारण्य परितापहारी ! हे गोध गतिगम्य लीलाबिहारी।
हे शेवरी प्रेम अतिथीभिखारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे॥
हे निर्भयानंद सुकंठरक्षक ! हे बालिबल गर्व मदमोह भक्षक।
हे ! हे ! हनूमान बल कर्णधारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे
हे ! हे ! विभीषण दुःखद्वन्द्वहारी ! हे सिंधु भवगाधनिस्तारकारी।
हे वेद वंदित श्रुति शास्त्रचारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे॥
हे ! कष्टनाशक ! हे देवपालक ! हे भूमिरक्षक, खलदलमद भक्षक।
हे रावणादिक मद गर्वहारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे॥
हे राम राजा, संसार काजा, अवतार साजा, परधाम राजा।
हे ! हे त्रिलोकी महाराज भारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे॥

❋ प्रार्थना ❋

अगाध भवसिंधु संसार माया, दुस्तर अगम थाह कोई न पाया।
हा हा उबारो भवभार भारो ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे ॥
माता, पिता, पुत्र, भार्या, समाई, संगी, सखा, बंधु स्वारथ मिताई।
निःस्वार्थ करुणाकर दुःखहारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे॥
जाऊँ कहाँ कौन जग में न कोई, पाऊँ सुफल कैसे विषवेलि बोई।
कोई न कोई सब खोई हमारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्र.णप्यारे॥
अब ऐसी करुणा करदें मुरारे ! हो पंच इन्द्री जग से किनारे।
केवल करैं कर्म ऐसा खरारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्य रे ॥
चंचलचरण ममतव धामशोभित ! नासा, श्रुति तव गुनगन निवेदित
देखैं तुझे मम नयनाभिखारी, हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे ॥
इतना निवेदन हे प्राण तनमन! निकले कभी जब यह प्राण मम धन
रसना रटे नाम आनंदकारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे ॥
तुम सामने हो कर को बढ़ाते, सीतापते राम मन मुस्कराते।
भव डूबते मम कर धर उठारी, हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे॥
जाऊँ तेरे पासहै दासदरखास ! आऊँ न भवप.स दे वास पदपास
पाऊँ 'सरस संत' विश्राम भारी ! हा राम ! हे राम ! हा प्राणप्यारे ॥

❁ कीर्तन ❁

रघुनंदन जन दुःखहारी, सीताराम सीताराम ।
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम ।रघुनंदन॥
कानन कुण्डल गल में माल,माथे पै मणिमुकुट विशाला ।
हाथ में शर धनुधारी, सीताराम सीताराम ॥
विश्वामित्र की यज्ञ संभारो मगमें प्रभु ताड़का संहारी ।
भक्तन के भयहारी, सीताराम सीताराम ॥
जनकपुरी में प्रभु पगुधारा, राजनका सब गर्व निवारा ।
शिवधनु तोड़नहारी, सीताराम सीताराम ॥
गौतम रिषि की नारी तारे, पितु आज्ञा सुन वनहि सिधारे ।
रोवत प्रजा दुःखारी सीताराम सीताराम ॥
चित्रकूट में भेंटे भाई, हर्षित होकर कंठ लगाई,
चकित भये नरनारी, सीताराम सीताराम ॥
पञ्चवटी में कुटी बनाई, सूर्पणखा की नाक कटाई ।
मायामृग वधकारी, सीताराम सीताराम ॥
गोद में गीध जटायु दुःखारी, रोवतधूर जटान सों झारी ।
पितु सम क्रिया सुधारी, सीताराम सीताराम ॥

माँग माँग शवरी फल खाये, ऐसे स्वाद कबहुँ नहिं पाये ॥
प्रेमके परखन हारी, सीताराम सीताराम ।
शरण विभीषण जबहीं आयौ, सकुचि लंक दै कंठ लगायो ।
शरणागत भयहारी, सीताराम सीताराम ॥
रावण मार राम घर आये, नरनारिन मिल मंगल गाये ।
हर्षित सब महतारी, सीताराम सीताराम ॥

छोटे छत्ता में छोटे छोटे

छोटे छोटे बाल संग लीन्हें करवाल छोटी,
छोटी ढाल छोटे तून बान औ कमान हैं ।
छोटी शीश चौतनी सुरंग अंग छोटी पगा,
कटि पट पीत छोटी-छोटी पदत्राण हैं ॥
छोटे कंठ कठुला लटकन हार छोटे-छोटे,
छोटी-छोटी पैजनी विराजैं छबिमान् हैं ।
"गंगादास" हृदय विहारी चहुँ बन्धु छोटे,
धाय-धाय खेलैं सबै सुषमानिधान हैं ॥

दो०—जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रयशूल ।
सो कृपालु मोहिं तोपर, सदा रहउ अनुकूल ॥

* आरती *

आरती जनक दुलारी की, कि दशरथ अजिर बिहारी की ॥टेक॥
चन्द्रिका चमक रही न्यारी, मुकुट पर जोवन बलिहारी,
छटा अलकन की अति कारी।
केशरिया तिलक, मोहनी झलक, गिरे नहिं पलक-
निरख मन जन मन हारी की कि दशरथ अजिर० ॥१॥
कुसुम्भी दक्षिणिया सारी, लसत पीताम्बर मन हारी-
युगल छवि आज बनी प्यारी।
कटक केयूर, पगन नूपूर, नयन भरपूर,
लखहु छवि कौस्तुभ धारी की कि दशरथ अजिर० ॥२॥
रतन मणि सिंहासन चमके, व्यजन शिर छत्र चमर दमके।
साज अंग अंग, सजे श्री रंग, किशोरी संग-
करहु झाँकी पिय प्यारी की कि दशरथ अजिर० ॥३॥
चरण नख पद्मराग लाजै, चलत नूपुर किंकिणि बाजै-
गरब लखि मन्मथ के भाजै।

कनक मणि थार, आरती बार, सहचरी धार-
उतारति अधम उधारी की कि दशरथ अजिर० ॥४॥
देव धरि मनुज रूप आवैं, दरश लखि लोचन फल पावैं,
अप्सरा किन्नर यश गावैं।
राम रघुवंश, भानु अवतंश, करहु दुःख ध्वंस-
हाथ गहि प्रेम पुजारी की कि दशरथ अजिर विहारी की ॥५॥
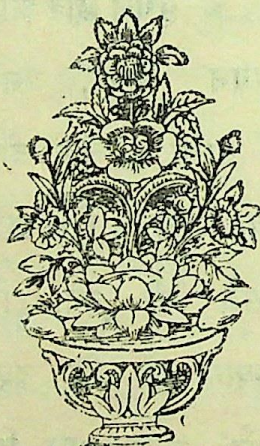
अथ पढ़ो, समझो और करो

भैय्या बालक वृन्द, तथा संत महान्त महानुभाव !

श्री सम्प्रदाय, रामानन्द वैष्णव साधु समाज में, जैसे वरणाश्रम में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चार वरण था परन्तु वैराग्य आश्रम में अच्युतगोत्र शुक्लवरण में अर्थात् वरण दो था, सूत्रधारी और मालाधारी और परस्पर में जान पहचान के लिए ऐसाही पूँछा भी जाता था, आप कौन वरण के हैं, उत्तर में सूत्रधारी अथवा मालाधारी बस जाती नहीं पूँछी जाती थी क्योंकि साधु का पूर्व घर गोत्र जाती नहीं पूँछना चाहिए, जाती पूँछना साधु में एक बहुत बड़ा अपराध माना जाता है। यथा-"*गुरू विषे नर बुद्धि शिलासम गनै विष्णु तन। महा प्रसादहिं अन्न मंत्र बदै वानी सम ॥ चरणामृत जल जान साधु की जात पिचानै। सो नर नरकैं जाइ श्रुति स्मृत्ति बखानै ॥ अघ कहैं षट पाप अति मोटो दुर्घट विकट। और पाप सब मिटै यह न मिटै हरि नाम रट ॥*" अर्थात् इन्हीं छः महा पापों में एक साधु का पूर्व घर कुल जाती पूँछना महा पाप है इस महा पाप को श्रीराम नाम भी नहीं जला सकता है। यथा-'*नामहुँ पाप न जारेउ*' परन्तु वर्तमानकाल में पूर्व जाती गोत्र पूरा पूँछा जाता है और अपनी अपनी जाती पर पूरा अभिमान रहता है। यथा-"*जाति पाँति धन धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥ सब तजि तुमहिं रहैं लव लाई*" यह नियम जाता रहा। तथा-"*सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई ॥ ए सब राम भक्ति के बाधक। कहहिं संत तव*

पद अवराधक" अर्थात् धन ऐश्वर्य जातीय कुल का अभिमान श्रीराम भक्तों का कन्टक है ऐसा संतों तथा श्रीराम जी के चरणों की आराधना करने वाले भक्तों ने निश्चय किया है। यथा-'सकल शोकदायक अभिमाना" वतमान वही जातीय देश ऐश्वर्य का अभिमान हम सब संतों में परिपूर्ण है। तथा-"आए थे कछु करन को अवटन लगे कपास" वही जातीय अभिमान के कारण साधु समाज में पूर्ववत वरं और अधिक काम, क्रोध, लोभ और मोह अच्छादित हो गया। यथा-"चलो चलो सब कोइ कहै पहुँचे विरला कोइ। एक कंचन एक कामिनी दुर्गम घाटी दोइ" ॥ वही है। सामने चरितार्थ होने जा रहा है। "सब नृप भए योग उपहासी। जैसे बिनु विराग सन्यासी ॥" तथा-"बहुदाम सँवारहि धाम यती। विषया हरि लीन गई विरती" ॥ अतः "तपसी धनवंत दरिद्र गृही" फलतः "धन मदमत्त परम वाचाला" हाथ में घड़ी बाँधे घंटाकरण हुए अपना राजकीय राजदत्त वेष की अवज्ञा किए। यथा-"भेष भगवान का दिया" वह वैराग्य के वेष को त्यागकर कोट कमीज सोनामुन्दरी लम्बी काँछा धोती पहने तथा-"लखि कुवेष जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजियत तेऊ" परन्तु वेष की अवज्ञा करने से आज हमारा नाम स्वादू पड़ा है, पचास लाख भिखारी भारत में निरर्थक भोजन कर रहे हैं हम भिखारियों में रक्खे गए हैं,हमारे बदले में स्पृश्य भंगी चमार जाती हरिजन अर्थात् श्रीराम भक्त बनाये गए हैं ऐसा राज नियंत्रण किया गया है। हम अपने को जगतगुरु योगीराज कर्मकान्डी त्यागी जी दन्डी स्वामी कहा करते हैं परन्तु कौन मानता है। "आपन समुझि साधु कह शोभा" हम अपने

ही अपना नाना टैटिल छपाकर प्रचार करते रहे संत, "सदा अपन यौ रहहिं दुराए ' तथापि प्रचार हो जाता था और अब प्रचार करने पर भी कोई नहीं मानता है क्योंकि साधु अथवा साधक तो है नहीं, अब तो हैं शुक्ल, तेवारी, चौबे, पाठक, क्षत्री, वैश्य और शूद्र हैं उसमें भी पासी परशुराम गोत्री क्षत्री है दुसाध चमार प्रहलाद वंश है, कोइरी, मुराव, काछी कुशवंश छत्री है, इत्यादि इत्यादि यथा- "*भए वरण शंकर कलिहि*" के नियमाअनुसार सभी विचित्र हो गया है।

कुछ दिन पूर्व क्या सब दिन संतों की शीत प्रसादी चरणामृत लिया जाता था, अब कहा जाता है क्या सब जाती का जूठा खाने से मुक्ति हो जाती है, किन्तु अंतःकरण शुद्धि निर्मल होने का एकमात्र उपाय है संतों का चरणामृत और सीत प्रसाद यथा-"*वाल्मीक नारद घट योनी। निज निज मुखन कही निज होनी*" आप सब रामायण भक्तमाल दिन रात पढ़ते ही हैं अर्थात् जातीय भेद होने के कारण चरणामृत सीत प्रसाद में घृणा हो गई, "*जानेहु संत अनन्त समाना*" तथा-"*संत चरण पंकज अति प्रेमा*" भाव जाता रहा।

भैय्या बालक वृन्द, तथा संत महानुभाव, वैराग्यवान के लिए कहा गया है। यथा-"*सबकी ममता ताग बटोरी, मम पद मनहिं बाँध बट डोरी। गुरु पितुमात बन्धुपति देवा। सब मोकहँ जानै दृढ़ सेवा*"॥ परन्तु जातीय गुण जातीय संबन्ध के कारण देश जातीय परिवार में ममता हो गई और वही काम क्रोध लोभ मोह फिर उत्पन्न हो गया तथा-"*वंचक भक्त कहाइ राम के। किंकर कंचन कोह काम के*" गुरु जो

नाम करण किए हैं श्रीरामदास जी श्रीलक्ष्मणदास जी श्रीजानकीदास जी परन्तु वह नाम प्रायः निरर्थक सा हो गया यथार्थ में कामदास, क्रोधदास और लोभ ही दास चरितार्थ होने जा रहा है। फलतः "जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं। अन्त राम कहि आवत नाहीं" मृत्यु काल में वही अरे मा रे, अरे बाप रे! अरे भाई रे! याद आता है और वही कहता है। यथा-"*यं यं वापिस्मरन्भावं त्यजत्यन्ते, तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः*" अर्थात् मरणकाल में जो वस्तु स्मरण करता है मरकर वही रूप धारण अर्थात् वही प्राप्ति करता है इसलिए हे अर्जुन सदा मेरे चरण में ही मन लगावो, तभी तो जीव सबकी आसा भरोसा छोड़कर वैराग्य लेता है अपनी सारी ममता श्रीराम जी में ही लगाता है परन्तु वह जातीय ममता के कारण सब जाता रहा।

कहीं मन्दिर में खड़े होकर कह रहे हैं। यथा-"*त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्चसखा त्वमेव॥ त्वमेवविद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं ममदेवदेव*"॥ परन्तु यदि किसी ने पूँछा की आपके पिता का क्या नाम है तो। ऐसा नहीं कहेंगे। "*माताराामो मत्पितारामचन्द्रः*" जातीय ममता के कारण कहेंगे की हमारे पिता का नाम झन्डा सिंह है अथवा घिनहूँ, कतवारू, माटुआ नाम है इत्यादि जातीय ममता के कारण भगवान श्रीराम जी से नाता टूट गया हाथी स्नान ही चरितार्थ हुआ इत्यादि काल का ही दोष कहना होता है। यथा-"*कलिमल ग्रसे धर्म सब लोभ ग्रते शुभ कर्म*" सब नष्टभ्रष्ट हो जारहाहै।

वर्तमानकाल यथा-"वरण धर्म नहि आश्रमचारी श्रुति विरोधरत सब नरनारी" वही चरितार्थ होने जा रहा है। तथा-'जिमि हरिभक्ति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चार" वरणाश्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और विरक्त ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यस्थ इन आठो आश्रम को उत्तीर्ण होकर भक्ति आश्रम में पहुँच गया था परन्तुकाल गति यथा-"साहेब का घर दूर है जैसे लम्बी खजूर। चढ़ै तो चाखे प्रेम रस गिरे तो चखना चूर" ॥ तो हम आठ सोपान से नीचे गिरकर फिर वही स्वजातीय धर्म पर जा रहे हैं। तथा-"ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा। परत खगेश न लागहिं वारा' वैराग्य पंथ ज्ञान मार्ग है ऊँचे चढ़ना है। यथा-"संतपंथ अपवर्ग कर' साकेत वैकुण्ठ का है। परन्तु यह बात भूल जाइए। यथा-'सुर दुर्लभ सुख करि जगमाहीं। अन्तकाल रघुपतिपुर जाहीं' देखिए यह भी कहा गया है। यथा-'छूटिवे को यतन विशेष बाँधे जावोगे। होइहहि विष भोजन जो सुधा सानी खावोगे' भगवान का प्रसाद अमृत होने पर भी विष का ही काम करेगा। "रघुपति भक्ति करत कठिनाई" बहुत बड़ा विचार करना होगा। इसलिए समझबूझ विचार कर आगे पाँव धरिए।

सन्तों के लक्षण, सन्तों के गुण, सन्तों की रहन सहन को सर्वदा स्मरण करते रहना चाहिए श्रीरामचरित मानस रामायण में भी प्रथम वन्दना साधु चरित कहा गया है। यथा-'साधु चरित शुभ सरिस कपासू। निरस विषद गुण मय फल जासू ॥ जो सहि दुःख परछिद्र दुरावा। वन्दनीय जेहि जग यश पावा' ॥ इत्यादि पुनः अयोध्याकाण्ड में श्रीवाल्मीक द्वारा सन्तों का हृदय चौदह स्थान बताया गया।

यथा–'संत हृदय जस निर्मल वारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह इन चारों घाटों को बाँधकर विशुद्ध किए हैं अर्थात् काम क्रोधादि रहित हैं। जिन चौदह स्थानों में श्रीसीताराम जी का निवास बताया गया है। तथा–'तिनके हृदय कमल महँ करौं सदा विश्राम' इत्यादि पुनः अरण्यकाण्ड में श्रीलक्ष्मण के प्रति कहा गया है। यथा–'श्रवणादिक नौ भक्ति दृढ़ाई। मम लीला रति मति अधिकाई॥ सन्त चरण पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा'॥ इत्यादि पुनः आरण्यकाण्ड में ही शबरी के प्रति नौधा भक्ति कही गई। यथा–'प्रथम भक्ति संतन कर संगा' इत्यादि पुनः वही श्रीनारद के प्रति सन्तों के गुण कहे गए हैं। यथा–'सुनु मुनि संतन के गुण कहऊँ' तथा–'षट विकार जित अनघ अकामा' इत्यादि कहे गए हैं पुनः किष्किन्धाकाण्ड में श्रीलक्ष्मण प्रति यथा–'बूँद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के वचन सन्त सहैं जैसे' इत्यादि पुनः सुन्दरकाण्ड में विभीषण प्रति, यथा–'तजि मद मोह कपट छल नाना। सद्य करौं तेहि साधु समाना' इत्यादि शरणागति का लक्षण कहा गया है। पुनः लंका में विभीषण प्रति। यथा–'महा घोर संसार रिपु जीति सकै सो वीर' इत्यादि अर्थात् काम क्रोधादि पर जो विजय किया है वही वीर वा साधु है। यथा–'मोह दशमौलि अहंकार तद्भ्रात' इन पर विजय करना है। तथा बालकाण्ड, यथा–'सेवक सुमिरत नाम सुप्रीती। विनुश्रम प्रवल मोह दल जीती' इत्यादि साधु का पुरुषार्थ कहा गया है।

पुनः उत्तरकाण्ड भरत प्रति, यथा–'सन्त असन्तन की अस करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी'॥ इत्यादि साधु लक्षण कहा

गया है। पुनः उत्तरकाण्ड में ही गरुड़ प्रति, यथा- '*गुरु बिनु होहि कि ज्ञान ज्ञान की होहिं विराग बिनु*' इत्यादि साधु का कल्याण मार्ग कहा गया और तो सब उत्तरकाण्ड में साधु का ही गुण ज्ञान वैराग्य और भक्ति का निरूपण किया गया है इत्यादि इत्यादि साधु को अपने गुण तथा लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए जो हमारे में कमी है उसका प्रयास करना चाहिए। यथा–'*सिमिटि सिमिटि जल भरै तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा॥ रस रस शोष सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी*'॥ धीरे धीरे अपने कल्याण का मार्ग बनाते चले। यथा–'*शनैः पंथा शनैः कन्था शनैः पर्वत लंघनम्*'। धीरे धीरे सब कुछ हो जाता है। '*जब बहुकाल करिय सतसंगा तब यह होइ मोह भ्रम भंगा*' तथा–'*अनेक जन्म संसिद्धिस्ततोयांति परां गतिम्*' यह जल्दी बाजी उतावला काम नहीं हैं। अपने पूर्वाचार्यों तथा रामायण गीता श्रीमद्भागवत के उपदेशों पर ध्यान रखिए और अपने आचरण व्यवहार से कभी भी वंचित न होइए। संगति का दोष हम सबों को बहुत ज्यादा हो गया है संसारिक विषयी लोगों की संगत हमें ज्यादा हो गई। *संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति*' संग का दोष तो होता ही है इसमें और कहना ही क्या है तथापि '*विधिवश सुजन कुसंगति परहीं। मणिफणि सम निज गुण अनुसरहीं*'॥ परन्तु इसमें बुद्धि की आवश्यता है। यथा–'*सत असत विवेकिनी बुद्धि*' तथा–'*होइ बुद्धि जौ परम सयानी। तिन तन चितव न अनहित जानी*'॥ परन्तु सयानी बुद्धि तब होगी जब शुद्ध आहार होगा। यथा-'*आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि*' आहार के ही

सत्व से बुद्धि बनती है यदि हम शुद्ध आहार करेंगे तो बुद्धि सत्य विचार शीला होगी।

इसलिए रसनेन्द्रिय पर थोड़ा दबाव रखना होगा, तभी सात्विकी आहार होगा भगवान् श्रीराम जी बन गए हैं तब ऋषि मुनि महात्मन को शिक्षा देने ही के लिए। यथा–'*मुनि व्रत वेष आहार*' तथा–'*भूमि शयन वल्कल वसन अशन कन्द फल मूल। ते कि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल*'॥ हम सबका भूमि पर शयन, वल्कल का वस्त्र कौपीन इत्यादि आज दिन भी देखा जाता है कितने संत केला की कौपीन पहने हैं, '*कौपीनवन्तौ स खलु भाग्यवन्तौ*' हम सबका यथार्थ में कौपीन ही मात्र वस्त्र है। और भोजन कन्दमूल फल का ही है (और चावल दाल आटा तो संसारिक लोग खाते हैं) फल कन्दमूल भी सामयिक अर्थात् आम्र के समय आम्र ककरी, खीरा, खरबूज के समय ककरी खीरा आमरूत के समय आमरूत इत्यादि सात्विकी फल हैं। नासपत्ती, सेव, अंगूर वेदाना, अनार संतरा, इत्यादि राजसी फल हैं इसमें अन्न से दशगुणा वीर्य शक्ति अधिक है और बदाम, पोस्ता, अखरोट, छोहारा, किसमिस, मुनक्का इत्यादि तेलहन तामसी फल हैं, इसमें अन्न से सौ गुणा वीर्य वर्द्धक है और हमको ब्रह्मचारी बनना है, यदि वीर्यवर्द्धक वस्तु हम सेवन करेंगे, तो ब्रह्मचर्य रक्षा नहीं हो सकता है। इसीलिए सन्तों का भोजन बताया गया है। '*स्वल्पाहारी, अल्पाहारी मिताहारी, एकाहारी, फलाहारी, पयाहारी, पत्राहारी, जलाहारी, वऔर वायुअहारी*' यथा–'*कछु दिन भोजन वारि बतासा*' तथा '*बेलपत्र महि परे सुखाई। तीनि सहस्र संवत सो खाई*'

जल वायु और पत्ता, तथा-*करहिं अहार शाक फल कन्दा'* और *'कन्द मूल फल अशन इक निशि भोजन एक लोग* तथा-*'एकाहारी भूमिशायी जितक्रोधो जितेन्द्रिय'* इत्यादि साधकों की नियम है। उसी में मैं भी अपने को एक साधक मानता हूँ ऐसा सोचकर मैं सुगम से सुगम कौनसा नियम लूँ इस पर हमेसा ध्यान देना चाहिए।

श्रीवाल्मीक जी के बताए हुए चौदह स्थानों में से सुगम से सुगम एक निश्चय अपनाना चाहिए तभी हृदय में श्रीसीताराम जी का निवास होगा, यथार्थ में, *'तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना॥ जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप शायक कटिभाथा'* इसका प्रयास अवश्य करना चाहिए। जब तक भगवान श्रीराम जी का हृदय में निवास नहीं होगा तब तक जीव के हृदय में काम क्रोधादि नाना खलों का ही निवास रहेगा।

भैय्या पूज्य संत साधकजनो, आप सब तो पढ़े लिखे हैं अपने पूर्वाचार्यों का आचरण व्यवहार तथा रामायण गीता के उपदेशों पर ध्यान रखना चाहिए और तद्रूप कर्तव्य करना चाहिए। यथा- *'ज्ञान कथै सो पुत्र हमारा,कथनी कथै सो नाती। रहनी रहै सो गुरु हमारा हम रहनी के साथी॥'* सन्तों की रहन सहन एक बहुत बड़ी वस्तु है रहन सहन संतों का आचरण सर्वदा अभ्यास करना चाहिए और अपना वरणाश्रम की जाति गोत्र चाल चलन सब भूल जाना चाहिए और हम अच्युत गोत्र शुक्ल वरण (कल्मस रहित विशुद्ध) भगवान श्रीराम जी का स्वजातीय सूर्यवंश हैं और सदा का सेवक हैं। यथा-

'*हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी॥*' तभी न हमारा अच्युत गोत्र सिद्ध होगा और तभी श्रीरामदास, जानकीदास नाम की सफलता होगी तभी हमारा सेवकपना यथार्थ होगा श्रीरामाय मंत्रार्थ होगा, अर्थात् मैं श्रीराम जी के लिए हूँ और जैसा भी हूँ श्रीराम जी का ही हूँ। तब, '*अन्त राम कहि आवत नाहीं*' अन्त अर्थात् मृत्युकाल में श्रीराम कहकर प्राण त्यागेंगे फिर मर्त्यलोक में आना नहीं होगा। अतः जन्म मरण से मुक्त हो जायँगे। इसे हमेशा पढ़ो समझो और करो।

अथ श्रीराम नाम संकीर्तन

भैय्या बालक मित्र गणो, मैं तो कृत कृत्य हूँ, "करहु जाइ जाकहँ जो भावा। हम तौ आजु जन्म फल पावा" तथा-"जन्म हमार सफल भा आजू" एवं "तन पुलक निर्भर प्रेम पूरण नयन मुख पंकज दिए। मन ज्ञान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए"॥ तथा-"जपौं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना"॥ श्रीहनुमान जी भी तो अपने जन्म की साफल्यता के लिए श्रीराम नाम का ही भगवान श्रीरामजीसे वरदान माँगा है, यथा अ० रा० लंकाकान्डे सर्ग १६।

श्लो०-रामोऽपि मारुतिं दृष्ट्वा कृतांजलि मुपस्थितः।
भक्त्यापरमयातुष्ट इदं वचन मब्रवीत ॥१०॥
हनुमंस्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय काँक्षितम्।
दास्यामि देवैरपि यद्दुर्लभं भुवनत्रये ॥११॥
हनुमानपि तंप्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः।
त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यतिमनोमम ॥१२॥
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले।
यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम् ॥१३॥
ममतिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयंमेऽभि काँक्षितम्।
रामस्तथेति तंप्राह मुक्ततिष्ठ यथा सुखम् ॥१४॥

श्रीराम जी एवमस्तु कहते हुए बोले हे श्रीहनुमान् जी तुम हमारा श्रीराम नाम जपते हुए संसार में जीवित रहो।

भैय्या बालक वृन्द, मैं भी श्रीराम नाम जाप करते हुए अपना काल ज्ञापन करूँगा। यथा-

श्लो०-अच्युतं केशवं राम नारायणं,
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिका वल्लभं,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे॥

रामचन्द्रं भजे हृदय चन्द्रं भजे,
प्राण प्यारा भजे, गोदी का दुलारे भजे,
गुरु का प्यारा भजे,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे॥

सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम,
सीताराम सीताराम सीताराम सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे॥

श्लो०-कोशलेन्द्र पद कंज मंजुलौ,
कोमलावज महेश वन्दितौ।

जानकी कर सरोज लालितौ,

चिन्तकस्य मन भृंग संगिनौ ॥

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो०—यः पृथ्वी भरवारणाय दिविजैः

संप्रार्थितश्चिन्मयः ।

संजातः पृथिवीतले रविकुले

मायामनुष्योऽव्ययः ।

निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद्

ब्रह्मत्व माद्यं स्थिरां।

कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां

तं जानकीशं भजे ॥

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

चौ०—सोइ नर गाइ गाइ भव तरहीं रामचन्द्रं भजे०

कृपासिन्धु जनहित तनु धरहीं ,,

सो केवल भक्तन हित लागी ,,

परम कृपालु प्रणत अनुरागी ,,

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं ,,

संतत सुनिय राम गुण ग्रामहिं ,,

रामहिं भजहिं तात शिवधाता ,,

नर पामर कर केतिक बाता ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो०-यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं, ब्रह्मादिदेवा सुरा ।
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौयथाहेर्भ्रमः ।
यत्पादप्लव मेक मेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां,
वन्देऽहं तम शेषकारणपरं रामाख्य मीशं हरिम् ।
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

जासु सत्यता ते जड़ माया जानकी नायकं
भाष सत्य इव मोह सहाया ,,
झूठौ सत्य जाहि बिनु जाने ,,
जिमि भुजंग बिन रजु पहिचाने ,,
जेहि जाने जग जाइ हेराई ,,
जागे यथा स्वप्न भ्रम जाई ,,
यहि जग यामिनि जागहिं योगी ,,
विरति विरंचि प्रपंच वियोगी ,,
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा ,,
अकथ अनामय नाम न रूपा ,,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो०-दूर्वादल द्युति तनु तरुणाब्ज नेत्रं,
हेमाम्बरं वर विभूषण भूषितांगम् ।

कन्दर्प कोटि कमनीय किशोर मूर्ति,

पूर्ण मनोरथ भव भजु जानकी ॥

सीताराम, सीताराम, सीताराम सीताराम.

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

जाकर नाम लेत शुभ होई रामचन्द्रं भजे०

मोरे गृह आवा प्रभु सोई "

इष्टदेव मम बालक रामा "

शोभा वपुष कोटिशत कामा "

शिव अज पूज्य चरण रघुराई "

मोपर कृपा परम मृदुलाई "

अस स्वभाव कहुँ सुनौं न देखौं "

केहि खगेश रघुपति सम लेखौं "

अति कोमल रघुवीर स्वभाऊ "

यद्यपि अखिल लोक कर राऊ "

सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा "

सेवत जाहि महा मुनि धीरा "

बन्दौं बालरूप सोइ रामू "

सबविधि सुलभ जपत जेहि नामू "

मंगल भवन अमंगल हारी रामचन्द्रं भजे०
उमा सहित जेहि जप त्रिपुरारी ,,
मंगल भवन अमंगल हारी ,,
द्रवौ सो दशरथ अजिर बिहारी ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

जासु नाम बल शंकर काशी रामचन्द्रं भजे०
देत सबहिं सम गति अविनाशी ,,
महामंत्र जेहि जपत महेशू ,,
काशी मुक्ति हेतु उपदेशू ,,
काशी मरत जन्तु अवलोकी ,,
जासु नाम बल करौं विशोकी ,,
जासु नाम सुमिरत इक बारा ,,
उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा ,,
बारेक नाम लेत नर जेऊ ,,
होत तरण तारण सम तेऊ ,,
पापिउ जाकर सुमिरन करहीं ,,
अति अपार भव सागर तरहीं ,,

विवसहु जासु नाम नर कहहीं रामचन्द्रं भजे०
जन्म अनेक संचित अघ दहहीं ,,
मरतहु जासु नाम मुख आवा ,,
अधमौ मुक्त होइ श्रुतिगावा ,,
राम राम कहि जे जमुहाहीं ,,
तिनहिं न पाप पुंज समुहाहीं ,,
साधक नाम जपहिं लवलाए ,,
होहिं सिद्ध अणिमादिक पाए ,,
जाना चहिं गूढ़ गति जेऊ ,,
नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे

जान आदि कवि नाम प्रतापू रामचन्द्रं भजे०
भयउ सिद्ध करि उलटा जापू ,,
उलटा नाम जपत जग जाना ,,
वाल्मीक भये ब्रह्म समाना ,,
नाम प्रताप शंभु अविनाशी ,,
साज अमंगल मंगल राशी ,,

नाम प्रभाव जान शिव नीके रामचन्द्रं भजे०
कालकूट फल दीन अमीके ,,
नाम प्रताप जान गण राऊ ,,
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ,,
नारद जानेउ नाम प्रतापू ,,
जग प्रिय हरिहर हरि प्रिय आपू ,,
ध्रुव सगलानि जपेउ हरिनामू ,,
पायउ अचल अनूपम ठामू ,,
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू ,,
भक्त शिरोमणि भये प्रहलादू ,,
सुमिरि पवन सुत पावन नामू ,,
अपने वश करि राखेउ रामू ,,
अपत अजामिल गज गणिकाऊ ,,
भए मुक्त हरि नाम प्रभाऊ ,,
करौं कहाँलगि नाम बड़ाई ,,
राम न सकहिं नाम गुणगाई ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो०—सुखप्रदं रामपदं मनोहरं,
युगाद्वरं भीतिहरं शिवाकरं।
यशस्करं धर्मकरं गुणाकरं,
वचोवरं मे हृदयेस्तु सादरम् ॥
सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे० ॥

ईश्वर अंस जीव अविनाशी रामचन्द्रभजे०
चेतन अमल सहज सुख राशी "
सो मायावश भयउ गोसाईं "
बँधेउ कीर मर्कट की नाईं "
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई "
यदपि मृषा छूटत कठिनई "
जीव हृदय तम मोह विशेषी "
ग्रंथि छूट किमि परै न देखी "
मोह सकल व्याधिन कर मूला "
तेहिते पुनि उपजैं बहु शूला "
काम बात कफ लोभ अपारा "
क्रोधपित्त नित छाती जारा "

प्रीति करहिं जौं तीनौ भाई   रामचन्द्रं भजे०
उपजै सन्निपात दुखदाई   ,,
विषय मनोरथ दुर्गम नाना   ,,
ते सब शूल नाम को जाना   ,,
दो०-एक व्याधिबस नर मरहिं   ,,
ए असाध्य बहुव्याधि मोरे रामा   ,,
संतत पीड़हिं जीव कहँ   ,,
ते किमि लहहिं समाधि मोरे रामा   ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो० इदं शरीरं शत संधि जर्जरं,
पतत्यवश्यं परिणाम दुर्वहम् ।
किमौषधं पृच्छसि मूढ़ दुमते,
निरामयं राम रसायनं पिब ॥

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे० ॥

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई   रामचन्द्रं भजे०
जौं हरि कृपा हृदय बश आई   ,,

सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा रामचन्द्रं भजे०
संजम यह न विषय की आसा ,,
रघुपति भक्ति सजीवनि मूरी ,,
अनोपान श्रद्धा मति पूरी ,,
यहि विधि भलेहिं कुरोग नशाहीं ,,
नाहित कोटि यतन नहिं जाहीं ,,
जानिय तब मन निरुज गोसाईं ,,
जब उर बल विराग अधिकाई ,,
सुमति छुधा बाढ़ै नित नई ,,
विषय आस दुर्बलता गई ,,
विमल ज्ञान जल पाइ नहाई ,,
तब रह राम भक्ति उर छाई ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे० ॥

श्लो०—ब्रह्माम्भोधि समुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं चाव्ययं,
श्रीमच्छम्भुमुखेन्दु सुन्दर वरे संशोभितं सर्वदा ।
संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं,
धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम् ॥

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई रामचन्द्रं भजे०
हारहिं सकल सलभ समुदाई ,,
खल कामादि निकट नहिं जाहीं ,,
बसइ भक्ति जाके उर माहीं ,,
गरल सुधासम अरिहित होई ,,
तेहि मणि बिनु सुख पाव न कोई ,,
व्यापहिं मानस रोग न भागी ,,
जिनके वश सब जीव दुखारा ,,
राम भक्ति मणि उरबश जाके ,,
दुःख लवलेश न सपनेहु ताके ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,
जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

यद्यपि प्रभु के नाम अनेका रामचन्द्रं भजे०
श्रुति कह अधिक एकते एका ,,
राम सकल नामन ते अधिका ,,
होउ नाथ अघ खगगण बधिका ,,

राका रजनी भक्ति तव रामचन्द्रं भजे०

रामनाम सोइ सोम, मोरे रामा ,,

अपर नाम उड़गन विमल ,,

बसहु भक्त उर व्योम, मोरेरामा ,,

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,

रामराम, रामराम, रामराम, रामराम,

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो०—पेयं पेयं श्रवण पुटके राम नामाभिरामं,

ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम् ।

जल्प्यं जल्प्यं प्रकृति विकृतौ प्राणिनां कर्णमूले,

वीथ्यां वीथ्यां अटति जटिलः कोऽपि काशी निवासी ॥

रामराम, रामराम, रामराम, राम,

रामराम, रामराम, रामराम, राम,

रामराम, रामराम, रामराम, जपत ।

रामराम, रामराम, रामराम, जपत ॥

मंगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत ।

रामराम, रामराम० ॥

कहु के लहे फल रसाल बबुर बीज बपत ।
हारहि जनि जनम जात गाल गूल गपत ॥
रामराम, रामराम० ॥१॥

काल कर्मगुणस्वभाव सबके शीश तपत ।
राम नाम महिमा की चर्चा चले चपत ॥
रामराम, रामराम० ॥२॥

साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत ।
कलियुग वर वणिज विपुल नाम नगर खपत ॥
रामराम, रामराम० ॥३॥

नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किये रावण रिपु तुलसीहू से अपत ॥
रामराम, रामराम, रामराम, जपत ॥४॥

रामराम, रामराम, रामराम, राम,
रामराम, रामराम, रामराम, राम,
रामराम, रामराम, रामराम, राम,
रामराम, रामराम, रामराम, राम,
जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥

श्लो० - अच्युतं केशवं राम नारायणं,
कृष्ण दामोदरं वासुदेवं हरिम् ।

श्रीधरं माधवं गोपिका वल्लभं,

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

सीताराम, सीताराम, सीताराम, सीताराम,

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

रामराम, रामराम, रामराम, रामराम,

रामराम, रामराम, रामराम, रामराम,

जानकी नायकं रामचन्द्रं भजे ॥

केवल नामेव नामेव नामेव जप सर्वदा ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।

भर्जनं भवबीजानां अर्जनं सुख संपदाम् ।

तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥

रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं ।

संतत सुनिय रामगुण ग्रामहिं ॥

दो०-कृत युग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु योग ।

जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥

एवं—नहिं कलि कर्म न भगति विवेकू,

राम नाम अवलम्बन एकू ॥

अतः—रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं,
संतत सुनिय राम गुण ग्रामहिं ।।

राम बोल मोरी रसना घड़ी घड़ी ।।
वृथा बिताती है क्यों जीवन मुख मन्दिर में पड़ी पड़ी ।
अहर्निशा श्रीराम नाम जपु श्वाँस श्वाँस से लड़ी लड़ी ।।
उठ बैठेंगी तेरी धुन पर इस काया की कड़ी कड़ी ।
वर्षा दे प्रभु नाम सुधारस आँसु धार से झड़ी झड़ी ।।
राम बोल मोरी रसना घड़ी घड़ी ।।

✻ समाप्त ✻

अवतार-प्रयोजन

भैय्या बालक वृन्द, तथा पाठक महानुभाव, यथार्थ. में मर्त्यलोक में श्रीरामावतार होने का कारण सुनिए, लंका का राक्षसराज रावण किसी समय श्रीसनतकुमार को एकाएक गुरु मानकर अपने कल्याण का मार्ग अर्थात् मुक्ति मार्ग पूछा। यथा-अ० रा० उ० कान्डे सर्ग ३ श्लो० ३०।

सनत्कुमारमेकान्ते समासीनं दशाननः।
विनयावनतो भूत्वा ह्यभिवाद्येदमब्रवीत् ॥३०॥
को न्वस्मिन्प्रवरो लोके देवानां बलवत्तरः।
देवाश्च यं समाश्रित्य युद्धे शत्रुं जयन्ति हि ॥३१॥
कं यजन्ति द्विजा नित्यं कं ध्यायन्ति च योगिनः।
एतन्मे शंस भगवन् प्रश्नं प्रश्नविदांवर ॥३२॥
ज्ञात्वा तस्य हृदिस्थं यत्तदशेषेण योगदृक्।
दशाननमुवाचेदं श्रृणु वक्ष्यामि पुत्रक ॥३३।
भर्ता यो जगतां नित्यं यस्य जन्मादिकं न हि।
सुरासुरैर्नुतो नित्यं हरिर्नारायणोऽव्ययः ॥३४॥
यन्नाभिपङ्कजाज्जातो ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः।
सृष्टं येनैव सकलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥३५॥
तं समाश्रित्य विबुधा जयन्ति समरे रिपून्।
योगिनो ध्यानयोगेन तमेवानुजपन्ति हि ॥३६॥

महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच दशाननः ।
दैत्यदानवरक्षांसि विष्णुना निहतानि च ॥३७॥
कां वा गतिं प्रपद्यन्ते प्रेत्य ते मुनिपुङ्गव ।
तमुवाच मुनिश्रेष्ठो रावणं राक्षसाधिपम् ॥३८॥
दैवतैर्निहता नित्यं गत्वा स्वर्गमनुत्तमम् ।
भोगक्षये पुनस्तस्माद् भ्रष्टा भूमौ भवन्ति ते ॥३९॥
पूर्वार्जितैः पुण्यपापैर्म्रियन्ते चोद्भवन्ति च ।
विष्णुना ये हतास्ते तु प्राप्नुवन्ति हरेर्गतिम् ॥४०॥
श्रुत्वा मुनिमुखात्सर्वं रावणो हृष्टमानसः ।
योत्स्येऽहं हरिणा सार्धमिति चिन्तापरोऽभवत् ॥४१॥
मनःस्थितं परिज्ञाय रावणस्य महामुनिः ।
उवाच वत्स तेऽभीष्टं भविष्यति न संशयः ॥४२॥
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व सुखी भव दशानन ।
एवमुक्त्वा महाबाहो मुनिः पुनरुवाच तम् ॥४३॥
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि ह्यरूपस्यापि मायिनः ।
स्थावरेषु च सर्वेषु नदेषु च नदीषु च ॥४४॥
ओङ्कारश्चैव सत्यं च सावित्री पृथिवी च सः ।
समस्तजगदाधारः शेषरूपधरो हि सः ॥४५॥

सर्वे देवाः समुद्राश्च कालः सूर्यश्च चन्द्रमाः ।
सूर्योदयो दिवारात्री यमश्चैव तथानिलः ॥४६॥
अग्निरिन्द्रस्तथा मृत्युः पर्जन्यो वसवस्तथा ।
ब्रह्मा रुद्रादयश्चैव ये चान्ये देवदानवाः ॥४७॥
विद्योतते ज्वलत्येष पाति चात्तीति विश्वकृत् ।
क्रीडां करोत्यव्ययात्मा सोऽयं विष्णुः सनातनः ॥४८॥
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
नीलोत्पलदलश्यामो विद्युद्वर्णाम्बरावृतः ॥४६॥
शुद्धजाम्बूनदप्रख्यां श्रियं वामाङ्कसंस्थिताम् ।
सदानपायिनीं देवीं पश्यन्नालिङ्ग्य तिष्ठति ॥५०॥
द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगैः ।
यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमर्हति ॥५१॥
न च यज्ञतपोभिर्वा न दानाध्ययनादिभिः ।
शक्यते भगवान्द्रष्टुमुपायैरितरैरपि ॥५२॥
तद्भक्तैस्तद्गतप्राणैस्तच्चित्तैर्धूतकल्मषैः ।
शक्यते भगवान्विष्णुर्वेदान्तामलदृष्टिभिः ॥५३॥
अथवा द्रष्टुमिच्छा ते शृणु त्वं परमेश्वरम् ।
त्रेतायुगे स देवेशो भविता नृपविग्रहः ॥५४॥

हितार्थं देवमर्त्यानामिक्ष्वाकूणां कुले हरिः ।
रामो दाशरथिर्भूत्वा महासत्त्वपराक्रमः ॥५५॥
पितुर्नियोगात्स भ्रात्रा भार्यया दण्डके वने ।
विचरिष्यति धर्मात्मा जगन्मात्रा स्वमायया ॥५६॥
एवं ते सर्वमाख्यातं मया रावण विस्तरात् ।
भजस्व भक्तिभावेन सदा रामं श्रिया युतम् ॥५७॥

अगस्त्योवाच

एवं श्रुत्वासुराध्यक्षो ध्यात्वा किञ्चिद्विचार्य च ।
त्वया सह विरोधेप्सुर्मुमुदे रावणो महान् ॥५८॥
युद्धार्थी सर्वतो लोकान् पर्यटन् समवस्थितः ।
एतदर्थं महाराज रावणोऽतीव बुद्धिमान् ।
हृतवान् जानकीं देवीं त्वयात्मवधकाङ्क्षया ॥५९॥

आरंभ श्लो० ५६ पर्यन्त प्रश्नोत्तर हुए निश्चय किया । यथा-'*प्रभु सर प्राण तजे भव तरऊँ*' अर्थात् प्रभु श्रीराम जी के बाण से ही मेरी मृत्यु होगी और तभी मैं मुक्त होऊँगा । तथा-'*भजन होइ नहि तामसदेहा । मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ एहा*' ॥ निश्चय कर लिया, यथा अ० रा० लंका कान्डे सर्ग १० श्लो० ५६ ।

रामेण सह योत्स्यामि रामबाणैः सुशीघ्रगैः ॥५६॥
विदार्यमाणो यास्यामि तद्विष्णोः परमं पदम् ।

जानामि राघवं विष्णुं लक्ष्मीं जानामि जानकीम् ।
ज्ञात्वैव जानकी सीता मयानीता वनाद्बलात् ॥५७॥
रामेण निधनं प्राप्य यास्यामीति परं पदम् ।
विमुच्य त्वां तु संसाराद्गमिष्यामि सह प्रिये ॥५८॥
परानन्दमयी शुद्धा सेव्यते या मुमुक्षुभिः ।
तां गतिं तु गमिष्यामि हतो रामेण संयुगे ॥५९॥
प्रक्षाल्य कल्मषाणीह मुक्तिं यास्यामि दुर्लभाम् ॥६०॥
क्लेशादिपञ्चकतरङ्गयुतं भ्रमाढ्यं
दारात्मजाप्तधनबन्धुझषाभियुक्तम् ।
और्वानलाभनिजरोषमनङ्गजालं
संसारसागरमतीत्य हरिं व्रजामि ॥६१॥

पुनः अ० रा० सु० कान्डे सर्ग २ श्लो० १५ में कहा गाता है ।

रावणो राघवेणाशु मरणं मे कथं भवेत् ।
सीतार्थमपि नायाति रामः किं कारणं भवेत् ॥१५॥
इत्येवं चिन्तयन्नित्यं राममेव सदा हृदि ।
तस्मिन्दिनेऽपररात्रौ रावणो राक्षसाधिपः ॥१६॥
स्वप्ने रामेण सन्दिष्टः कश्चिदागत्य वानरः ।
कामरूपधरः सूक्ष्मो वृक्षाग्रस्थोऽनुपश्यति ॥१७॥

इति दृष्ट्वाद्भुतं स्वप्नं स्वात्मन्येवानुचिन्त्य सः।
स्वप्नः कदाचित्सत्यः स्यादेवं तत्र करोम्यहम्॥१८॥
जानकीं वाक्शरैर्विद्ध्वा दुःखितां नितरामहम्।
करोमि दृष्ट्वा रामाय निवेदयतु वानरः॥१९॥
इत्येवं चिन्तयन्सीतासमीपमगमद्द्रुतम्।

श्रीसीता जी के पास आकर दुर्वाक्य कहा रावण का यथार्थ उद्देश्य है श्रीराम जी कैसाहु आकर मुझे मारैं और मैं शीघ्र मुक्ति पाऊँ। श्रीजानकी हरण के पहले मारीच के समझाने पर भी यही कहा है। यथा अ० रा० अरण्यकान्डे सर्ग ६।

श्रुत्वा मारीचवचनं रावणः प्रत्यभाषत॥२९॥
परमात्मा यदा रामः प्रार्थितो ब्रह्मणा किल।
मां हन्तुं मानुषो भूत्वा यत्नादिह समागतः॥३०॥
करिष्यत्यचिरादेव सत्यसङ्कल्प ईश्वरः।
अतोऽहं यत्नतः सीतामानेष्याम्येव राघवात्॥३१॥
वधे प्राप्ते रणे वीर प्राप्स्यामि परमं पदम्।

श्रीराम जी सत्य संकल्प हैं मुझे निश्चय मारेंगे तो मैं परम पद पाऊँगा तब हानि क्या है यही तो मैं उपाय कर रहा हूँ। यथार्थ में रावण का श्रीजानकी जी में मातृ भाव था यथा अ० रा० अर० कान्डे सर्ग ७ श्लो० ६५।

स्वान्तः पुरे रहस्येतामशोकविपिनेऽक्षिपत् ।
राक्षसीभिः परिवृतां मातृबुद्ध्यान्वपालयत् ॥६५॥

'मन महँ चरण वन्दि सुखमाना' विचार किया कि श्रीसीता जी पतिव्रत परायणा हैं तो इनके पतिदेव वानप्रस्थ हैं यदि श्रीसीता जी को महल में रखता हूँ तो अधर्म होगा इसलिए अशोकवाटिका बन में ही रक्खा परन्तु रावण की अपनी मुक्ति की ही प्रधान कामना थी परन्तु आसुरी बुद्धि के अनुसार ही संकल्प किया था। यथा-*'प्रभु सर प्राण तजे भव तरऊँ'* इसलिए श्रीरामावतार केवण रावण को मुक्ति देने को ही हुआ था। यथा अ० रा० बाल काडे सर्ग २।

राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पितः ॥२३॥
त्रिलोकीं लोकपालाँश्च बाधते विश्वबाधकः।
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कल्पिता।
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो ॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥२७॥
योगमायापि सीतेति जनकस्य गृहे तदा।
उत्पत्स्यते तया सार्धं सर्वं सम्पादयाम्यहम् ॥२८॥

अर्थात् मैं अवतीर्ण होकर रावण का विनाश करूँगा अ० रा० बा० कान्डे सर्ग २।

अहं तु ब्रह्मणापूर्वं भूमेर्भारापनुत्तये।
प्रार्थितोरावणं हन्तुं मानुषत्व मुपागत ३१॥

इसीलिए मैं मनुष्य होकर अवतीर्ण हुआ हूँ। अतः अ० रा० अयोध्या कान्डे सर्ग १-३०।

उवाच वचनं राम ब्रह्मणानोदितोऽस्म्यहम्।
रावणस्य वधार्थाय जातोसिरघुसत्तम॥

हे श्रीराम जी आप रावण को मारने को अवतार लिए हैं। पुनः वसिष्ट उवाच सर्ग २।

रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव॥ २४॥
तथापि देव कार्यार्थं गुह्यं नोद्घाटयाम्यहम्॥ २५॥

अयोध्या कान्डे सर्ग १ श्रीराम वाक्यं नारद प्रति।

रावणस्य विनाशार्थं सोगन्ता दन्डकाननम्।
चतुर्दश समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक्॥ ३८।
सीतामिषेण तंदुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम्॥

स्वयं प्रतिज्ञा है। इत्यादि इत्यादि रावण को मारने को ही श्रीराम जी के अवतार की प्रधानता है और '*विप्र धेनुसुर संत हित राम लीन्ह अवतार*' अतः रावण के मरने से ही इन सबका हित होगा। पुनः '*तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहि आन निहोरे*' यह तो

निहोरा मात्र है, अतः रावण को मारकर सकुल मुक्ति देना साथही सभी का कार्य सिद्ध होगा। यही है यथार्थ मानस का मर्म, सो सब आप सबों के प्रति कहा गया, इसको आप सब बार बार पढ़ें समझें और करें। यथा-*'निर्वाण दायक क्रोध जाकर भक्ति अवसहिं वश करी'* तथा-*'अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा'* अतः *'राम भजेहित होय तुम्हारा'* भैय्या, हम सबों का कल्याण श्रीराम भजन से ही होगा।

भैय्या बालक वृन्द तथा पाठक महानुभाव सिद्धान्त तिलक के आधार पर रावण, कुम्भकरण भगवान् श्रीराम जी के श्रीसाकेत लोक के एकान्तिक बलवीर्य और भानु इत्यादि प्रधान सखा थे उनसे युद्ध क्रीड़ा करने की इच्छा से रूपान्तर करके भानुप्रताप तथा अरिमर्दन नाम से अवतीर्ण हुए पुनः ब्राह्मणों का शाप करवाकर शत्रुभाव वाले राक्षस कराये पुनः आप नारद का शाप स्वीकार करके मानव श्रीराम लीला करने के लिए। यथा-

आदौ राम तपोवनादि गमनं हत्वामृगा कांचनम्।
वैदेही हरणं जटायु मरणं सुग्रीव सम्भाषणम्॥
बाली प्रग्रहणं समुद्र तरणं लंकापुरी दाहनम्।
पश्चाद्रावण कुम्भकर्ण हननं मेतद्धि रामायणम्॥

इतना ही रामायण है, पुनः अपनी युद्ध लीला समाप्त करके रावण कुम्भकरण को अपने मुखारविन्द में समावेश किए और बाकी को तथा-*'राम राम कहि तनु तजहिं पावहि पद निर्वान'* एवं *'रामाकार भए तिनके मन। भए मुक्त छूटे भव बन्धन'* सबको पुनः अपने साकेतलोक

को भेज दिए और महत्व देखाए, यथा-'*मरतहु जासु नाम मुख आवा। अधमउ मुक्त होइ श्रुति गावा*' तथा-'*यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानै कोय*' इसी को श्रीतुलसीदास जी ने यथा-'*गुप्तरूप अवतरेउ प्रभु, एवं यह सब गुप्त चरित मैं गावा*' इत्यादि श्रीराम जी की गुप्त लीला है, यही है श्रीरामचरित मानस का मर्म सो सब यथामति आप सबके प्रति कहा गया। तथा-'*सोइ नर गाइ गाइ भव तरहीं*' अथवा '*मन कामना सिद्धि नर पावा। जो यह कथा कपट तजि गावा*'॥ इत्यादि श्रीराम चरित की महिमा है अब आप सब अच्छे से समझ लिए होंगे, अतः इसे बार बार पढ़ैं समझैं और करैं। तथा-'*श्रोता वक्ता ज्ञान निधि कथा राम की गूढ़। किमि समुझै यह जीव जड़ कलिमल ग्रसित विमूढ़॥ तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा*'॥ अतः बार बार पढ़ने से समझ में आ जायगी, इसलिए बार बार पढ़िए समझिए और करिए। तथा-'*राम भजे हित होय तुम्हारा*'।

भैय्या बालक वृन्द, तथा पाठक महानुभाव, इत्यादि नाना दृष्टान्त दार्ष्टान्त भजन कथा कीर्तन द्वारा श्रीरामचरित मानस रामायण का हृदय मर्म आप सबों को समझाया तथा बताया गया है यथा-'*यहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा*'॥ तथा-"*श्लो०-ब्रह्माम्भोधिसमुद्भवं कलिमल प्रध्वंसनं चाव्ययम्, श्रीमच्छम्भुमुखेन्दु सुन्दर वरे संशोभितं सर्वदा। संसारामय भेषजं सुखकरं श्रीजानकी जीवनं, धन्यास्ते कृतिनः पिबन्ति सततं श्रीरामनामामृतम*'॥ एवं "*सुखप्रदं राम पदं मनोहरं युगान्तरं भीति हरं शिवाकरम्। यशस्करं धर्मकरं गुणाकरं वचोवरं मे हृदयेस्तु सादरम्*"॥ केवल हृदय से आदर पूवक

वाणी द्वारा श्रीराम ऐसा दो अक्षर कह दीजिए। फिर तो वह आपको सर्व सुख देते हुए चंचल मन को खींचकर वह आपको सर्व सुख देते हुए श्रीराम जी के चरण कमल में पहुँचा देगा और प्राणी मात्र से अभय सर्व कल्याण सर्व सुयश, सर्व धर्म और सर्व गुण प्रदान कर देगा। यथा-'*राम नाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै। तुलसीदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै*' ॥ स्वारथ और परमारथ दोनहूँ परिपूर्ण कर देगा। यथा '*स्वारथ साँच जीव कहँ एहू। मनक्रम वचन राम पद नेहू*' ॥ स्वारथ स्वरूप श्रीराम जी के चरण का प्रेम देगा और परमार्थ रूप तथा-'*राम परम परमारथ रूपा*' श्रीराम जी का साक्षात् दर्शन करा देगा, यही है मानस मर्म।

अब आप सब अच्छे से समझ लिए होंगे इसको सर्वदा पढ़ो समझो और करो। यथा-'*रामहिं भजहिं तात शिव धाता। नर पामर कर केतिक बाता*' तथा-'*राम भजे हित होय तुम्हारा*' श्रीराम नाम भजन से ही हम सबों का कल्याण होगा, श्रीतुलसीदास जी अपने मानस में बालकाण्ड से लेकर और उत्तरकाण्ड तक जितने नाम जापक स्मरण में आए हैं उन सबका नाम तथा भक्ति मुक्ति सब वर्णन करते हुए अन्त में यही सिद्धान्त किए। यथा-'*वारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ॥ बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल*' ॥ यही मानस का अटल सिद्धान्त है। तथा-'*स्वान्तः सुखाय*' एवं '*मोरे मन प्रबोध जेहि होई*' अर्थात् '*वन्दे वाणी विनायकौ*' से लेकर '*श्वपच खल-भिल्ल यवनादि हरिलोक गत नाम बलविपुल मति मल न परसी*' (विनय) इत्यादि अपने मनमें निश्चय करके तब मनको शान्त्वना दिए। यथा-

'पाई न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ॥ गणिका अजा-मिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥ आभीर यमन किरात खश श्वपचादि अति अघरूप जे ॥ कहि नाम बारेक तेपि पावन होत राम नमामि ते' ॥ अरे मन, तुम भी श्रीराम नाम भजन करो यथा-'रामजपु रामजपु रामजपु रामजपु रामजपु मूढ़ मन वार वारम् । सकल सौभाग्य सुख खानि जियजानि शठ मानि विश्वास वद वेद सारम् ॥ अतः अपने श्रीराम नाम का भजन किए और हम सबों को भी सिखा गए । यथा-'लाखनकी एकबात तुलसी बताए जात जीवन जो सुधारा चाहो तो रामनाम लीजिए' । तथा-'रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं । संतत सुनिय राम गुण ग्रामहिं' ॥ इसी श्रीराम नाम के सुमिरन गान से अपना जीवन का कल्याण हो जायगा ।

दो०-रहत भरोसे नाम के मगहर तजेउ शरीर ।
अविनाशी के गोद में विहसैं दास कवीर ॥
राम भरोसे सोइए डारि गोद में शीश ।
तुलसी ऐसे नरन को रखवारो जगदीश ॥
राम सीय शोभा सुखद महिमा गुण आगार ।
प्रभुके दासहिं नाम बल चाहत चरण तुम्हार ॥

शुभमस्तु-मंगलमस्तु ।

❀ इति मानस हृदय मर्म प्रकाशिका समाप्त ❀

श्री रामनाम महिमा

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं, त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां, कलौ तद्धरि कीर्त्तनात्॥

(श्री मद्भागवत)

कृतयुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु योग।
जो गति होइ सो कलिहिं, हरि नाम ते पावहिं लोग॥

(श्री रामचरित मानस)

लोके भवतु चाश्चर्यं, जलाज्जन्म घृतस्य च।
सिकतायाश्च तैलं तु, यत्ने यातु कथं च न॥
विना भक्ति न मुक्तिश्च, भुजामुत्थाय चोच्यते।
यूयं धन्या महाभागाः!, येषां प्रीतिस्तु राघवे॥

(महाभारत सत्योपाख्यान)

वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

(श्री रामचरित मानस)

श्रीहनुमत् प्रेस, श्रीअयोध्या जी।